गाँठें

हरीश पाठक

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Harish Pathak 2025

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

For permissions requests or inquiries regarding this publication,
please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7018-700-9

Cover Design: Aman Sharma
Typesetting: Pooja Sharma

First Edition: November 2025

स्मृति शेष

बड़े भाई नवलेश पाठक

के लिए

भूमिका

हरीश पाठक मूलतः कवि हैं। अपने साठ वर्ष के लेखन-काल में, संख्या की दृष्टि से उन्होंने कम लिखा है लेकिन जितना लिखा है वह महत्वपूर्ण है। और इसलिए है कि वह मनुष्य और मनुष्यता के सन्दर्भ से ही सकारात्मक सोच और भावना के जरिए अपनी अभिव्यक्ति का आत्मीय संसार सिरज लेते हैं। इस संसार में मनुष्य विरोधी गतिविधि के प्रति गुस्सा तो है ही लेकिन मनुष्य की अन्तर्वेदना के कोमल पलों का आधार भी है।

मानवीय संवेदना को जिलाए रखने का पक्ष उनकी कविताओं में ही नहीं, गद्य-लेखन में भी दिखाई देता है। लम्बी कविता 'परे होकर कोई रास्ता' के बाद उनका यह उपन्यास भी इसी दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

इस उपन्यास में सन 1857 के गदर के पूर्व से प्रारंभ होती कहानी इक्कीसवीं सदी तक चलती है। इस लम्बे कालखंड में स्वतंत्रता आन्दोलन, सामन्ती और वर्णाश्रम व्यवस्था से बचे कट्टरपंथी समाज के साथ ही एक परिवार की छः पीढ़ियों के सम्बन्धों, परस्पर लगाव-अलगाव और उनके जुड़ने-बिखरने की कथा चलती है।

एक दत्तक कथा और शरणार्थी भाव की बेचैनी, राजनीतिक-सामाजिक सम्बन्धों की असलियत, भावनात्मक टकराव और विद्रोह के नैष्ठिक दायरों का विस्तार इस उपन्यास के कथ्य को महत्वपूर्ण बनाता है।

शैलप्रभा पाठक

एम.आई.जी. 58,

इंदिरा नगर,

आगर रोड,

उज्जैन - 456001

मोबाईल नंबर - 9329580906

भाग-1

नींद रोज आती है। पर, एक निश्चित समय पर आए, यह आवश्यक नहीं। यह भी ज़रूरी नहीं कि तयशुदा समय पर ही जागना हो। नींद के गलियारे में सपने अक्सर अपना चेहरा बदलते रहते हैं। कितनी ही कहानियों सपनों में शुरू होकर सपनों में ही खो जाती हैं। जागने पर उनकी दस्तक सुनाई नहीं देती। एक कहानी बनते-बनते कई प्रसंग कहीं दूर जाकर एक नया संसार बसा लेते हैं। यही संसार कभी बिखरकर आवाज़ देता है। पर, हमेशा खतरे की आहट नहीं होती है ये आवाज़ें। अपनत्व का अद्भुत सृजन होता है एक दिन। जीवन के रंग बरसते हैं। अँधेरा पसरता है। रोशनी की यात्रा सीमाँत तक पहुँचकर एक अलग रास्ता दिखाती है। सीमाँत क्षितिज है सदा। कोई गणित नहीं है इसका। सपनों का अंतरिक्ष, जीवन की धड़कन और जागरण से एक द्वंद है शायद।

द्वंद की अपनी ही व्यया-कथा है। बनती, बिगड़ती जीर संवरती भी है कभी। इतिहास बनता है। कृतियों और विकृतियों को उलझनों में समाज की शक्ल है इर्श तहास। अनेक बिम्ब हैं इसके। कितनी ही छावाएँ, कितने ही प्रतिरूप हैं।

उलझनें कम नहीं होती। ऐसा लगता है जैसे तहखाने में टूटकर कुछ गिरा हो। या कहीं कोई विशाल वृक्ष चर्राता हुआ धराशायी हुआ है। हवा, अंधड़ और बारिश। सूख और आकस्मिक अकाल कभी। यिम्यों में धाराप्रवाह। सुबह या कभी रात के सन्नाटे में कुछ कुरेदता हुआ-सा गहरे कहीं। पेड़ पर कई-कई गाँठे हैं। कितने ही सवाल हैं इसी तरह। क्या पता, किस-किस के मन में उड़ते होंगे? शायद नहीं भी।

मेरे मन में है सवाल। मैं सोचता रहता हूँ अक्सर। पुरखों के पुराने घर के पास एक मन्दिर है। मन्दिर के चबूतरे पर या पास ही कभी कुएँ की जगत पर बैठ कर, पीपल के वृक्ष की ओर देखते रहना मुझे बचपन से प्रिय रहा है। आज भी देखता हूँ उसी तरह। अकेला। देख रहा हूँ मन्दिर तो है, पर कुआँ नहीं है वहाँ अब।

कुछ देर पहले अपने घर पर था। आकाश पर काले बादल छाए हुए थे तब। लेकिन इस समय आकाश बिल्कुल साफ है। बादल का एक टुकड़ा भी दिखाई नहीं दे रहा है। बिल्कुल खाली-खाली और सूना-सा। आकाश फुरसत में है इस समय। पर, इस फुरसत

में भी उदास लग रहा है। ठीक मेरी तरह। शायद कुछ सोच में है। अगर डायरी और एक पैन साथ लाया होता मैं तो आकाश के इस खालीपन और उसकी गहरी उदासी पर एक कविता लिखता। या एक कहानी ही लिखना शुरू करता। कुछ तो लिखता। पर, सिर्फ सोचा यह और इसी धुन में घर की ओर चल पड़ा।

घर पहुंचकर भी आकाश का सूनापन और उसकी उदासी ने कई और सवाल मुझसे ही किये। धरती की व्यथा-कथा भी मन-मस्तिष्क में घुमड़ती रही।

पृथ्वी की कोख में हलचल कुछ कहती है। इसी हलचल में कितनी ही जिंदगियां समा गई। रात के सन्नाटे में कहीं दूर तक चलो, फिर तनिक रूककर सुनो। समाई हुई जिन्दगियां भी एक कहानी कहती हैं। एक अंकुर फूटता है, कहानियों में से रास्ते निकलते हैं। कितने ही चौराहे, गलियों और बागड़ें ठहर गई हैं वहीं-कहीं। गुम हो गई हैं कुछ, फिर भी उनकी आहटें सुनाई देंगी। यही हलचल, प्रतीकों और बिम्बों में भाषा का औजार बनकर एक माहौल रचती हैं और कभी कोई भटककर अपना रास्ता अनुभवों का शिलालेख बन जाता है।

अक्सर राह चलते और एक मुकाम तय करते हुए भी सब कुछ समय में, सहोदरों की हदों या बेहद स्थापनाओं के साथ कब कहाँ फिसल गया, पता ही नहीं चला। कभी ऐसा अनुभव हुआ कि तब कुछ ठहर गया है। यह भी लगा कि ये ही स्वभावजन्य अनुभवों के दाखिले हैं। अभात्रों की पूंजी भी किती खालित्त और मुकम्म त मुकाम तक पहुंच ही जाएगी।

समय किसी के लिए रुकता नहीं है कभी। समय ही है जो अपने लिए अवकाश बन जाता है और कभी कोई ढूंढता रह जाता है किसी को। अपने आप को भी। फिर एक खालीपन। खाली हाथ, खाली मन लिए भटकता रहता है। सुस्ताने का भी अवसर नहीं मिलता उसे।

मैं भी, सुबह उठने के साथ ही अकेला बनते-बिगड़ते रिश्तों की याद में खोया रहता हूँ। किसी शाम, फुरसत में विनय के साथ गपशप में, चाय पीते हुए फ्ली के साथ भी कभी वादों का सिलसिला ही बातों का बहाना बन जाता है। बहुत सारे लोग याद आते हैं। कुछ साथ छोड़ गए और कुछ दुनिया ही छोड़ गए। कुछ और भी हैं जिन्हें याद करते हुए भी भूलने का मन करता है। ऐसे भी हैं कई जिनके नाम तक याद नहीं अब। लेकिन उन

लोगों के विषय में क्या करें जो मिलते हैं सड़क पर और देखते रहते हैं देर तक मुझे। मैं उन्हें। पता नहीं वह पहचान रहे होते हैं या नहीं, पर मैं नहीं पहचान पाता और बिना दुआ-सलाम आगे बढ़ जाते हैं हम।

कुछ तस्वीरें हैं दीवार पर टंगी हुई। कुछ अलबम में हैं। कुछ ऐसे चेहरे भी हैं वहीं, जिन्हें नाम से भूल गया हूँ। बहुत सी किताबें हैं। कुछ करीने से जमी हैं और ज़्यादातर यहाँ-वहाँ बिखरी पड़ी हैं। कुछ और भी सामान है। टूट-फूट गया है लेकिन अब भी एक बक्से में रखा हुआ है। कुछ और भी है जिसे देखता हूँ तो पत्नी कहती है कि तब का है जब तुम अकेले थे।

कुछ चम्मचे हैं। दो तपेलियाँ, दो डिब्बे, एक थाली और दो कटोरियाँ हैं। दो तश्तरी भी हैं। मैं देखकर कहता हूँ 'हाँ, पर ये कुछ भी पैतृक नहीं है। सिवाय दो डिब्बों के।'

'तो क्या हुआ? है तो तुम्हारा। अब हमारा है।' हँस पड़ती है वह। मैं भी हँसता हूँ और वह मुझे यादों में छोड़कर काम में लग जाती है। ऐसे ही एक दिन, विनय ने स्टील की टेबल और कुर्सियों को देखकर कहा था मुझे। 'प्रभास, बहुत पुरानी लगती हैं ये।'

'हाँ। सरकारी नौकरी की पहली पगार मिलने पर खरीदी थीं ये।'

अक्सर होता है ऐसा। मैं वादों में खोया रहता हूँ और निर्मला काम में व्यस्त। तब, कुछ सोचकर में भी किचन में बैठ जाता हूँ।

'एक कविता सुनोगी?' मैं कहता हूँ।

'नहीं।'

‘एक गाना सुनाते हैं फिर। मन लगा रहेगा काम में।'

वह हल्की मुस्कान से देखती है और मैं शुरू हो जाता हूँ। 'कहीं दूर जब दिन ढल जाए......।' एक के बाद एक गाना चलता रहता है। पता नहीं चलता मुझे कि वह चौका समेट कर बाहर चली गई है। देखता हूँ उठकर। वह बाहर कुछ खरीद रही है। मैं भी कमरे में आकर लेट जाता हूँ। फिर वही सिलसिला शुरू हो जाता है। मन, पुरानी यादों में भटकता है।

शहरों से शहरों तक चलते हुए, मकानों से मकानों तक बसने के बाद अब एक ठिकाना मिला है। अपना घर, अपनों की गंध से भरा हुआ एक घर। यों, किराये के मकानों में

बिताए जीवन से कोई शिकायत नहीं हुई कभी। हर जगह और हर घर के अपने फायदे थे। तकलीफें भी अलग थीं। फिर भी, जैसी थी गुज़र गई। पर, अपने घर का अहसास कुछ अलग ही होता है। पहली बार बचपन के अनुभवों से जुदा कुछ तो अलग है।

अपने इस घर में रहते हुए ही बुढ़ापे की आमद को पहचाना है। तिथियों और सन-संवत में दर्ज करने जैसा कुछ नहीं है उसमें। लेकिन एक अलग ही हवा की छुअन, एक गंध और एक अजनबी-सी आहट है, भीतर तक उतरती हुई मन में। ऐसे ही एक दिन देह और सोच का सम्पर्क बनाती हुई एक और ही छुअन थी, एक और ही आहट थी जो मन में बैठ गई थी। आजकल ऐसे ही सोच और अनुभवों पर मैं और निर्मला बातें करते रहते हैं। मैं और विनय भी मिल-बैठकर बातें करते हैं अक्सर। हम दोनों ही फासलों का आकलन करते हुए अपनी उम्र का यह पड़ाव व्यतीत कर रहे हैं। पता नहीं कौन कितना सोचता होगा इस तरह। न भी सोचता हो शायद। कभी-कभी तो निर्मला भी ऐतराज करती है ऐसी बातों पर। कई परिजन, मुझसे उम्र में बड़े लोगों का उदहारण देते हैं, जब मैं बुढ़ापे की बात करता हूँ।

'वह रामगंज वाले साहब इस उम्र में भी स्कूटर चलाते हैं।'

'और वह निजातपुरा वाले बाबा सब्जी मंडी से भरे झोले उठाए पाँव-पैदल आते-जाते हैं।' मजे की बात यह है कि उदाहरण देने वाले परिजन मुझसे उम्र में छोटे, पर ओहदे में बड़े हैं। स्वयं कार से चलते हैं। विनय से भी इस विषय पर बात हो जाती है। ‘यार, अपनी भी मज़े में ही गुजर रही है। अब पैदल हाट-बाज़ार करना और गाड़ी चलाना, हमारी उम्र वालों के लिए कोई संवैधानिक बाध्यता तो नहीं है।' हँसकर कहता है वह।

रोचक प्रसंग भी होते हैं इन दिनों। मुंबई से मेरा एक दोस्त आया था। पत्नी भी साथ थी उसकी। विनय भी था। मेरी दोनों आंखों का मोतियाबिंद का ऑपरेशन हुआ था। अस्पताल और नर्स, कॉलेज और महिला प्रोफेसर्स की बात पर तीनों मेरा मज़ाक बना रहे थे। मैं ज़ोर से हँसने की स्थिति में नहीं था, न ही चिढ़कर बोल सकता था जोर से।

सेवानिवृत्ति के बाद का एक और प्रसंग है। घूमते हुए नदी की तरफ निकल जाना और घाट पर बैठना कुछ देर, एक आदत सी बन गई है। पढ़ाई के दिनों में भी जाया करता था मित्रों के साथ। उस दिन भी मंगल घाट पर बैठा हुआ था। तब ही बारिश शुरू हो गई। पेड़ की छाँह में खड़ा रहा कुछ देर। बारिश रुकने पर घाट पर ही टहलता रहा। फिर यूँ ही

पानी की ओर झुककर हाथ बढ़ाया ही था कि किसी ने कमर से पकड़कर पीछे खींच लिया। मुड़कर देखा, तीन-चार लड़के थे। हँसकर बोला एक - 'बुढ़ऊ इरादा क्या था?'

'कुछ नहीं। जैसा तुम सोच रहे हो, वैसा बिल्कुल नहीं है।' मैंने कहा। वे चले गए। मैं भी घर की ओर चल पड़ा। सोच रहा था कि ऐसा कैसे सोच लिया उस लड़के ने।

ऐसे ही एक दिन चौक की ओर निकल गया था। बाग में बैठकर पेड़ों को गिनता रहा। कुछ भी नहीं बदला है यहाँ । सोच रहा था, बस एक बदलाव है। सामने गली के मोड़ पर एक अस्पताल हुआ करता था। अब नहीं है। हाँ, सड़क किनारे रामू भैया की पान की दुकान अब भी है। बड़ी-सी बिल्डिंग में छोटी-सी दुकान। बिल्डिंग अब भी वैसी ही है। ऊपर की मंजिल पर एक बड़े से हॉल में लायब्रेरी थी। वह अब भी है। पहले ताँगा-स्टैंड हुआ करता था। आजकल ऑटो रिक्शा और टेम्पो स्टैंड है। भीड़ बढ़ गई है। अतिक्रमण करते फल के ठेले अब भी हैं। कुछ ज्यादा ही हैं।

पहले साइकलें थीं। अब धुआँ उड़ाते वाहन हैं। चौक का यह बाग सौ बरस से भी ज्यादा पुराना होगा शायद। इसी बाग में सिंधिया महाराज की छतरी है। छतरी के पास, रेलिंग के किनारे चम्पी वाले कविराज घास पर दरी बिछाकर बैठते थे। आते-जाते लोग उनसे मालिश करवाते। कान की सफाई करवाते। कविराज कविताएँ भी सुनाते रहते चम्पी-मालिश के दौरान। मैंने भी सुनी थीं कविताएँ उनसे। कभी अकेले, कभी मित्रों के साथ। कार्तिक मेला, मालीपुरा और स्कूल-कॉलेज के वार्षिकोत्सव में कवि सम्मेलन होते। शहर के कितने ही गवैये, कवियों, जनकवियों के साथ चम्पी-मालिश वाले कविराज भी कविताएँ सुनाते थे। भूली-बिसरी ऐसी बहुत सी यादें हैं। उन्हीं में खोया हुआ, अक्सर अपने पुराने ठिकानों पर जाता रहता हूँ। बुढ़ऊ कहकर टोंकने वाले उस नवयुवक का चेहरा नहीं भूलता। कभी रोज गाहे-बगाहे कभी मौके-बे-मौके कुछ न कुछ होता ही रहता है। सोचता हूँ कुछ और हो जाता है कुछ और। अकस्मात।

पैतृक घरों में भी बहुत कुछ बदल गया। कुछ लोगों के ठिकाने ही बदल गए। उन सभी जगहों पर पुरानी पहचान ढूंढने की कोशिश करता हूँ। बहुतेरे लोग हर जगह पर, परिचित-अपरिचित कई चेहरे और उनके अनेक सवालों के जवाब तलाशते हुए सदी का आखिरी दशक आ गया। आखिरी बरस की शुरूआत से कुछ पहले ही अपने इस शहर में लौटा। बहुत दिनों तक वह शहर याद आता रहा जिसे छोड़कर यहाँ आया। वह

शहर, वहाँ सहोदर से हो गए कुछ लोगों और कई जगहों से बिछुड़ने की उदासी खत्म नहीं हुई। फिर अपने ही शहर में एक अजनबी की तरह शुरूआत हुई। नई सदी का पहला साल अपने नये घर को अपना-सा बनाने में बीत गया। पहले साल की देन थी परायेपन की वह अनुभूति जिसे अपनों से ही पाया था। अन्ततः सदी के पहले दशक के पाँचवें साल में सेवा-निवृत्त हुआ। यह बुढ़ापे की आमद थी। शायद या सचमुच, कह नहीं सकता।

सेवा-निवृत्त जीवन और बुढ़ापे की शुरूआत के बीच ही एक और अकेलापन पिछले पाँच बरसों ने दिया। बेटा अपनी नौकरी पर चला गया दूर। एक साल विदेश में रहा। तब से यह नया घर, नया-सा पुराना शहर और नये पुराने रिश्तों के बीच हम दो प्राणी हैं, बस। सुबह-शाम, चाय की प्याली के साथ पुरानी यादों में भटकते हुए हँस लेते हैं। कभी बहस, चुप्पी और कभी एक गहरी उदासी के साथ अपने कामों में व्यस्त बने रहते हैं।

अँधेरा उतरता है आँगन में। सोच में बैठा हुआ, पक्षियों का कलरव सुनता रहता हूँ। ढलती शाम से लौटते घर की ओर पक्षियों की चहचहाहट घिरती रात तक हुआ करती थी पहले। आजकल कभी-कभी ही सुनाई देती है। कभी-कभी सुनने को मिलते इस संगीत में अक्सर एक कविता याद आती है। एक दिन ऐसे ही बैठे कलरव सुना तो यह कविता पत्नी को सुनाई। कविता यूँ है - 'संध्या का झुटपुट, बाँसों का झुरमुट। चहक रही चिड़िया, टी वी टी टुट टुट।' इसी तरह बचपन में पढ़ी कुछ और कविताएँ याद आती हैं। पहले भी याद किया करता था इन कविताओं को और अक्सर बच्चों को सुनाता था। कभी कोई गीत, कोई लोक गीत या कुछ और कविताएँ। कभी-कभी भजन भी सुनाता था अपने और घर-परिवार के बच्चों को। एक कविता बच्चों को ही नहीं बड़ों को भी बहुत पसन्द थी और बच्चे बार-बार सुना करते थे - 'मैंने बचपन में छुपकर पैसे बोये थे, सोचा करता था कि पैसों के कलदार पेड़ उगेंगे।' आजकल शहर में सीमेन्ट-कांक्रीट के महावृक्ष शायद वही हैं, लेकिन कुछ आबादियों को अजीब त्रास दे रहे हैं। बहुत से लोग सुकून से भरे-पूरे हैं। जमीन सिकुड़ रही है। हवाओं में ज़हर है। पानी नहीं है, कहीं-कहीं है भी तो वह विषैला है। कभी सूखा, अकाल और बंजर धरती के दुःख हैं, कहीं बाढ़ की त्रासदी है। छोटे-बड़े बांधों की एक अलग ही व्यथा कथा है। यह सब सोचते हुए पुराने दिनों को बांचता रहता हूँ। हर एक दिन की एक कथा। हर एक दिन का एक अलग अनुभव।

याद आते हैं वे दिन जब नई पेठ, हाट-बाज़ार और गोला मंडी तक अभिन्न, शिवेन्द्र और रईस अहमद के साथ अक्सर घूमता रहता था। छुट्टियों के दिनों में यह घूमना सुबह से शाम तक चलता और कभी-कभी रात तक चलता रहता। तब नहीं थे इतने लोग, इतनी भीड़ और इतने वाहन। मकान भी कहीं थे इतने इस शहर में। उत्तरमुखी हनुमान से खड़े हनुमान, कोतवाली चौराहे से स्टेशन और निजातपुरा से माधव नगर तक कुछ ताँगे दिखाई देते या सायकलें भागती रहतीं। छत्री चौक, गढ़कालिका, भतृहरि गुफा और कालियादह महल तक सड़कें नहीं, चौड़ी गलियाँ थीं। अब चौड़ी सड़कें हैं। मकानों और कॉलोनियों की भरमार है। नये अन्दाज़, नये चाल-चलन और तेज रफ्तार शहर है। लेकिन ऐसी खूबसूरती, जिसकी आँख नहीं है। बिन बात रोकने टोकने की तहजीव पनप रही है। पहले की विनम्र फब्तियों की जगह वहशी गालियाँ हैं। लाठी, बल्लम और चाकू तो पहले भी चल जाया करते थे कुछ मोहल्लों में। अब तलवार और लाठी-फरसे के साथ ही बन्दूक-पिस्तौल के धमाके सुनाई दे जाते हैं। कभी रात-बिरात और कभी दिन-दहाड़े भी।

घिरते बादलों को देखते और कड़कती-चमकती बिजली के उजाले में कुछ महसूस करते हुए अभिन्न याद आता है। हमेशा। वह जब खिलखिलाकर हँसता तो लगता जैसे घोड़ा हिनहिना रहा है। ऐसा स्कूल के शिफ्ट इंचार्ज, पंड्याजी कहते थे। पंड्याजी हिन्दी के व्याख्याता थे। लेकिन नवीं कक्षा में वह हमें अँग्रेज़ी पढ़ाया करते थे। आठवीं कक्षा में चौबेजी अंग्रेजी पढ़ाते थे। वे हेड मास्टर थे। अभिन्न वहाँ नहीं था। वह आठवीं तक अलग स्कूल में पढ़ता था। फूल बाज़ार के पास। मैं गोला मंडी के स्कूल में था। नवीं कक्षा से हम एक ही स्कूल में पढ़े। यह स्कूल रजवाड़े के एक महलनुमा भवन में लगता था। गोला मंडी के स्कूल के पड़ोस में ही नगरवधुओं का मोहल्ला था। आठवीं कक्षा में चौबेजी की कुर्सी से बाँयी ओर एक खिड़की थी जो हमेशा खुली रहती। चौबेजी थोड़ी-थोड़ी देर में उस ओर भी देख लेते थे। शाम को चौबेजी अपने घर के बाहर ओटले पर बैठकर भाँग घोंटते थे। चौबेजी के साथ स्कूल में हिन्दी के शिक्षक थे गुप्ताजी। छत्री चौक के पास एक पुरानी हवेली में गुप्ताजी एक कमरा लेकर रहते थे। मैं वहाँ अक्सर जाया करता था। अभिन्न भी साथ होता। वे कविताएँ भी लिखते थे। हम दोनों उन्हें प्रिय थे। अब शायद वे नहीं है। चौबेजी बहुत पहले गुज़र गये। पंड्याजी, गुप्ताजी और चौबेजी पढ़ाते अच्छा थे। बहुत याद आते हैं वे सभी।

कुछ बुजुर्ग हैं, मुझसे उम्र में बड़े। परिवार में आना-जाना रहा है इनका बरसों से। अब भी मिल जाते हैं। समझाइश देते हैं। कहते हैं - 'कुछ नया काम-धाम ढूँढ लो।' पोर्च को देखकर कहते हैं - 'ये जो गली छोड़ रखी है, यहाँ दुकानें निकाल लो। ऊपर भी दो-चार कमरे बना लो। ऊपर रहो और नीचे का मकान-दुकान किराये पर उठा देना। आमदनी हो जाएगी। रौनक भी बनी रहेगी।' एक परिजन मिले। बोले 'ट्यूशन पढ़ाना शुरू कर दो। या कोचिंग क्लास क्यों नहीं चलाते यहाँ। मन की सोच पर लगाम लग जाएगी। समय भी कट जाएगा।' बचपन में भी इन्हीं लोगों में से कुछ समझाने का जिम्मा उठाये हुए थे। पिता से कहते कि अंग्रेजी मत पढ़ने दो। कभी कहते साइंस पढ़ाओ। कोई कहता 'चलो कोई बात नहीं। पढ़ने में तेज है तो यहीं कचहरी का बाबू बनकर अच्छी कमाई कर लेगा।' कोफ्त होती थी तब बोलता नहीं था, पर अब उनकी बिन माँगी सलाह पर मुस्कुराकर कहता हूँ - 'जी, शुक्रिया।' फिर गुनगुनाता हुआ आगे बढ़ जाता हूँ। 'कौन ठगवा नगरिया लूटत हो।' इन बातों पर कभी-कभी चिढ़ जाता हूँ। लौटकर घर आता हूँ और पत्नी को यह बातें सुनाकर चाय की चुस्कियों के साथ हँसकर सब भुला देता हूँ।

बरसों पहले, ऐसे ही एक दिन विनय से गपशप हो रही थी। कुछ गंभीर था वह। उसने कहा था - 'प्रभास, अपनों के परायेपन और परायों के अपनेपन की हलचल में अपनी एक गंध होती है। तुमने कभी अनुभव की है वह गंध? असहाय और निरुपाय भी कर देती है कभी। तुम्हें क्या लगता है?'

'ठीक कह रहे हो विनय। पहला अनुभव मुझे किशोरावस्था में ही हुआ था। पढ़ाई पूरी कर बाहर गया, नौकरी पर। कई शहर घूमे। नये लोग मिले, नये दोस्त बने। परिजन कम आते थे। पर यहाँ छुट्टियों में रहते हुए भी वह अनुभव कम नहीं हुआ। नये लोगों के साथ कभी कम तो कभी नहीं भी। अब, यहीं रहते हुए वह गंध असहाय ही नहीं करती, बल्कि गुस्से में बदल जाती है। यह गुस्सा ही सही लगता है अब।

अभिन्न और विनय से मेरी दोस्ती पचास बरस से भी ज्यादा पुरानी है। एक में बाल सुलभता थी और दूसरे में शिशुवत बुजुर्गियत है। अभिन्न के स्वभाव में वाचाल अल्हड़पन था और विनय में एक ठहराव है। निर्मला अक्सर कहती है कि 'विनय की बातें रहस्य पैदा करती हैं।'

'ऐसा नहीं है। सवालों और सोच से परे भी एक संसार है, जहाँ रक्त-बीज अंकुरित होते हैं और एक आदमी की महकती छाया अपना छप्पर बना लेती है वहाँ। विनय, ऐसे ही अपनत्व का रूप है मेरे लिए।'

'अब तो तुम्हारी बातें भी रहस्यमयी हो रही हैं।' वह तुरन्त कहती है।

'कुछ लोग अपनी दिनचर्या में हमेशा व्यावसायिक ही बने रहते हैं। फिर उनका सब कुछ एक मशीनी पुर्जे में तब्दील हो जाता है। ऐसा जीवन जीने वाले बिन्दास अनुभवों से वंचित रहते हैं। मिठास को जान ही नहीं पाते। स्विच बोर्ड की खट और बल्ब के जलने-बुझने की क्रिया-निष्क्रियता के क्रम में ही उनका संसार सिमट जाता है। अनजाने सुख की तलाश में वे भटकते ही रहते हैं।' मैं समझाने की कोशिश करता हूँ।

मन्दिर मार्ग पर, सेन्ट्रल कोतवाली से कुछ पहले एक मस्जिद है। बचपन से उसे देखता रहा हूँ। मस्जिद के ठीक सामने ही वह बँगलानुमा हवेली है, जहाँ मेरा बचपन बीता। इसी हवेली की दूसरी मंजिल पर, तीन खिड़की वाले कमरे में हम रहते थे। इस बंगले से बड़ी हवेली तक फैले हुए परिसर से किशोरवय के अनुभव ले पहुँचे थे हम माल गोदाम रोड पर बने बँगले पर। रजवाड़ों की रंगत लिए बँगले में बिताए जीवन के चित्र अक्सर यादों को झकझोरते हैं। जब भी उन दिनों को याद करता हूँ, कुछ चेहरे अब भी डराते हैं और कुछ चेहरे अपनत्व की डोर से बाँधने को तत्पर लगते हैं। यही चेहरे हैं जिनसे जुड़ते हुए अपनत्व और अलगाव की जुगलबंदी सुनता रहा हूँ हमेशा। तीस बरस बाहर रहकर जब यहीं आया, तब भी वही गंध और वही गुस्सा है। रक्त-बीज और महकती छाया वाला छप्पर अब भी सवाल करता है। गूंज बनी रहती है सदा।

बड़ी हवेली और बँगलानुमा हवेली में रहने वालों को कोई फर्क नहीं पड़ता कि कौन, कब और क्यों यहाँ आया। दोनों परिवार भी अब यहाँ-वहाँ बस गये हैं। तीन खिड़कियों वाले हिस्से में रहने वाला हमारा परिवार भी माल गोदाम रोड से अभिनव नगर पहुँच चुका है। मैं शहर के बाहर एक नयी बस्ती में हूँ। तीनों परिवारों के बुजुर्ग स्वर्ग सिधार गए हैं। मेरी पीढ़ी के लोग ही अब वरिष्ठ नागरिक हैं। कोई पुराना परिचित राह चलते मिल जाता है। मैं पहचान लेता हूँ उसे। रुककर बात करना चाहता हूँ। 'अरे, आप यहीं हैं अब तक। पर, यह जगह कितनी बदल गई है।' मैं कहता हूँ। 'अच्छा। आप इस जगह को

जानते हैं पहले से। कभी देखा नहीं आपको।' वह कहता है। दुआ-सलाम के बाद हम आगे बढ़ जाते हैं।

शहर-बाहर रहते हुए, अपने ही शहर को पहचानने में लगा हूँ। जितनी कोशिश करता हूँ, अपरिचय और बढ़ जाता है।

सेवानिवृत्ति से पहले एक निश्चित दिनचर्या थी नौकरी का निश्चित समय था। बचे हुए समय में घर और बाज़ार के कुछ काम। थोड़ा लिखना-पढ़ना। कुछ पुराने साथी मिले। कुछ नये मित्र बने। हमउम्र और युवा भी। निर्मला ने भी कॉलोनी के कुछ घरों में अपनी सहेलियाँ बना लीं। बेटे के मित्रों की संख्या कुछ अधिक थी। पुराने शहर के मित्रों से रिश्ते अब भी हैं। तीनों के ही। गतिविधियों-जलसों में बाहर से कई मित्र आते हैं। कुछ से पारिवारिक संबंध-सा बन गया है। विनय नई आबादी में रहता है। अभिन्न जब तक था, मिलता रहता था। अब बस विनय। बहुत बातें होती हैं। 'आजकल हवेलियों की ओर जाना होता है। पुराने परिचित और परिजन मिलते होंगे। एक अरसे बाद मिलने पर क्या बातें होती हैं।' विनय अक्सर पूछता है।

मैं हर बार की तरह दोहराता हूँ सब कुछ औपचारिक रह गया है अब। कोई उत्साह नहीं। प्रेम और अपनापन तो पहले भी नहीं था। जो भी है, यंत्रवत है। रिश्तों में गरमाहट नहीं बची।

'भाई साहब, आजकल आपके मित्र सोचते अधिक हैं।' निर्मला कहती है।

'भाई के मन में कुछ नया लिखने की योजना चल रही है। कोई नाटक या उपन्यास आने वाला है।' विमला, विनय की पत्नी ने कहा तो विनय ने भी स्वीकृति-सूचक सिर हिलाया।

'शायद। पर यह भी सच है कि कुछ लिखने से पहले मन में एक हलचल होती ही है। एक द्वंद और एक टकराहट।' मैंने कहा।

चर्चाएं होती रहती हैं और इसी बहाने अपने अतीत के सफर में हम चारों शामिल रहते हैं अक्सर। कभी मेरे घर, कभी विनय के यहाँ।

घर से शहर की ओर जाते हुए कई बार अपने कॉलेज की ओर निकल जाता हूँ। मन उदास हो जाता है उसे देखकर। पिछली शताब्दी की पहचान, यह हेरीटेज इमारत अब

जर्जर स्मारक रह गई है। शायद खंडहर ही बन जाएगी किसी दिन। 'शरीर से ही नहीं, मन और आत्मा से भी खोखली है यह इमारत।' विनय कहता है।

सोचता हूँ मैं, कितना सच है यह। इस इमारत के समीप एक नज़र बाग हुआ करता था पहले। नज़र बाग के बाहर से रेलवे लाइन जाती थी। मुख्य स्टेशन के पास ही इस नैरोगेज लाइन का स्टेशन था। वहीं से, छोटी-सी छुकछुक गाड़ी चालीस मील दूर एक कस्बे तक जाती थी। माल गोदाम रोड पर बंगला-घर में जब हम रहते थे, मैं घर के सामने से जाती इस ट्रेन में बैठ जाता था। कॉलेज आने पर उतर जाता। इस रास्ते पर ट्रेन रेंगती हुई चलती थी। इस ट्रेन का यार्ड और दूसरा स्टेशन जिस गाँव में था, आज वहीं एक कॉलोनी बन गई है, जहाँ अब मैं रहता हूँ। अब न वह ट्रेन है और न स्टेशन है। पटरियाँ उखड़ गई हैं और नया हाइवे बन गया है। नज़र बाग भी नहीं है। अब वहाँ बस स्टैंड है। आपातकाल के दिनों में यह बदलाव हुए थे। चर्चाओं में इसी तरह अक्सर पुराना शहर यादों से बाहर निकल आता है। जीवन भी अब वैसा नहीं रहा, किसी का भी। हाँ, रिश्तों का ठंडापन, जब जहाँ जैसा था, अब भी वहाँ वैसा ही है।

आजकल शहर की और आना-जाना कम ही होता है। शहर याने चौक, गोपाल मंदिर और नई सड़क का बाज़ार। जरूरत का सारा सामान कॉलोनी में ही मिल जाता है। महीने में एक या दो बार पुल-पार नये शहर जाना हो जाता है। विशेष खरीदी के लिए, विनय के घर या किसी और जगह, किसी खास वजह से ही नये शहर जाते हैं हम दोनों। पुराने शहर की ओर तो बहुत ही कम जाते हैं हम।

एक दिन, शाम का समय था। एक डॉक्टर से मिलना था। उनका क्लीनिक कोतवाली रोड पर है। बँगलानुमा हवेली से कुछ आगे। हम दोनों जा रहे थे कि मस्जिद के सामने पहुँचकर अचंभित-सा खड़ा रह गया। मैं रुका तो निर्मला भी ठहर गई। उसने देखा तो वह भी हैरान रह गई। वह बंगलानुमा हवेली नहीं थी वहाँ। मलबे का बड़ा-सा टीला था अब वहाँ। कुत्ते भोंक रहे थे। सुअर भाग रहे थे। मस्जिद के अगल-बगल की छोटी दुकानें नई साज-सज्जा के साथ चमक रही थीं। बस मस्जिद के दरवाजे से सटी हुई टेलर मास्टर की दुकान ही जर्जर हो रही थी। हजारी की हेयर कटिंग सैलून नहीं थी। मस्जिद के दरवाजे पर कुछ लोग थे। उनमें से एक व्यक्ति मेरे पास आया। 'आज देख रहे हो।' पूछा उसने।

'हाँ। इधर आना कम ही होता है। कब हुआ यह?'

'एक हफ्ता हो गया। अब पाँच-सात मंजिला बिल्डिंग बनेगी यहाँ। सुना है बस।' क्या कहता मैं। दुखी मन हम डॉक्टर के क्लीनिक की ओर चल पड़े। वहाँ से लौटते समय सीधे न जाकर अभिनव नगर की ओर मुड़ गए। उस बँगले की ओर देखते रहे कुछ देर, जिसे पिता ने बड़ी तबीयत से बनाया था। वह भी बिक चुका है, पर अभी कायम है। देखते रहे उसे हम दोनों देर तक।

हम मुड़कर माल गोदाम रोड की ओर जाने वाले रास्ते की तरफ जा रहे थे। सामने से गोपीचंद आकर रुक गया हमें देखकर। बड़ी हवेली वालों के छोटे साहबजादे गोपीचंद। मंदिर के अगल-बगल दो आधुनिक बँगले हैं। एक उनका, एक उनके बड़े भाई का। पीछे से पुरानी हवेली झाँक रही है। तिलिस्म कथा की भुतहा हवेली अय्यारों की याद दिलाती है।

'देख आए मलबे का टीला?' गोपीचंद ने पूछा।

'हाँ, आज ही देखा है।'

'तुम्हें शायद पता नहीं कुछ।'

'क्या?'

'श्याम ने गिरवाया है इसे। मलबा अलग से बिकेगा। परिवार के सभी लोग आए थे, आखिरी बार देखने। तुम नहीं आए ?'

'मुझे तो आज ही, मलबा देखकर पता चला। पहले से मालूम होता तो मैं भी आता देखने। आखिरी बार उन कमरों को, छज्जे को, नीम-जामुन के पेड़ को। तिमंजिले और तीन खिड़की वाले उस कमरे को देखकर, एक बार फिर से पुरानी यादों में जी लेता मैं भी। नहीं हुआ कोई बात नहीं।' कहता हुआ मैं आगे बढ़ गया।

कुछ दूर चलकर मैं पीछे पलटा तो देखा, गोपीचंद वहीं खड़ा हुआ मुस्कुरा रहा है। गोपीचंद की मुस्कुराहट मुझे चुभ रही थी। एक चिढ़ के साथ मैं चलता रहा। निर्मला खामोश थी। उसने कुछ कहना भी चाहा तो भी मैं चुप रहा।

घर लौटते समय ऐसा लग रहा था, जैसे मैं चल नहीं रहा हूँ। पीछे से कोई धकेल रहा है। मलबे से आती हुई आवाजें मेरा पीछा कर रही हैं। अतीत पीछे छूट गया है लेकिन

बचपन के कुछ जाने-पहचाने और कुछ अनजाने से चेहरे साथ चल रहे हैं। कुछ हाथ धकेलते हुए विजय-गान गा रहे हैं। पीछे से कोई कुरेद रहा है। बहुतेरे सवाल गूँज रहे हैं, जवाब नहीं मिल रहा है और एक निराशा गाँठ बनकर दर्द दे रही है। मलबे में ध्वस्त हुआ घर, नीम और जामुन का पेड़ आगे चलता हुआ सा महसूस होता है। लगभग शताब्दी आबाद रहा वह घर, अब वहाँ कुछ नहीं है। रेत, सिर्फ रेत। धूल, पत्थर और कंकड़। बल्लियाँ, खिड़की और दरवाज़े। उड़ती हुई धूल के साथ धड़कती हुई यादें हैं। पर, कितनों के मन में?

दोनों ग्वाड़ियाँ सही-सलामत हैं। भुतहा हवेली ठिकाने पर है। पता नहीं कब तक रहे। वह खुद ब खुद धराशायी होगी या उसे भी कोई गिराएगा। बँगलानुमा हवेली से भी पुरानी है यह। बड़ा-सा नीम का पेड़ और मंदिर के सामने वाला पीपल अब भी है। इसके अगल-बगल ही हैं दोनों आधुनिक बँगले।

नदी-घाटी पर भी एक पुरानी बस्ती है। हवेली वालों के रिश्तेदार रहते थे वहाँ। पुराना घर वहाँ भी नहीं रहा। कभी वहाँ एक महावृक्ष की डाल पर मोटी-सी रस्सी का झूला लटकता था। सावन में जाते थे वहाँ, छोटी हवेली और तीन खिड़की वाले कमरे में बसे हमारे परिवार। बहुत याद आता है वह सावन। और इधर, मलबे में तब्दील वह घर, नीम और जामुन का पेड़ और वह तिमंजिला, कभी अपना था। अब नहीं है।

'सब देख गए, आखिरी बार।' गोपीचंद कह रहा था।

सब देख गए। सुंदर, रमेश, सुरेश, महेश और भैरवी तो गए ही होंगे। विजय आता तो अवश्य मिलता। नहीं आया हो शायद। मैंने पूछा नहीं गोपीचंद से। कुछ नहीं, बहुत कुछ रहा है ऐसा कि बचपन से आज तक, गोपीचंद से मेरे सम्बन्ध सहज नहीं रहे। इसीलिए उससे ज्यादा नहीं पूछा। पर, माधव और तपन ने भी कुछ नहीं बताया। वे तो गए ही होंगे देखने। शुभ्रा, नीरज और गौरव को भी शायद मालूम ही नहीं हुआ होगा।

'कब तक उस 'मलबे' को ही याद करते रहोगे? छोड़ो उस किस्से को। कुछ और सोचो।' निर्मला कहती है।

पर मैं कुछ और नहीं सोच पाता। मुझे लगता है मेरा बचपन ही ज़मींदोज़ कर दिया गया है। श्याम एक फोन तो कर सकता था। यह सिर्फ एक घर का गिरना नहीं है। मेरे लिए।

बचपन से बनते, सँवरते और बिगड़ते रिश्तों का ही एक और आयाम है यह विध्वंस। सिर्फ मुझ तक ही यह जानकारी नहीं पहुँची। बातचीत के दायरे में ही नहीं रहा तभी मैं उस घर को देख नहीं पाया ध्वंस से पहले। यह अलगाव-बोध ही है। मेरे लिए कम से कम। व्यावहारिक लोगों की दृष्टि से मैं कुछ ज्यादा ही सोच रहा हूँ, हो सकता है। पर, उस घर से मेरा भी एक भावनात्मक रिश्ता था। कोई माने या न माने, पर है मेरे मन में यह बात।

वह घर, सिर्फ घर नहीं था मेरे लिए। अपना नहीं था, बेशक। पर, अपनत्व का पहला स्पर्श वहीं रहकर ही मिला था। सत्रह अट्ठारह बरस की उम्र तक वहीं रहा। मलबा बनने से पहले, गाहे-बगाहे वहाँ जाता रहा। फिर, आंख खुलते ही जो कुछ देखा, जाना, अनुभव किया और यातनाओं-यंत्रणाओं की हद से बाहर निकलते हुए भी जिसे जिया, वह उसी घर में। वहीं रिश्ते बने, टूटे और बिखर गए। छोटे बाबा सुनाते थे परिवार का इतिहास। बूढ़ी अम्मा सुनाती थीं बुंदेलखंड से मालवा आकर बस गए कुनबे का यथार्थ। कड़वा और मीठा सच। माँ ने सुनाई थीं सारंगढ़-रायगढ़ से नागपुर होती हुई उज्जैन पहुंची पारिवारिक कहानियाँ। पिता बताते थे इन्दौर, ग्वालियर, बनारस, रीवा और कलकत्ता से जुड़े दादा-दादी के जीवन के प्रसंग। छोटे बाबा और दादी का परिवार, पिता और माँ से उनका रिश्ता, रिश्तों का आधा-अधूरा सच जो कई-कई लोगों से चलकर जब मुझ तक पहुंचा, मैं हतप्रभ था।

यही वह घर था, जहाँ रसोईघर की सीढ़ियों से उतरकर नीचे आते थे, वहाँ बाहर के दरवाज़े और पास के कमरे के बीच एक चौकोर कमरानुमा गलियारा था। पहले शास्त्री जी, फिर सक्सेना मास्टर, नागर मास्टर और बाद में जैन साहब आकर पढ़ाते थे। माधव, शुभ्रा और तपन को। शास्त्री जी बड़े सख्त थे। छड़ी, डंडा और स्लैट उनके हथियार थे। जैन साहब चाँटा मारते थे। दोनों मानते थे कि छड़ी पड़े छम छम, विद्या आए धम धम। जैन साहब बड़े चालू निकले। शुभ्रा से राखी बँधवा ली और बड़े भाई की हैसियत से मारने का अधिकार पा लिया। सक्सेना मास्टर भले आदमी थे, इसलिए टिक नहीं पाए। जैन साहब मैट्रिक पास थे। बी.ए. में मेरे सहपाठी बने और मित्र उन्हें बुड्ढा कहकर पुकारते थे।

यही वह घर था, जहाँ लोचन, कालू और ग्यारसी से रिश्ते बने। शिवेन्द्र, अभिन्न, इदरीस और खूबचन्द से दोस्ती हुई। भग्गू, श्याम, विजय और गोपीचंद से रिश्तों में

खटास के अनुभव हुए। तलघर की त्रासद निष्पत्तियाँ भी यहाँ रहकर ही पाई थीं। बूढ़ी अम्मा, बड़े बाबा और बड़ी दीदी से मिली अलगाव-कथा की गूँज इसी घर से चलकर भीतर तक समा गई थी। वहीं गूँज और एक टीस तलघर और तिमंजिले से शुरू होकर नई बस्ती के घर, माल गोदाम रोड के बँगले से होते हुए अब मेरे इस घर तक आकर तकलीफ दे रही है। तब और बढ़ जाती है जब अपनों को ही इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। माधव, तपन और कमल को खासकर। तपन और कमल क्या सोचते हैं, क्यों सोचते हैं, इससे मुझे भी कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन माधव की तटस्थता मेरी तकलीफ को बढ़ाती है। इसलिए कि उन्होंने भी वही सब भोगा है, जो मैंने।

पढ़ाई-लिखाई पूरी करने के बाद, ठिकाने बदल गए सबके। सुंदर, रमेश, सुरेश, महेश और विजय बाहर गए और रमेश के अलावा सभी बाहर बस गए। रमेश रिटायर होकर यहीं बसे हैं। भैरवी भी। श्याम यहीं रहा। बड़ी हवेली के कमलेश, गोपीचंद, कृष्णा और चंद्रकला यहीं बस गए हैं। रिटायर होने के बाद माधव भी यही रहते हैं। तपन, श्याम की तरह यहीं रहा। श्याम, विजय, कमलेश और गोपीचंद से माधव और तपन के सम्बंधों में अपनापन घर करता रहा। मुझसे भी मिलते रहे सब, पर कभी नहीं लगा कि वे रिश्तों में बदलाव लाने की कोशिश कर रहे हैं। गिरगिट हमेशा रंग बदलता रहता है। स्वभाव है उसका। दैहिक-मानसिक दुहराव की प्रकृति।

घर में कोई वैवाहिक आयोजन होता और छोटे बाबा के पत्र आना शुरू हो जाते। विशेष प्यार उमड़ता था ऐसे समय। सेहरा लिखवाना होता था मुझसे। वह रतलाम भी आए थे मेरे यहाँ। रमेश, श्याम और विजय भी आते रहे। भैरवी रहीं कुछ बरस वहीं। मैं समझने की कोशिश करता रहा, बचपन से बनते-बदलते संबंधों की असलियत को पहचानने की। माँ कुछ कहती थीं, पिता खामोश रहते।

फिर एक दिन, छोटे बाबा की मृत्यु। मैंने उस दिन देखा, बड़े बाबा दूर से उन्हें देखते रहे थे। फिर नहीं देखा उन्हें वहाँ। पाँच बरस बाद मेरे छोटे बेटे की भी मृत्यु हुई। ग्यारह बरस ही जिया वह। इन बरसों में अपनों के बीच, अपने ही लोग जहर घोलते रहे और वह प्यार को तरसता रहा। रिश्तों ने नई करवट ली। नई इबारतें आज तक लिखी जा रही हैं।

इसके बाद माँ गई। मृत्यु पूर्व माँ अक्सर अर्ध-चेतन अवस्था में सारंगढ़-रायगढ़ पहुंच जाती थीं। बुदबुदाती रहतीं। तब सुनी हुई बातों के अर्थ खुल रहे हैं अब कुछ-कुछ। पिता

बोले थे पहली बार विस्तार से। पहले बताते रहे थे कुछ-कुछ आधा-अधूरा। अलग-अलग दिनों में। पर तब तक भी इस घर को गिराने की बात नहीं हुई थी। माँ की मृत्यु के बाद ही श्याम ने यह घर खाली कर दिया था। पिता ने श्याम और उसकी माँ को सलाह दी थी। 'इस घर को धर्मशाला या गेस्ट हाउस बनाकर आबाद रखा जा सकता है।'

'सोचेंगे।' श्याम की माँ ने कहा था।

पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। श्याम ने सलाह नहीं मानी। पर ऐसा कुछ करेगा, सोचा नहीं था। पिता ने इस बारे में फिर कोई बात नहीं की थी।

पिता के गुजरने से पहले ही छोटी दादी और छोटे बाबा की मृत्यु के बाद सब कुछ बदल गया था। छोटा बेटा जीवित होता तो शायद उज्जैन लौटता ही नहीं मैं। वह जब तक था, हम दोनों के लक्ष्य अलग थे। रतलाम की जानी-पहचानी जगहें थीं। कटनी के भीड़ भरे रास्ते और हवाओं से रिश्ता बन रहा था। जबलपुर, ओरछा-टीकमगढ़ और झांसी की ऐतिहासिक इमारतों में घूमते हुए दिन बीत रहे थे। दिल्ली में नयना जीजी का घर इतना अपना था कि उज्जैन से मोह भंग हो रहा था। बड़ौदा, अहमदाबाद और भावनगर में घूमते हुए, रहते हुए छोटे बेटे ने अपनी एक पहचान बनाई थी। कितने ही सपने देखे थे उसके साथ। उन्हें पूरा किये बिना ही वह जुदा हो गया।

माँ की आँखों में कितना कुछ था। भीतर भी और बाहर भी। नीम, पीपल और तीन खिड़की वाले कमरे के कितने ही सच उनके साथ चले गए। पिता के साथ बहुत कुछ चला गया। छोटे बाबा वंश-ग्रंथ लिख रहे थे। पूरा जान ही नहीं पाया उसे। बरसों बाद श्याम ने एक दर्द दिया था रतलाम में। माँ की मौत से पहले की बात है यह। तुम्हारा बार-बार उज्जैन आना किसी को अच्छा नहीं लगता है। उसने कहा था।

क्यों? माँ और पिता से कभी पूछ नहीं पाया। फिर एक दिन पिता ने ही चिट्ठी लिखी थी, 'मन नहीं लगता, उज्जैन आ जाओ अब।'

जहाँ से मोह भंग हो रहा था, वहीं आ गया अन्ततः।

वह भी क्या दिन थे, सोचता हूँ। दिन बीत रहे हैं और सवाल पीछे छूट रहे हैं। जवाब नहीं मिले। मलबे में दबा हुआ है एक घर। धूल-पत्थर-कंकड़ के ढेर में एक इतिहास चिन्दा-

चिन्दा होकर समा गया। बस सोचते रहो उसकी खो रही पहचान के बारे में। मैं अपने आप से बोला।

वह एक मनहूस दिन मंडराता रहता है आसपास। हर किसी के चेहरे पहले की तरह ही भाव शून्य नजर आते हैं। कोई शिकन नहीं माथे पर।

'कुछ पता भी है, तुम लोग हो कौन?' बड़ी हवेली वाली दादी ने कहा था एक दिन। फिर उन्होंने नवरात्रि के भोजन की पंगत में, माधव की पत्तल पर गोबर फेंक दिया था। वह चुपचाप उठ गए थे। उन्हें दूसरी पत्तल के सामने बैठते देख श्याम हँस रहा था। माधव तब भी कुछ नहीं बोले, आज भी चुप हैं समर्पण के साथ। जबकि म्लेच्छ कहा था बड़ी दादी ने उन्हें।

'ये हमारे दादाजी हैं और ये हवेलियाँ उनकी हैं।' विजय ने कहा था एक दिन।

'हमारे दादाजी कौन है?' मैंने माँ से पूछा था।

'तुम्हारे दादाजी को गोद लिया था दादा साहब ने।' माँ ने कहा था, पिता तब भी चुप थे।

कुछ दिन यही चुप्पी पसरी रही थी। पर, मेरे भीतर एक आग सुलगी थी। एक लड़ाई शुरु हो गई थी। अपने आप से, फिर सबसे। अब भी जल रही है वह आग। अब भी लड़ रहा हूँ लड़ाई। अकेला और निहत्था।

बड़ी और छोटी हवेली के बीच एक चुप्पी पसरी रहती थी, अक्सर। लगता, हर कोई लड़ रहा है भीतर ही भीतर, निहत्था। एक ऐसी व्यवस्था में पटक दिया गया है, जहाँ शर्तों पर ही गुज़ारा होना है। कब तक? सवाल मैंने उठाया था। सजा मिली मुझे, समाधान नहीं मिला। अक्सर, महसूस करता था कि एक षड़यंत्र चल रहा है, चुपचाप। रिश्तों की आत्मीयता एक दिखावा है।

लड़ाई कभी ख़त्म नहीं हुई। षड़यंत्र कम नहीं हुए। न होंगे कभी। यही जीवन है शायद। यही फलसफा ओढ़ लिया था। निभाता रहा। फिर भी पता नहीं क्यों मैं वह मलबा देखकर उदास हो गया था।

***

भाग-2

इन दिनों कोई भी काम निश्चित समय पर नहीं होता है। पहले सुबह पाँच बजे नींद खुल जाती थी। जागने पर सुबह की दिनचर्या शुरु होती। सुबह की चाय, अखबार का इन्तज़ार और समय पर आया हो तो कुछ देर पढ़ना। फिर नियमित काम। नौ बजे टीवी पर समाचार, फिर भूले बिसरे गीत। यही क्रम रहा है। पर इन दिनों सुबह सात से पहले नहीं उठ पाता। एक सप्ताह से सुबह का घूमना और योगाभ्यास भी बन्द है। रोज़ यह सोचकर सोता हूँ कि सुबह से नियमित होना है। पर दूसरे दिन वही लेट-लतीफी। कारण कुछ खास नहीं बस हो जाता है यही सोचकर भूल जाता हूँ।

बहुत दिनों से सोच रहा था विनय के घर हो आऊँ। वहाँ से किसी कार्यक्रम में शामिल होने के लिए जाने का तय था। हम दोनों को ही जाना था। पर घर पर निर्मला अकेली क्या करेगी, यह सोचकर हम दोनों ही चले गये। विनय ने अपनी पुरानी स्कूटर निकाली तो मैंने टोंक दिया - 'यार, इस पर हम दोनों चलेंगे। तुम नया स्कूटर नहीं ले रहे और इसे चलाना क्यों नहीं छोड़ते।'

'कुछ नहीं होगा। इससे भी हम समय पर पहुँच जाएँगे। तुम स्कूटर चलाते होते तो उसी पर ही चलते। पर अब इस पर ही सही।' विनय ने कहा। हम चले तो गये। पर जब तक कार्यक्रम में शामिल होकर और वापस उसी स्कूटर से लौटकर हम घर नहीं आ गये, मैं डरता रहा। जिन्हें कभी स्मरण नहीं किया, वे ही याद आते रहे। याद आया, ऐसे ही एक दिन मैं दफ्तर से घर अपने सहयोगी की मोटर सायकल पर बैठकर आया। उसकी तेजी देखकर भी डर गया था और पत्नी की सलाह याद आई थी। वह कहती है कि जब किसी बात का डर सताये तो मन में हनुमान चालीसा पढ़ते रहना चाहिये। मैं हँस देता पर उस दिन उस मोटर सायकल पर अनायास मुँह से निकल ही पड़ा - 'जय जय जय हनुमान गुँसाई। कृपा करो गुरुदेव की नाँई।' आज भी वही हुआ। घर लौटकर जब सबको यह सुनाया तो उपहास का पात्र भी बना। दोनों बार यही सोचा कि बच गये प्रभास बाबू। यह भी सोचा कि अच्छा हुआ बारिश नहीं हुई, वरना।

ऐसे ही दिन बीत रहे हैं। जिन दिनों अभिन्न और शिवेन्द्र के साथ घुमक्कड़ी होती थी तब और भी रोमांचक बीतते थे दिन। एक दिन हम तीनों साइकलों पर देवास जाने का सोचकर निकले, पर नरवर से ही लौट आये थे थक कर। यह सब अपनी बैठक में, बाहर की ओर खुलती खिड़की के पास या कभी पोर्च के बाहरी दरवाजे पर खड़े हुए मैं आज भी सोचता रहता हूँ। बचपन में इसी तरह तीन खिड़की वाले कमरे से बाहर देखता रहता था। कभी ऊपर से ही किसी को आवाज़ देता। वह इधर-उधर देखता और मैं नीचे बैठ जाता। अब वह उम्र नहीं रही। भीतर से निर्मला आवाज़ देती है, अन्दर आ जाओ। बारिश का कुछ ठीक नहीं इन दिनों। पता नहीं कब हो जाए। अन्दर आकर किचन में रखे स्टूल पर बैठ जाता हूँ। निर्मला कहती है - 'पुराने घर का मलबा देखकर तुम ज्यादा ही उदास हो। है न यही बात।’

'नहीं, ऐसा कुछ नहीं है। बस यूँ ही। मन नहीं लग रहा किसी काम में।' मैं कहता हूँ। हर दूसरे-तीसरे दिन ऐसी बातचीत हो जाती है। मैं खुद भी अपने को टटोलता हूँ कि उस घर को मलबा बने देखकर ही तो मैं उदास हो रहा हूँ। शायद ऐसा ही हो। दुःख-दायक तो है यूँ उसका मलबा हो जाना। जो कभी सोचा नहीं, जिस विषयक किसी ने कभी कुछ बताया नहीं और एक दिन अचानक उसे देखा तो एक मलबे के टीले के रूप में। जिस घर में पैदा हुआ। बचपन बीता जहाँ। लगभग सत्रह-अठारह बरस जहाँ जिये और जीने की तमीज़ और अपनी सोच का संसार जहाँ पाया, वही अब धराशायी हो गया। कोई ऐसे छीनता है किसी के बचपन को। पर यह सोचने से क्या फायदा। फायदा जिसे जहाँ मिल रहा है, वही काम वह कर रहा है। हमें क्या। पर मन को कितना भी बहला ले कोई, याद तो आती है। मैं तो बहुत याद करता हूँ अपना बचपन और वह घर।

वह समय, उस समय से जुड़ी हुई अनेक घटनाएँ सुखद नहीं रही। बहुत सी घटनाएँ एक हादसा थीं। बहुत बड़ी त्रासदी भी। वह सब भूल नहीं पाऊँगा। क्या नहीं था उन दिनों। वह एक दिन जब उसी घर में पाटी-पूजा की रस्म हुई और मुझे नई पेठ के एक स्कूल में भरती कराया गया। जहाँ पंचोली मास्टर साहब ने अक्षर-ज्ञान, गिनती-पहाड़ों और सुबह की प्रार्थनाओं से प्रारंभ किया जीवन का एक आवश्यक अध्याय। 'हे प्रभु आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिए, शीघ्र सारे दुर्गुणों से दूर हमको कीजिए।' इसी प्रार्थना से दिन की शुरुआत होती थी। फिर गिनती पहाड़ा, पौआ, अद्‌धा, सवैया, डेढ़ा, अढ़ाई और गुणा-

भाग का ज्ञान सब नई पेठ के स्कूल ने सिखाया। मास्टर साहब घर भी आते थे। हर पूर्णिमा तिथि पर और सत्यनारायण की कथा कहते, पूजा-पाठ करते।

दिन बीते और बाद में हाट-बाजार में प्राथमिक शाला के पांच बरस फिर गोला मंडी का मिडिल स्कूल जहाँ से नई शिक्षा, नये दोस्त और नये शिक्षक मिले। घर पर भी अक्सर बहुत से मास्टर साहब आते रहते थे।

उन दिनों कई बार रसोई घर की एक खिड़की पर बैठा हुआ गली के उस पार बड़ी हवेली को देखता। तीन खिड़कियों से लगी एक टीन की छत थी। छत पर पेड़ों की झुकती हुई शाखाएँ और उन शाखाओं पर झूलने की कोशिश। ऐसी बहुत-सी अठखेलियाँ करते थे सब बच्चे। पूजा घर के बगल में एक खिड़की थी और बरामदानुमा छत। उस छत पर सहजन के पेड़ की झुकती हुई डालियाँ थीं। सामने बड़ा तालाब और खेत। इस छत और तीन खिड़की वाले कमरे की छत को जोड़ती घर के पिछवाड़े की टापरेनुमा छत। उस पर झुकती जामुन के पेड़ की डालियाँ। जामुन तोड़ना उस छत पर उतरकर, रोज़ की एक दिनचर्या रहती थी। एक बार ऐसे ही एक डाल को पकड़कर जामुन तोड़ने की कोशिश में कुछ ज्यादा ही आगे निकल गया और नीचे आँगन में छाती के बल गिर पड़ा। पता नहीं कितनी देर तक अचेत रहा। होश आया तब मैं पूजा वाले कमरे में था। माँ बालों को सहला रही थीं। छोटी दादी छाती पर कुछ मल रही थी। शेष परिजन मेरी चोट से बेखबर बने शैतानियों पर प्रवचन देते रहे। कुछ बुज़ुर्ग माँ को उपदेश देते रहे। याद आता है वह दिन बार-बार।

आज भी याद आती है वे सीढ़ियां जहाँ से उतरकर नीचे गली से होता हुआ बड़ी हवेली पहुँच जाता था। बड़ी हवेली जिसे सब 'मधुवन' कहते थे। मधुवन यानी फुलवारी। तो मधुवन वस्तुतः एक बगीचा ही था बड़ी हवेली से सटा हुआ। हवेली, राजमहल का आभास देती हुई। माँ, दादी और कभी कभी पिता भी बताया करते थे इसी हवेली की बातें। ऊपरी मंजिल पर पहुँचते हुए बाँए हाथ पर एक बरामदा और उससे सटा हुआ एक बड़ा कमरा है। यही कमरा बड़े बाबा साहब की बैठक, शयन कक्ष और दफ्तर सब कुछ था। इसी कमरे के नीचे एक गहरा तलघर था। तलघर के बगल में तल मंजिल पर बड़ा हॉल, जिसके ऊपर एक खुली छत का बरामदानुमा कक्ष, जहाँ कभी दरबार सजता था। इसकी बाँयी बाजू एक बरामदा और उससे लगा हुआ एक और बड़ा कमरा, जहाँ प्रतिवर्ष नवरात्रि की पूजा, हवन और आरती होती थी। यहीं पर दीपावली की पूजा भी

होती थी। पिता बताते, खुली छत पर राजसी महफिलें हुआ करती थीं। रजवाड़े की चापलूसी के नये-नये प्रस्ताव यहाँ पारित होते थे। महफिल में राजघराने से जुड़े हुए सभी जागीरदार, ज़मीदार, ठाकुर-ठिकानेदार जुड़ते थे। अंग्रेज अफसर भी आते थे महफिल में।

पिता ने इससे ज्यादा कभी नहीं बताया। शायद कुछ बातें ऐसी होंगी जो वे बच्चों से नहीं कहना चाहते हों। पर इतना तो समझ में आने लगा था कि महफिल में सुरा-सुन्दरी के साथ नाच-गाने और रतजगे ही होते होंगे। पिता वह सब छिपा जाते थे।

बड़ी हवेली के पीछे एक कुआँ था। पास ही शिव-मन्दिर और पीपल का वृक्ष। आसपास फूलों और जंगल वनस्पतियों की झाड़ियाँ थीं। फुलवारी के सामने एक नीम का पेड़ था। तीन खिड़कियों वाले घर और बड़ी हवेली के बीच नागिन-सी लहराती गली के मुहाने पर एक बड़ा काला दरवाजा था। हवेली की सीढ़ियों के बगल से महल के बाहरी 'प्रवेश द्वार' की तरह एक दरवाज़ा रजवाड़े की ठसक बयान करता था। यह द्वार कुछ वैसा ही था जैसा नाग सरोवर से बाहर नई सड़क की ओर जाती गली के अन्त में एक द्वार बना हुआ है। एक और द्वार कोतवाली से आगे और चौक के बगीचे से पहले है जिसे सती द्वार कहते हैं। ठीक वैसा ही द्वार था बड़ी हवेली का 'प्रवेश द्वार'।

जब भी पुराने दिनों की याद करता हूँ, बड़ी हवेली का प्रवेश द्वार, काला दरवाजा और तीन खिड़कियों वाला कमरा सबसे पहले किसी चलचित्र के एक दृश्य की तरह उभरने लगता है। ऐसे ही एक दिन मैं तीन खिड़की वाले कमरे की बीच वाली खिड़की पर खड़ा था। सामने से महमूद मास्टर साहब घर की ओर आते दिखाई दिये। मैंने उन्हें और उन्होंने मुझे देखा तो मैंने ऊपर से ही नमस्कार किया। वे मुस्कुराए और इशारे से नीचे बुलाया। भागकर मैं नीचे पहुंचा और उनकी कुर्सी के पास खड़ा हो गया। वे बाबा साहब से बतिया रहे थे। शायद वे भूल गये कि उन्होंने मुझे बुलाया था। मैंने यह सोचकर कहा- 'सर, मैं जाऊँ?'

'नहीं, रुको अभी' उन्होंने कहा। लेकिन उनकी बातचीत लम्बी चली और वे तुरन्त ही चले गये। अक्सर ऐसा ही होता है, स्कूल में भी। हालांकि सब उन्हें हरफनमौला कहते थे। वे थे तो अंग्रेजी के व्याख्याता किन्तु हिन्दी और संस्कृत की भी कक्षाएँ लेते थे। उर्दू उनकी मातृ भाषा थी। ज्योतिष विद्या भी जानते थे। कई बार विषय को नया मोड़ देते

हुए इतिहास की बात भी करते। एक बार बता रहे थे - 'समय गलत नहीं होता। गलत, समय की इबारत लिखने वाले कुछ हाथ होते हैं। वे हाथ लोगों की परेशानियों को नहीं देखते। उनके शब्द हँसी को नहीं जानते। हमारे तुम्हारे सवालों से दूर जाते हुए अपनी शिकारगाह में सवालों को बन्दी बनाने की जगह खोजते रहते हैं।'

उनकी कही हुई बातें तब समझ में नहीं आती थीं। लेकिन हवेलियों के कई सत्य जब सामने आते गये तब उन बातों के अर्थ भी खुलते गये। पुरखों के इतिहास, काला दरवाजा, घुड़साल, तलघर और 'तिमंजिले' में कितने ही सपनों के ध्वंस और हाहाकार की कहानियाँ छुपी हुई हैं, इसे जानने की इच्छा इसी खिड़की वाले कमरे में रहते ही हुई थी। वह कमरा, सामने नीम का पेड़ और आँगन में जामुन। घर से नीचे उतरकर दायीं ओर बनी हुई घुड़साल और बड़ी हवेली के सामने खड़ा हुआ नीम। पीछे, मंदिर के समीप खड़ा पीपल और सामने हवेली की दूसरी मंजिल से झाँकता खंडित गुम्बद। जब-जब ये सब याद आते हैं, तब-तब हमेशा कुछ पुराने दृश्य भी भीतर घूमने से लगते हैं। मैं आँखें बन्द करता हूँ तो सामने वह पीपल का पेड़ आसमान से उतरता हुआ लगता है। जैसे ही यह पेड़ धरती पर टिकता है, आसपास कुछ चेहरे उभरते है। कुछ अपने, कुछ पराये। और दो घूरती आँखें मुझ पर स्थिर। कुछ प्रश्न गूँजते हैं। तब भी गूँजते थे, आज भी गूँज रहे हैं। इन प्रश्नों का सीधा समाधान कभी नहीं मिला। कहानियाँ बहुत-सी सुनी। अनुभव बहुत कुछ हुआ। लेकिन रिश्तों की अनबूझी पहेलियाँ, उन रिश्तों की सुलझी - अनसुलझी बहुत-सी गाँठे अब भी हैं।

बड़ी हवेली के नीम और पीपल ने कितने ही सत्य उजागर किये थे तब। अनेक सवाल उठे थे मन में और समाधान खोजने के असफल प्रयासों के कारण एक अलग ही विचार मन के भीतर गहरे कुरेदता हुआ धंस गया। उस ठाठ-बाट, वैभव और हाहाकार के बीच अपने और दूसरों के सम्बन्धों का रहस्य-लोक उतर रहा था। अपने घर के नीम और जामुन के आसपास रहते हुए एक अपनापन लगता था मन को। लेकिन बड़ी हवेली के नीम और पीपल के समीप जाते हुए कुछ जानने-खोजने की जिज्ञासा, आकुलता और एक अज्ञात भय-सा अनुभव होता था। मन में कुछ सवाल उठते तो माँ से पूछता था।

फिर एक दिन। माँ से पूछा - 'ये बड़ी हवेली वाले सब डरावने क्यों हैं माँ?'

'ऐसा नहीं बोलते। वह तुम्हारे बड़े बाबा का घर है।' माँ कहतीं।

'वह तो ठीक है। पर वह बाबा कभी हमारे घर तो आते नहीं हैं।'

'उन्हें अपने काम से फुरसत नहीं मिलती होगी। छोड़ो यह सब अब।'

'नहीं माँ वह बूढ़ी मुझे घूरती रहती है।' मैं चिढ़कर बोलता।

'दादीजी हैं वह और यह बड़ी हवेली क्यों कहते हो? मधुवन है वह।' माँ कहतीं।

मैं कुछ और पूछने की कोशिश करता तो माँ 'काम करने दो अभी' कहकर तीन खिड़की वाले कमरे की ओर चली जातीं। तब ही बाहर कुछ शोर होता और मैं भी भागकर नीचे घुड़साल के सामने ग्वाड़ी के दोस्तों के साथ ऊधम में शामिल हो जाता।

ग्वाड़ी के दोस्त मेरे अपने थे। लोचन, कालू, नंदू और नारायण। मंदिर के पीछे वाली बस्ती के भी कुछ हम उम्र थे। ग्यारसीलाल, अनोखेलाल, जग्गू और लालू। बड़े बाबा के छोटे पुत्र थे गोपीचंद। हमउम्र थे। मैं उन्हें अक्सर घुग्घु कहकर बुलाता और वह चिढ़ जाते। बँगलानुमा छोटी हवेली के श्याम, विजय और बड़े भाई माधव भी मित्र-मंडली में शामिल थे। ये सब भी गोपीचंद को घुग्घु और कभी गोपू कहते। तब इस मंडली में अभिन्न, शिवेन्द्र, रईस अहमद और विनय नहीं थे। ये मेरे अपने थे जो मुझे कुछ बरसों बाद मिले। इनके मिलने तक पुराने दोस्त बहुत आगे निकल गए थे। ग्वाड़ियों के जीवन से बहुत दूर।

गाँठे उलझ गई थीं। कितने ही प्रश्न उठे थे तब। अब भी कुछ प्रश्न बने हुए हैं। हवेली के चौगान में नीम के पेड़ के पास और मंदिर के पीपल के पीछे से घूरती आँखों ने, कुछ लोगों ने जो घाव दिए थे कईयों को, उनसे पीछा नहीं छूटा। आँखें पीछे छूट जाती हैं, शब्द साथ ही रहते हैं। कुरेदते रहते हैं भीतर ही भीतर।

कितनी ही वारदातें, कितनी ही कलह कथाएँ और कुंठाएँ सम्मिलित होकर कितने ही संसारों का सृजन कर गईं। ऐसे भी दिन थे, जब मैंने चौगान और मंदिर के पीपल के पास जाना ही छोड़ दिया था। उलझन, जिज्ञासा और सवालों ने जवाब की प्रतीक्षा में थककर एक नफरत बसा ली थी अपने भीतर। नफरत अब तक है।

हवेलियों से नदी मार्ग की घाटी-बस्ती तक एक रहस्य-लोक फैला हुआ था। इस लोक में मानों अय्यारों की ही हुकूमत थी। मैं पीपल की गाँठ को खोलते-खोलते इस तिलिस्म

में घिरकर कुछ खोजता हूँ, पर हाथ कुछ नहीं आता। एक आवाज़, निरंतर हवेलियों से निकलकर हर रास्ते पर रुकावट बन जाती है।

तिलिस्म, रहस्य लोक, एक उलझन और कुछ सवालों के बीच कुछ खोजने की कोशिश लगातार करता रहा हूँ। एक दिन, जब कुछ सवालों के जवाब मिले तो उलझन और बढ़ गई थी। इन्हीं उलझनों के बीच पलकर-बढ़कर ही अपनी एक जगह बनाई है, लेकिन मन बार-बार उन जगहों पर चला जाता है जो कभी अपनी थीं या हम उन्हें अपना समझने की भूल करते रहे। कई जगहें जो अब बची ही नहीं, उन्हें खोकर फिर से पाने की तड़प क्यों होती है। जबकि उनसे अलग भी अपना कोई वजूद है। अपनी एक दुनिया है अलग, जिसे बचाना जरुरी है। तब किसी को ऐसा महसूस हुआ भी था या नहीं, क्या पता। अब कौन कितना सोच पाया है, यह एक नया सवाल व्याकुल कर जाता है भीतर तक।

उस दिन, जब कहीं जाने के लिए निकला था तो वहाँ उस आशियाने को मलबे का ढ़ेर बना देखकर जो पीड़ा हुई थी, उससे अलग होकर ये नये सवाल किसी न किसी रूप में परस्पर जुड़े हुए हैं। मुझे लगता है यही सोच मेरे अपनों की शायद न भी हो। फिर भी मैं चाहता हूँ कि यह सोच सबकी हो। ऐसा नहीं हुआ और कितनी ही नई गाँठें बनती गईं।

अब लगता है यह मेरी ही समस्या है। शुरू से ही। जूझता रहा मैं ही, इससे, उससे, सबसे। पूछता रहा माँ से, पिता से। छोटे बाबा से, उनकी माँ-बूढ़ी अम्मा से भी पूछा। सिर्फ यही थीं जो सुनती थीं। पर पूरी तसल्ली फिर भी नहीं हुई कभी। मलबे का ढ़ेर बने उस घर की तल मंजिल वाले बड़े हॉल की एक दीवार पर टंगी तस्वीर, इस नामी गिरामी कुनबे के मुखिया की थी जिन्होंने यह घर बनवाया था। ध्यान से देखता था वह तस्वीर मैं जो मुझे किसी बूढ़े मराठा सरदार जैसी लगती रही हमेशा। पर कहता नहीं था कभी किसी से। यों थे भी वे सिंधिया दरबार से जुड़ी एक शख्सियत। ऐसा सुनता था।

आजकल अपनी हर उलझन को निर्मला से साझा करता हूँ। पर वह सिर्फ सुनती रहती है। विनय से बात करता हूँ तो वह कहता है कि 'कुछ समय के लिए अपने भीतर से निकलकर सोचो जरा।'

'तुम बात को घुमा रहे हो विनय।' मैं कहता।

'नहीं। तुमने अपने को, अपनी ही यात्रा में स्वयं गढ़ा है। आत्म-सम्मान और अपने होने का एक जुदा अहसास, तुम्हारा स्वभाव है। उसमें, तुम्हारे अतीत में, अतीत के घटना-संसार में और उन तमाम लोगों में रिश्तों की बुनियाद क्या है? वे कौन हैं, कितने अपने थे और अब भी हैं, इसे पहचानो। तुम्हारा रास्ता क्या है और क्या होना है, यह किसी और को नहीं तुम्हें स्वयं तय करना है।'

हर समय, विनय की एक ही सोच रही है। 'तय तो करो।' मैं तय करता हूँ। अपने दायित्व-बोध भी। बचपन से आज तक यही करता आया हूँ। पहली बार, जब उस मलबा बन चुके घर में उन बुजुर्गवार की तस्वीर देखी थी, उसके बाद ही पहले सवाल के जवाब में माँ से सुना था तुम्हारे बाबूजी के दादाजी हैं वे। हँसी आई थी मुझे तब। उन जैसा तो कोई नहीं दिखता घर में, मैं सोचता। तब ही पहली बार यह भी पूछा माँ से कि 'और हमारे दादाजी। उनकी तो कोई तस्वीर नहीं है घर में।' तब माँ ने घर के अलबम में एक तस्वीर दिखाई थी। एक छोटा सा बच्चा था। पूछने पर बताया था कि उनके बचपन का फोटो है यह। अपनी बाल-सुलभ चपलता में जब मैं दादाजी की तस्वीर कागज़ पर बनाने की कोशिश करता और मुझसे कुछ नहीं हो पाता, तब मैं जिद करता था माँ से। माँ कहतीं - 'बाबूजी से पूछेंगे।'

तब ही एक दिन बाबूजी यानी पिता एक ग्रुप फोटो फ्रेम करवाकर लाए। उसमें दादी थीं। कुछ दिन पहले ही एक फोटो स्टूडियो में वह फोटो खींची गई थी। कुछ समय बाद ही दादी नहीं रही थीं। तब ही माँ ने यह भी बताया था कि तुम्हारे दादाजी के समय तो हम ही नहीं थे यहाँ। हमने भी नहीं देखा उन्हें। इस बात को कुछ बरस बीते ही थे कि छोटे काका एक बड़ा सा फोटो, मयफ्रेम के लेकर आये थे। वह फोटो दादाजी की थी। पर उनके दाढ़ी नहीं थी उन बुजुर्ग बाबाजी की तरह। मूंछे थीं और सिर पर टोपी। बाद में पता चला कि उनके दफ्तर का एक ग्रुप फोटो था, बाबूजी के पास। उसमें से दादाजी की फोटो का नया निगेटिव बनवाकर काका ने उसे इन्लार्ज करवा लिया। फिर फ्रेम करवाकर एक फोटो बाबूजी को दिया। यह फोटो आज भी माधव के पास सुरक्षित है। दादी का फोटो भी ग्रुप फोटो से नया निगेटिव बनवाकर मैंने इन्लार्ज करवाया था और बाबूजी को भी दिया था। तब मैं रतलाम में पदस्थ था।

यह सब सोच-विचार चलता रहता निरंतर। मलबे के दृश्य के साथ ही "वंश-ग्रंथ" की बात भी रह-रह कर बेचैन किये रहती। उदास हो जाता यह याद कर कि कैसे उसे पढ़ने

की कोशिश करता देख, छोटे बाबा ने पकड़ लिया था। फिर उसे पढ़ नहीं पाया कभी। जब उसमें पढ़ी बातें, बुढ़ी अम्मा की बातें, बाबूजी से सुनी बातों से नहीं मिलती तब बेचैनी और भी बढ़ जाती थी। आज भी वही बेचैनी है। आखिर सच क्या था। क्या है, जबकि बहुत पहले ही हमने जान लिया था कि दादाजी इस परिवार में दत्तक थे। यानी इस कुनबे से हमारा रिश्ता सगा नहीं था। पर माँ तो उसी परिवार से आई थीं, जहाँ से छोटी दादी। फिर ऐसा क्या हुआ कि तस्वीर ही बदल गई। तब भी ये बातें होती थीं और सब कुछ बिखर रहा था। पर नहीं बदल रहे थे कुछ लोग, उनकी सोच, उनके समर्पण। आखिर क्यों है ऐसा? यह सवाल तब भी था और आज मलबा देखकर मेरे भीतर की आग फिर सुलग उठी थी।

***

भाग-3

आज सर्वपितृ अमावस्या है। सुबह बारिश हो रही थी, लेकिन अभी मौसम साफ है। बरसों पहले का वही मौसम याद आता है। तब इन दिनों जैसी बारिश नहीं होती थी। ज़मीन पर नमी रहती थी और काले दरवाजे के पास में अपने दोस्तों के साथ कंचे खेला करता था। नीम वाले चौगान में गोपू, श्याम, विजय और माधव भाई के साथ कुछ और मित्र जुड़ जाते तब कबड्डी खेला करते थे। ग्वाड़ी के मिस्त्री से गुल्ली बनवा लेते और गुल्ली-डंडा भी होता। लेकिन बड़े बाबा हमें खेलता देखकर अक्सर चिल्लाते और हम सब काले दरवाज़े की ओर भाग जाते। लेकिन पता नहीं क्या हुआ, श्राद्ध पक्ष के तीसरे-चौथे दिन दरवाज़ा बन्द हो गया। छोटे बाबा ने हम सबको चेतावनी दी खबरदार, उधर कोई नहीं जाएगा। हम सब परेशान।

एक दिन मैंने माँ से पूछा 'क्या हुआ?'

'पता नहीं। जल्दी से तैयार हो जाओ। आज तुम्हारे दादाजी का श्राद्ध है।' मैं हट गया उधर से। तैयार होकर नीचे जा रहा था कि देखा श्याम और माधव भाई जामुन वाली छत पर बातें कर रहे थे। मैं रुककर सुनने लगा। श्याम, भाई को बता रहा था कि काले दरवाज़े को बड़े बाबा ने बन्द कराया है।

'पर क्यों?' माधव ने पूछा।

'दो दिन पहले बड़े बाबा और छोटे बाबा के बीच कुछ कहा-सुनी हो गई थी।' श्याम ने कहा। मैं चुपचाप चला आया तो देखा पिता से बुढ़ी अम्मा बात कर रही थीं। मैंने माँ से पूछा - 'माँ क्या बात हुई है। बाबूजी अम्मा से क्या बात कर रहे हैं। नीचे जा रहा था तो देखा भाई और श्याम भी वही बात कर रहे थे।'

'तुम्हारे छोटे बाबा भी दादा साहब का श्राद्ध करना चाहते हैं। बड़े बाबा इसी बात से गुस्सा हैं और दरवाजा बन्द करवा दिया उन्होंने।'

तब ही सुना, अम्मा कह रही थी - 'बाबू तुम छोटे कुँअर को समझाओ, जब बड़े कुँअर सब पूजा-पाठ करते हैं तो छोटे यह हठ न करें।'

अम्मा कभी-कभी शुद्ध भाषा में बोलने की कोशिश करती थी। खासकर जब नाराज हों। वरना वे बुन्देलखण्डी बोलतीं अक्सर।

'अब तो पूजा दोनों जगह होगी पितरों की। छोटे साहब नहीं मान रहे। पर वे बड़े साहब के यहाँ भी जाएंगे। पक्का है।' बाबूजी ने कहा।

वही हुआ। छोटे कुँअर यानी छोटे बाबा ने नीचे रसोई घर से लगे बरामदे में पूजा की। बाबूजी ने हमेशा की तरह तीन खिड़की वाले कमरे में दादाजी की पितर-पूजा की। वह अधिक विस्तार नहीं करते थे। क्योंकि वह पितृ गया जाकर पिंड दान कर आए थे। अपनी-अपनी पूजा से निवृत्त होकर वे दोनों हवेली के लिए निकले। वे मुख्य सड़क से जा रहे थे। शीतला माता मंदिर से मुड़कर पहुँचे होंगे हवेली और पिछवाड़े के रास्ते से पूजा घर गये होंगे शायद। हम सब यही सोच रहे थे।

'पीछे से गए होंगे। क्या हुआ वहाँ?' बाबूजी के लौटने पर माँ ने पूछा।

'कुछ खास नहीं। पूजा के बाद छोटे साहब ने बड़े साहब के पाँव छुए। फिर रो दिए। बड़े साहब ने रामभरोसे के लड़के को बुलवाकर काला दरवाजा खुलवा दिया।' बाबूजी ने बताया।

इस दिन के बाद छोटी दादी फिर कभी नहीं गई वहाँ। छोटे बाबा जाते रहे। हम लोगों की धमा चौकड़ी फिर शुरु हो गई थी। पर दोनों ओर एक खिंचाव बना रहा। ग्वाड़ी वाले बच्चों ने भी सामने की दो खोलियों के बगल से एक रास्ता बना लिया था।

यही वे दिन थे जब मैं कुछ-कुछ समझने लगा था। अर्थात जीवन के अर्थ। एक आदत बन गई थी कि सुनना सबकी और करना मन की। रसोई घर के बाहर की खिड़की से ग्वाड़ी से काले दरवाज़े तक फैली गली को देखता रहता। घर में और घर से बाहर भी बहुत कुछ समझ से परे था। ग्वाड़ियों में, लोगों के चेहरे पढ़ना भी आसान नहीं था। मंदिर के पीछे वाली बस्ती की ओर जाना निषिद्ध था। वहाँ रहने वालों से मिलने की मनाही थी। बड़े बाबा पंडित रामदास का आदेश जिसे छोटे बाबा प्रेमदास और बाबूजी ने भी मान लिया था।

नीचे वाले हॉल में छोटे बाबा का दरबार लगता। बहुत से लोग आते रहते थे। बाबूजी हर महीने की दूसरी तारीख को छोटे बाबा की ग्वाड़ी के लोगों से किराया वसूलते थे।

ऊपर माँ रसोई से हॉल, हॉल से तीन खिड़की वाले कमरे तक घूमती रहती। काम, बस काम। हर समय। चेहरा शांत, सौम्य और हमेशा हँसता हुआ। उनकी आँखों में, जब कभी सुनापन, सूखापन और खालीपन नज़र आता तो लगता, जैसे छोटे से आकाश में छुपी रोशनी किसी बदले हुए दृश्य में भटका हुआ अपना बादल खोज रही है। बाबूजी यंत्रवत चलते रहते। हम सब बच्चे घुड़साल से काला दरवाजा, वहाँ से नीम-पीपल और मंदिर के पास घूमते रहते। फिर तीन खिड़कियों वाले कमरे के नीचे, नीम के पेड़ के पास आकर सुस्ताते। कभी हवा, कभी उमस और कभी ठंड होती। हम सब इस मौसम के बदलाव में भी अपनी मस्ती, हुड़दंग और झगड़ों में यहाँ-वहाँ मंडराते थे। लेकिन कुछ न कुछ करते हुए भी एक खिंचाव को निरंतर अनुभव कर रहे थे। फिर भी, मैं सोचता था कि एक धारणा बना लेने से अच्छा है, समझने-समझाने की कोशिश की जाए। बात हो, संवाद हो और बहस भी हो जाए तो हर्ज नहीं। बशर्ते निर्णायक हो। फिर सोचता कि सबकी समझ और सोच एक-सी नहीं होती। इस सबके बीच माँ, दादी, नानी और महमूद मास्टर साहब की बातें याद आती।

'कीचड़ में पत्थर फेंकोगे तो छींटे तुम पर ही पड़ेंगे।' माँ ने कहा था एक बार। यह भी कहा था एक बार कि 'पत्थर पर सिर टकराने से कुछ नहीं मिलता, माथे पर अपना ही खून छलकता है।'

'अकल पर पत्थर पड़ गए हैं सबकी। अब भगवान ही मालिक हैं इस घर के।' दादी कहती थीं अक्सर।

बूढ़ी अम्मा तुरन्त टोंकती - 'ऐसी बात नहीं है री। कोई बात तो है झगड़ा के पीछे।' दादी चुप हो जातीं।

फिर एक दिन, दादी चली गई थीं दूर किसी दूसरे शहर। काका की गृहस्थी बसाने की चिन्ता थी उन्हें। फिर लौटी नहीं, आई थीं सिर्फ एक बार। पहली बार आई थीं यहाँ दादाजी के गुज़र जाने के बाद। पिता बताते थे कि उनके साथ दादी ने भी मुंडन करवा लिया था। हम सबने उन्हें छोटे-छोटे बालों में ही देखा है। दादाजी की मृत्यु के समय पिता अविवाहित थे। फिर जब गई थीं वह तब हम भाई-बहिन भी थे यहाँ।

महमूद मास्टर साहब कहते थे, काजल की कोठरी, काली रात और कोयले के साथ ही कई बातें। अद्भुत लगती थीं उनकी बातें और कहने का अन्दाज़। वे कहते थे - 'काले से

खेलोगे तो काले ही होगे न, खुद भी। फिर, क्यों भागना उधर, जिधर कोई डोर नहीं झूलती अपनत्व की। जहाँ सिर्फ अंधेरा है। घर का अंधेरा और मन का अंधेरा भी। गहरा अंधेरा। समझ जाओगे कभी।'

माँ से पूछता था इन बातों का मतलब। कीचड़ में पत्थर, पत्थर पर सिर, अक्ल में पत्थर, झगड़े के पीछे की कोई बात, काली रात और अंधेरा.... अपनापन जैसी कई बातों के मतलब। माँ से कोई जवाब नहीं मिला कभी। और अब, जब कुछ-कुछ समझ में आने लगा है, तब माँ भी खुलने लगी हैं। बताने समझाने लगी हैं कुछ-कुछ बातें। पिता का मौन नहीं टूटता।

छोटी उम्र और बड़े-बड़े हादसे। पिता की खामोशी और बूढ़ी अम्मा का चिड़चिड़ापन। समझ नहीं सका कभी। माँ को फुरसत नहीं रही। अपने दादाजी को नहीं देख पाने का अव्यक्त-अदृश्य दुख कभी-कभी अनावश्यक-सा प्रतीत होता। दादी का यूँ चले जाना भी समझ नहीं पाता था अक्सर। मंदिर का अहाता, कुएँ की जगत और नीम वाले चौगान से जुड़ी क्रूर यादें मन को अशान्त करती थीं। अकेलेपन का अनुभव विचलित करता था।

तीन खिड़कियों वाले कमरे से सटा छोटा कमरा रहस्यमय लगता था। साल में एक या दो बार खुलता था वह। वहाँ क्या है, बन्द क्यों रहता है और खुलने पर भी भीतर से बन्द क्यों हो जाता है? सवाल उठते थे मन में। जवाब मिलता- 'तुम पूछते बहुत हो हमेशा ही। चुप रहना सीखो।'

तीन खिड़कियों वाले कमरे की दूसरी तरफ भी एक कमरा था। माँ की गृहस्थी का भंडारा, सदैव खुला रहता। रसोईघर और इस कमरे के बीच, दरवाज़े से लगी सीढ़िया हैं ऊपर जाती हुई। तीसरी मंजिल पर पूरे घर की छत बहुकोणीय छत। लंबा-चौड़ा, लेकिन ऊँचाई में कम है वह कमरा, जिसे सब तिमंजिला कहते थे। अंधेरा, बन्द कमरा। उधर बड़ी हवेली में भी रसोई से ही लगा एक लम्बा-चौड़ा और गहरा तलघर था। नीचे की ओर जाती हुई सीढ़ियाँ। एक और अंधेरा, बन्द कमरा। तिमंजिले के दरवाज़े पर सिर्फ सांकल और तलघर के दरवाज़े पर लटकता था ताला। ये जगहें रहस्यमय लगतीं। एक कौतुहल और जिज्ञासा होती थी सबके मन में। माधव, श्याम, विजय, कमल और मैं, उत्सुक रहते देखने को। गोपीचंद दूर रहता था। हम नहीं जानते थे कि उसे सब मालूम है।

इसी तरह दादाजी और हमारे घर के बारे में श्याम और विजय भी जानते थे सब। जानकर भी अनजान बने रहते।

सर्वपितृ अमावस्या के बाद, सब कुछ जानने की मेरी इच्छा अब कुछ आगे की सोच में बदल रही थी। माधव और कमल के मन में कोई उत्सुकता नहीं थी। श्याम, विजय और गोपीचंद, कुछ पूछने पर कतरा जाते थे। मैं सोचता रहता कि क्या करूँ अब। एक दिन स्कूल से लौटकर देखा कि माँ रसोईघर में बैठी हैं। चुप। मैं भी पास ही बैठ गया।

'माँ, दीवाली पास आ रही है। कुछ साफ-सफाई करना हो तो बताओ।' माँ चुप थीं।

'क्या बात है माँ? कुछ हुआ है क्या?' मैंने फिर पूछा।

'कुछ नहीं। जाओ, मुँह-हाथ धोकर आओ।' माँ चौंक गई।

मैं चला गया। बस्ता रखा। कपड़े बदले और गुसलखाने में चला गया। लौटकर आया और कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा। माँ अब भी चुप बैठी हुई थीं। माँ शायद फिर सोच में डूबी कहीं ओर पहुँच गई थीं। नयना जीजी भी रसोई के काम में साथ दे रही थीं। मैं चला गया नीचे। वहाँ भी रसोई में छोटी दादी अपनी बड़ी बेटी के साथ काम में मशगूल थीं। बाहर बैठक में छोटे बाबा लाल जिल्द की मोटी कॉपी में कुछ लिख रहे थे। उन्हें पहले भी मैंने उस पोथीनुमा कॉपी में लिखते देखा है। वे कुछ देर लिखते और फिर उसे एक कपड़े में लपेटकर बड़ी आलमारी में रख देते। काँच के दरवाज़े वाली उस आलमारी में किताबों, रजिस्टर और बहीखातों के बीच एक बन्दूक, एक तलवार और एक बाजा रखा नजर आता। नीचे के खण्ड में महाभारत, प्रेमसागर, सुखसागर और कई धार्मिक पुस्तकें रखी रहती हैं। बहुत उत्सुकता रहती उस सबको देखने की। कल्याण के अंक पहले नियमित आते थे, फिर धीरे-धीरे आना बन्द हो गया। गीता प्रेस, गोरखपुर की कुछ किताबें और कुछ अन्य बहीखाते-सी पुस्तकें। लेकिन सब ताले में बन्द रहतीं।

फिर एक दिन। शायद रविवार था। मैं नीचे उतरा तो देखा बैठक में छोटे बाबा आराम कुर्सी पर बैठे हुए पैर हिला रहे हैं। हाथ में उनके वही लाल किताब है जो अक्सर मैंने उनके हाथ में देखी है। कभी उसे पास में रखी तिपाई पर रख देते और एक बहीखाते जैसी लम्बी किताब से कुछ पढ़ते। फिर उसे रखकर लाल किताब में लिखना शुरू कर देते। मैं गोलमेज के पास बैठा हुआ उन्हें देखता रहा। वे नज़र उठाकर इधर-उधर देखते और मैं ऊपर, दीवार पर टँगी दाढ़ी वाले दादा साहब की फोटो देखने लगता। आज बड़ी

आलमारी का ताला खुला हुआ था। श्याम वहाँ बैठा हुआ चीजों को उलट-पलट देख रहा था। उसने बाजे का बक्सा निकाल लिया और देखने लगा।

'बाबा साहब यह क्या है?' उसने पूछा।

मैं भी तब तक उसके पास आ गया था।

'यह ग्रामोफोन है।' बाबा साहब ने कहा।

'यह क्या करता है बाबा साहब?' मैंने पूछा।

बाबा साहब भी तब उठकर वहाँ आ गये। एक और थैली उन्होंने निकाली और उसमें से कुछ निकाला। वे गोल काली तश्तरियाँ-सी थीं। बीच में छेद। 'इन्हें रिकार्ड कहते हैं।' यह कहकर बाबा साहब ने एक रिकार्ड लेकर ग्रामोफोन की तश्तरी में लगा दिया और उसमें लगे तार को बिजली-बोर्ड में लगा दिया। एक बटन दबाया और एक हैण्डल को घुमाया। वह रिकार्ड घूमने लगा।

उसमें से आवाज़ आने लगी संगीत के साथ 'बाबुल मोरा नैहर छूटो ही जाय।'

फिर तो हमारे खेलकूद की दिनचर्या में यह बाजा भी शामिल हो गया। क्योंकि पता नहीं क्या सोचकर बाबा साहब ने उस आलमारी में ताला नहीं लगाया। शायद भूल गये हों, मैंने सोचा। लेकिन अब मैं उसमें रखी किताबों की ओर आकर्षित हो रहा था। बाकी सब बाजा बजाते रहते। फिर जब मन होता मधुवन की ओर चले जाते। मैं किताबें टटोलता रहता। मैं उस लाल किताब को देखने और पढ़ने की ओर ज्यादा व्याकुल हो रहा था। वह किताब उस आलमारी में नहीं मिली फिर। पर मैं भूला नहीं।

भूला तो रसोई और भण्डार के बीच वाले दरवाज़े से सटी सीढ़ियाँ, ऊपर तिमंजिला, मधुवन के सामने नीम का पेड़ और हवेली के बड़े कमरे के बाजू से नीचे की ओर जाती सीढ़ियाँ, अंधेरा और तलघर भी नहीं। ये सब मन में एक उथल-पुथल मचाते।

नीम के पेड़ में कुछ नया या अलग नहीं था। पर, फिर भी वह उस दिन मेरे लिए, मेरे भीतर की उथल-पुथल के लिए जिम्मेदार बन गया था।

उस दिन। और फिर एक दिन। मैं तीन खिड़कियों वाले कमरे में खड़ा था। बीच वाली खिड़की से नीम के पेड़ की झुकी हुई डाल को पकड़ने की कोशिश कर रहा था। तभी नीचे से कुछ आवाज़ें सुनाई दीं। गाना बज रहा था हॉल में शायद। मैं अपनी कोशिश को

अधूरा छोड़ नीचे भागा। लेकिन पूजा घर से बड़ी अम्मा की पुकार ने रोक लिया। उन्होंने रामचरित मानस पकड़ा दी और बोलीं 'पिरभू तनिक सुन्दरकांड पढ़कर सुना दे। तेरी मताई (माँ) शायद चूल्हा-चौका में लगी है।'

मैं रुक गया। चाह रहा था कि चुपचाप निकल जाऊँ। पर, पीछे से माँ ने आकर बिठा दिया और किताब उठाकर हाथ में पकड़ा दी। मैं पढ़ने लगा 'शान्तं शाश्वतम प्रमेय मनघं निर्वाणशान्ति प्रदं ब्रह्ममाशंभु फणीन्द्र सेव्यनिशं वेदान्तवेद्यं विशुभ। रामाख्यां जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूड़ामणिम्।' माँ फिर आई और कान उमेठकर बोलीं - 'पंडित मत बनो। श्लोक का अर्थ हिन्दी में भी सुनाओ।' मैं फिर पढ़ने लगा - 'शान्त नित्य और प्रमाणों से परे, मोक्षरूपी शान्ति के देने वाले, ब्रह्मा, विष्णु, शिव और शेषनाग से निरन्तर सेवा पाने वाले, वेदान्त के जानने योग्य, सर्वव्यापी, देवताओं में प्रमुख, माया से मनुष्य रूप धारण करने वाले कृपानिधान, रघुवंश में श्रेष्ठ, राजाओं में शिरोमणि राम नाम रूपी जगदीशंदर को मैं प्रणाम करता हूँ।'

मैंने देखा, बड़ी अम्मा सुन रही हैं और पूजा भी चल रही है। पीछे मुड़ा तो माँ को दरवाज़े पर खड़ा पाया। मैं फिर पढ़ने लगा - 'जामवन्त के बचन सुहाए। सुनि हनुमन्त हृदय अति भाये।'..... सुन्दरकांड पूरा पढ़ने के बाद ही छुट्टी मिली और मैं भागकर नीचे पहुँचा। गाने अब बन्द थे। हॉल के पड़ोस वाले कमरे में पिता की मेज़ पर लाल किताब रखे छोटे बाबा लिख रहे थे। उन्होंने सोचा हो शायद कि वहाँ उन्हें कोई नहीं देख रहा है। मैं चुपचाप उनके पीछे जाकर खड़ा हो गया। कुछ देर खड़ा रहा। जब यह लगा कि लिखने में मशगूल हैं और उन्हें मेरे वहाँ होने का आभास नहीं है। मैं फुसफुसाया - 'बाबा साहब क्या लिख रहे हैं आप?'

वे चौंके और किताब बन्द कर दी। पीछे मुड़े और बोले - 'तुम यहाँ क्या रहे हो?'

'कुछ नहीं। मैं तो बस आपको लिखते देख रहा था। इसीलिए चुप था।'

बाबा साहब कुछ देर चुपचाप मुझे देखते रहे। मैं भीतर तक सिहर गया था तब। लेकिन यह जानने की प्रबल इच्छा थी कि उस लाल पुस्तक में आखिर क्या है जिसे बाबा साहब सबसे छिपाते हैं और उसे सम्हालकर रखते हैं। इसीलिए खड़ा रहा मैं।

'मैं इसमें हमारे परिवार और पुरखों का इतिहास लिख रहा हूँ। अभी नहीं, जब बड़े हो जाओगे तब पढ़ना। बहुत लिखना बाकी है, इसलिए अब जाओ, लिखने दो मुझे।' बाबा साहब मुस्कुराते हुए बोले।

मैं चला आया ऊपर ।

आज पहली बार मुझे इस बात की तसल्ली हुई कि यह तो मालूम हुआ। आखिर बाबा साहब लिख क्या रहे हैं। लेकिन कुछ प्रश्न और उठने लगे मन में। हमारा परिवार? बड़े बाबा साहब की कहानी। छोटे बाबा और पिता की कहानी। बूढ़ी और बड़ी अम्मा की कहानी। क्या सब कहानियाँ एक हैं या अलग-अलग। मैं सोचता, बड़ी अम्मा, दादी, माँ, छोटी दादी और मधुवन वाली अम्मा जब बात करती हैं तो उनकी बोली अलग होती है। पिता कई लोगों से मालवी में बातें करते हैं। नानी और छोटी दादी मिलने पर छत्तीसगढ़ी बोली बोलती हैं। हिन्दी, मालवी, छत्तीसगढ़ी और बुन्देली। लेकिन मस्जिद से निकलने वाले मालवी मिश्रित उर्दू-फारसी बोलते। मैं भी रईस, इदरीस और वकार की दोस्ती में उर्दू बोलने-समझने लगा था। अभिन्न और शिवेन्द्र के घरों के आसपास रहने वाले कई मुस्लिम लड़कों से भी हम तीनों की दोस्ती थी।

खैर। उस दिन बाबा साहब से बात करने के बाद यह सवाल मुझे परेशान करता था कि क्या हम सब एक परिवार हैं या अलग-अलग। मधुवन वालों से परायेपन का अहसास होता। दोनों बाबा साहब कभी एक हो जाते, कभी अलग। पिता दोनों के साथ रिश्ता बनाये हुए थे। फिर भी लगता छोटे बाबा साहब से वे अधिक जुड़े हुए हैं। कभी बिल्कुल अलग और अकेले हो जाते। कई बार कुछ कहते-कहते पिता रुक जाते। माँ, लगता कुछ जानते हुए भी छिपा रही हैं।

पिता क्यों रुक जाते थे कुछ कहते-कहते और माँ अपने भीतर कितना कुछ छिपाए हुए हैं। बाबा साहब ने आखिर किस धुन में मुझे बता दिया कि वे परिवार और पुरखों का इतिहास लिख रहे हैं। मेरी व्यग्रता बढ़ती गई। बार-बार पूछा था माँ से तब भी और एक दिन पिता से भी। माँ ने अधिक कुछ कभी नहीं बताया और पिता ने भी जो भी बताया वह मधुवन और तीन खिड़कियों वाले बँगलानुमा हवेली का एक अलग ही सच था। वह सच, माँ का मौन और छोटी सी, थोड़ी सी जानकारी भी बहुत कुछ कह गई थी तब। तब से आज तक मैं अपने और पराये के अन्तर को समझने में लगा हूँ। उस लाल

किताब के रहस्य को जानने की व्याकुलता ने एक और गाँठ खोल दी है। लगता है यह खुलासा एक तिलिस्म-यात्रा के अन्त की तरह ही है। लेकिन यह अन्त नहीं, मानो फिर एक यात्रा है और यात्रा के कई पड़ाव हैं। पता नहीं, अब क्या होना है। भविष्य? पर किसका? यह सवाल उठ रहे हैं। क्योंकि एक वह दिन था जब छोटे भाई नीरज ने एक किताब मुझे सौंपी थी और एक वह जिसे लिखते हुए मैंने कभी छोटे बाबा को देखा था। फिर वे बातें जो माँ और पिता से पता चली। इन सबको जोड़ना कठिन नहीं, यातनापूर्ण अवश्य है। और वह सब मलबे पर खड़ी हुई इमारत के ऊपर से खण्डहर मधुवन तक हवाओं में उड़ रही है शायद !

एक दिन, बूढ़ी अम्मा को रामचरित मानस सुनाने के बाद ही बैठा हुआ था।

बूढ़ी अम्मा ने पूछा- कुछ पूछना है क्या? पिरभू।

बूढ़ी अम्मा के यह पूछते ही मुझे बाबा साहब की किताब लिखने वाली बात याद आ गई। मैंने अम्मा से पूछ ही लिया 'अम्मा, छोटे बाबा अपने परिवार के बारे में लिख रहे हैं। क्या लिख रहे होंगे?'

बूढ़ी अम्मा ने कहा कि 'तुम्हे कैसे मालूम !'

'उन्हें लिखते हुए देखा है मैंने। उनसे पूछा भी, तो उन्होंने ही बताया कि हमारे परिवार और पुरखों का इतिहास लिख रहा हूँ।'

'इतिहास?' उन्होंने पूछा।

मैंने कहा- 'हाँ। जैसे रामचरित मानस भगवान राम और उनके परिवार का इतिहास है, वैसा ही।'

'अच्छा । तो?'

'तो आप बताओ न परिवार के बारे में।'

'छोटे ने नहीं बताया?'

'नहीं, उन्होंने कहा कि अभी पूरा नहीं लिखा है। आप बताओ न कुछ। कौन थे पुरखे। कहाँ रहते थे?'

'अच्छा सुनो। हमारा परिवार बुन्देलखंड में रहता था। दादा साहब के पिताजी भी। हमारे पिताजी और उनके पुरखे भी वहीं रहते थे। पंडित मर्यादा महाराज मौजा रोरा में रहते थे। हमारे पिताजी के पुरखे गाँव राजा की सीकरी में रहते थे। दादा साहब के पिताजी के साथ ही हमारे बब्बा भी यहाँ आ गये थे। हमारे छुटकन भैया आते थे। उन्हें तुमने देखा है न।'

'हाँ। वे जिन्हें हम सब मामाजी कहते थे। चौक वाले मन्दिर से आते थे वही?'

'हाँ। दादा साहब के बब्बा के पिताजी थे मर्यादा महाराज। वे तुनसाई आ गये थे। राजा साहब के यहाँ पूजा, अभिषेक और हवन किया करते थे।'

'तो यहाँ क्यों आ गये थे सब अम्मा?'

'अरे बेटा बड़ी लम्बी कहानी है। भानु भी जानते हैं सब। दादा साहब सुनाते थे उन्हें।'

'फिर भी बताओ न।' मैंने जिद की।

अम्मा ने बताया 'बब्बा की राजा साहब से तो मेल मुलाकात थी ही। अंग्रेज सरकार से भी उनकी अच्छी मेल-मुलाकात थी। अंग्रेज सरकार से लड़ाई करने वाले बागी लोगों को उनकी यह मेल-मुलाकात अच्छी नहीं लगती थी। इसीलिए दादा साहब जब पैदा हुए तो उनके मामा उन्हें अपने साथ ले गये थे। बब्बा जब इन्दौर में रहते थे तब उन्होंने उन्हें भी वहाँ बुला लिया था।'

'तब आप कहाँ रहती थीं।'

'अरे हम तो, तब पैदा ही नहीं हुए थे। हमारा जनम तो उसी घर में हुआ था जहाँ तुम सब राखी पर जाते हो। नदी के पहले, घाटी वाले मकान में।'

'अच्छा! वह घर तो अच्छी तरह याद है।'

'हाँ, तो बागी लोग हमेशा ताक में रहते थे हमला करने की। इसीलिए बब्बा यहाँ आ गये थे। नौकरी से फारिग होने के बाद अनन्तनारायण के मन्दिर के पास कुटिया बनाकर रहते थे। वहीं देह त्यागी। दादा साहब बताते थे।'

'ये फारिग होना क्या होता है अम्मा?'

'अरे वो, क्या कहते हैं उसे। नौकरी पूरी करने के बाद जब घर बैठ जाते हैं।'

'रिटायर।'

'हां वही।'

बूढ़ी अम्मा बता रहीं थीं, अपने ढंग से कि कैसे दादा साहब के पिताजी बुन्देलखंड के छोटे-बड़े राजाओं, जमीदारों, जागीरदारों, मालगुजारों और रईसों के साथ ही अंग्रेजों के भी प्रिय थे। इसीलिए आज़ादी की लड़ाई लड़ने वाले क्रान्तिकारियों को वे नापसन्द थे। वह स्वयं बड़े सम्पन्न ठिकानेदार का रुतबा रखते थे। इसीलिए उन्हें मुखिया कहा जाता था। वही मुखिया शब्द परिवार की पहचान बन गया। यानी सरनेम भी। बूढ़ी अम्मा बोलती जा रही थीं। मैं एकटक उन्हें देखता हुआ सुनता रहा।

परिवार की कहानी, कहानी से उजागर होते हुए नये-नये सत्य।

मुझे लग रहा था कि जो खुद स्वतंत्रता की लड़ाई को धोखा देते रहे और इसी कारण अपने मूल स्थान से पलायन कर यहाँ आकर बस गये, उन्हीं की सन्तानों की वर्तमान पीढ़ी हमें कोसती है। और छोटे बाबा साहब। पहले वह जितने सहज और सरल लगते थे, अब उतने ही रहस्यमय प्रतीत होते हैं मुझे। बड़े बाबा साहब के प्रति एक खिंचाव मैं शुरू से अनुभव करता था। समझ नहीं पाता था कि इतनी अकड़ उनमें कहाँ से आई। बाबूजी बताते हैं कि पढ़ने-लिखने में विशेष दिलचस्पी उनमें कभी नहीं रही। शायद उन्हें दादा साहब और बूढ़ी अम्मा ने ही बताया हो। एक बार बाबूजी बता रहे थे कि दादा साहब चाहते थे कि उनके बेटे उनके ही समान डॉक्टर बने। इसीलिए उन्हें पढ़ने लाहौर भेजा था। उन्होंने पता नहीं क्या किया वहाँ, दो-तीन साल में ही भाग आये। कोई डिग्री नहीं है उनके पास। बूढ़ी अम्मा भी कहती हैं कि बड़े का मन हिसाब-किताब और पूजा पाठ में ज्यादा लगता है। बहुत जल्दी सम्पत्ति के सब कागज़-पत्रों पर कब्जा कर लिया उन्होंने। दादा साहब के जीते जी ही। वे सबको ऐसा जतलाते कि वही मालिक हैं। वही मालकिन वाला स्वभाव और अक्खड़पन बड़ी दादी का है। पूजा-पाठ, नियम-कायदे, धर्म और रुढ़ियों के पाबन्द हैं दोनों। कट्टरपंथी।

पुरानी यादों में खोयी हुई बूढ़ी अम्मा जब भी कोई नई बात बताती उनकी आँखों में एक अजब सी चमक आ जाती थी। मैं, जब भी उन बातों की याद करता हूँ मन बेचैन हो जाता है। तब भी सोचता था कि इस परिवार के हर सदस्य का स्वभाव और व्यवहार कुछ विचित्र है। शायद उन्हीं दिनों की देन है जिन दिनों की बातें बूढ़ी अम्मा सुना रही

हैं। जब मैंने उन्हें टोंककर पूछा-'अम्मा, बब्बा बुंदेलखंड में थे, फिर यहां आ गये। पर रुतबा तो उनका यहाँ भी वही रहा जो वहाँ था। जमीन, जायदाद, मकान, हवेली, सब कुछ यहाँ भी रहा। अंग्रेज वहाँ भी थे और यहाँ भी।'

'मोड़ा, बिल्कुल सही बोले हे रे तू तो।' बूढ़ी अम्मा हँसकर कहतीं तो मन में नया सवाल पूछने का उत्साह भर जाता।

बूढ़ी अम्मा कहतीं - 'हाँ बेटा बड़ी कृपा रही है फिरंगियों की। इतनी कि अपना गाँव घर छोड़ दिया। नाते-रिश्तेदार छोड़ दिये। खेती-बाड़ी छोड़ दी। जाते रहे चापलूस बने फिरंगियों के दरवाज़े। अपने पराये हुए। दूसरे घर बसा लिये। भगवान का ही आसरा है अब तो बस।'

'एक बात बताओ अम्मा, दादा साहब ने बड़े बाबा को लाहौर भेजा। छोटे बाबा इन्दौर गये। बाबूजी कह रहे थे कि दादा साहब दोनों को डॉक्टर बनाना चाहते थे। दोनों में से एक तो बन गये, पर हमारे दादाजी को डॉक्टरी क्यों नहीं पढ़ने दी? वे तो सबसे बड़े थे।'

'तुम कहाँ की बात कहाँ ले जाते हो।' अम्मा चिढ़ जाती।

'जाओ अब। आराम करने दो।'

मैं सोचता रहता, अम्मा क्यों चिढ़ती हैं दादाजी के विषय में पूछने पर? लेकिन कहीं से कोई जवाब नहीं मिला।

मैं अक्सर सोचता रहता था कि किसी वन-प्रान्तर में अकेला भटक रहा हूँ। हर समय विचित्र डरावनी आवाजें सुनाई दे रही हैं। घुप्प अंधेरा है, कुछ दिखाई नहीं दे रहा है।

माँ से पूछा था एक बार। बूढ़ी अम्मा दादाजी के विषय में कुछ क्यों नहीं बोलती। बाबूजी से भी पूछा कि दादा साहब ने हमारे दादाजी को डॉक्टरी पढ़ने क्यों नहीं भेजा ?

'उन्होंने होम्योपैथी में डॉक्टरी की परीक्षा पास की थी। वे तो दोहरी परीक्षाएँ पास थे।' बाबूजी ने बताया था एक दिन और यह भी बताया कि दादा साहब ने उन्हें पढ़ने के लिए लाहौर भेजा था।'

'दोहरी परीक्षाएँ मतलब ?'

'मतलब यह कि उन्होंने इंजीनियरिंग और डाक्टरी, दोनों की परीक्षाएँ पास की थीं। होम्योपैथी के डॉक्टर थे वह। पर इलाज धर्मार्थ ही करते रहे जीवन भर। कभी फीस नहीं ली।'

'फिर बूढ़ी अम्मा कुछ क्यों नहीं बताती?'

'अरे भाई हमारे पिता से तीन-चार बरस ही बड़ी थीं वो। उनके ब्याह के तुरंत बाद ही हमारे पिताजी का भी ब्याह हो गया था।'

कुछ और पूछने पर बाबूजी कहते - 'फिर कभी सुनाएँगे और बातें। अभी काम बहुत है।' पता नहीं, कब आएगा वह दिन। मैं सोचता था।

एक दिन, ऐसे ही बातों में उलझाकर मैंने बूढ़ी अम्मा को रोक लिया था।

'अम्मा यह बताओ कि बड़े बाबा यहाँ क्यों नहीं आते आपके पास। आपको भी हवेली जाते हुए नहीं देखा कभी।'

'पिरभू बेटा, सब मोह-माया से दूर हैं अब हम। हमें कभी मंदिर के अलावा कहीं ओर जाते देखा है। बस अब हमें ऊपर वाले बड़े घर ही जाना है। बड़े का मन भी पूजा-पाठ में लगता है। या फिर हिसाब-किताब के पोथी-पतरों में घुसे रहते हैं दिन-रात। दादा साहब के गुजरने से पहले ही उन्होंने सब काम संभाल लिया था। नुनसाई की खेती बाड़ी का हिसाब भी रखते हैं। हुंडी पर कहाँ कितना पैसा दिया है, यह सब जानकारी है उन्हें। छोटे का मन कहाँ लगता है ऐसे कामों में। उनका काम तो भानु देखते हैं न।'

'अम्मा, कभी तो मन होता होगा कहीं आने-जाने के लिए?'

'मोड़ा, अब हमसे भी चुहल। हम गाँव से आए और नदी-घाटी पर बस गए। वहाँ से चले और यहाँ आ गए। यहाँ से ओखलेश्वर मसान घाट ही जाना है अब।'

'और बड़े बाबा का भी मन नहीं होता?'

'जाते हैं न वह भी मंदिर। सब्जी-भाजी वही लाते हैं। एक बार सुंदर की बारात में गए थे। किसी टेसन पर उतर गए थे और रेल चल पड़ी थी।' मुझे हँसी आ जाती है।

सोचता हूँ कि बूढ़ी अम्मा भी गजब हैं। पढ़ी-लिखी नहीं हैं, लेकिन अनुभव के मामले में धनी हैं। ज्ञानी हैं, धार्मिक हैं और खुराफाती भी कमाल की हैं। बिना नमक की भाजी

और राजगिरा के पराँठों का आहार। अच्छी और बुरी, दोनों तरह की बातों में एक जैसी मिठास। और एक वे हैं, हवेली वाले बड़े बाबा और बड़ी दादी। सारी ऊर्जा, हमेशा दूसरों का बुरा करने में खपाते हैं। पता नहीं, कितनों का माल इधर से उधर किया होगा अब तक। पक्के सूदखोर महाजन हैं। ईमानदारी से बेईमानी निभाते हैं। यह पूजा-पाठ, सब दिखावा है, ठकोसला है, पाखंड है। सिर से पाँव तक दोनों में एक समान खोट है। ऐसी ही संतानें हैं। छोटा सबसे खोटा है। करेला और नीम चढ़ा। पता नहीं कैसे रहते होंगे आपस में। जात-पात, ऊँच-नीच और छोटा-बड़ा, इससे आगे तीनों को कुछ नहीं सूझता है। मुसलमान फूटी आँख नहीं सुहाते उन्हें। माँ अक्सर यह कहती थीं। पर मैं सोचता था कि जात-पात की संकीर्णता और धर्म-नियम की कट्टरता सब में ही थी। राजसी ठाठ, सामंती सोच और अंधविश्वास में सब एक-दूसरे से बढ़कर थे। कम या ज़्यादा से क्या फर्क पड़ता है। छोटे बाबा अक्सर डींग हाँकते कि उनकी ग्वाड़ी में सब छोटी जाति के हैं और बड़े भाई की ग्वाड़ी में सब बामन-ठाकुर-बनिया। मुझे ग्लानि होती थी और कुछ अलग हटकर करने पर सज़ा भी मिलती।

होली पास आ रही थी। बड़े काले दरवाज़े के मोड़ पर होली का डाँडा गाड़ना तय हुआ था। ग्वाड़ी के लड़कों के इस निर्णय में मैं भी शामिल था। उसी समय बड़े बाबा साहब वहाँ से निकले। उन्होंने मुझे देख लिया था वहाँ। श्याम, विजय, माधव, कमल और गोपू दूर खड़े थे। सबको बुलाया उन्होंने और नीम के पास खड़ा कर दिया।

'क्या कर रहे थे तुम सब, उन छोटी जाति वालों के साथ।'

'हम तो दूर खड़े थे। साथ नहीं थे। क्यों श्याम?' गोपू ने कहा।

'हाँ दादाजी। हम नहीं थे वहाँ।'

'हाँ, मैं था वहाँ। होली का डांडा गाड़ेंगे वहाँ हम सब। वे सब मेरे दोस्त हैं बाबा साहब।' मैं तमक कर बोला।

'वे लफंगे तुम्हारे दोस्त हैं। अब उनके साथ रंग भी खेलोगे तुम। होली की मिठाई भी खाओगे? क्यों?' बाबा साहब गरजे।

'हाँ। उसमें गलत क्या है?'

'इसके दोस्तों में मुसलमान भी हैं। उनके घर भी जाता है तो खाता-पीता भी होगा।' गोपू ने शिकायती स्वर में कहा।

'हाँ, जाता हूँ। तुझसे मतलब। और महमूद मास्टर साहब भी तो आते हैं छोटे बाबा के पास।'

'चुप करो।' बाबा साहब चिल्लाए।

'अब तुम सबकी सज़ा यह है कि दस दिन तक प्रभास के साथ कोई नहीं खेलेगा। और प्रभास तुम, दस दिन घर से बाहर नहीं आओगे। मंदिर, चौगान और कुआँ कहीं नहीं दिखोगे।' यह आदेश देकर उन्होंने एक खोली के दरवाज़े पर खड़े भग्गू को बुलाया।

'भग्गू, तुम्हारी ड्यूटी यह है कि तुम इन सब पर नज़र रखोगे। गड़बड़ हो तो मुझे बताना वरना तुम्हारी भी खैर नहीं।'

'मुसलमान से दोस्ती करेंगे। नीची जात वालों के साथ होली खेलेंगे नवाबजादे।' बड़बड़ाते हुए वह सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे।

मैंने एक पत्थर उठाया। गोपू डरकर भीतर भाग गया। पीछे मुड़ा तो भग्गू भी भीतर चला गया। मैं कुछ देर वहीं खड़ा रहा। देख रहा था कि गोपू बाहर निकलता है कि नहीं। बाहर नहीं आया वह। तो मैं भी घर आ गया।

माँ रसोई में बैठी हुई भाजी काट रही थीं। बूढ़ी अम्मा अपनी नियत जगह पर। रसोई के बाहर वाली खिड़की पर। दरवाज़ा उड़का हुआ था। खोलकर सीढ़ियाँ चढ़ते हुए ठिठका। बूढ़ी अम्मा माँ से कह रही थीं कि 'पिरभू आ रहा है, बड़ी दुल्हन।' मुझे मालूम है कि जब बूढ़ी अम्मा का लाड़ उमड़ता है, वह माँ को बड़ी दुल्हन कहती हैं। माँ खड़ी हो गई। मैं भी ऊपर आकर ठिठक गया। कुछ देर शांति रही। लगा वहाँ की खबर यहाँ तक पहुँच गई है। चुगलखोर श्याम ने ही बताया होगा। बूढ़ी अम्मा ने ही चुप्पी तोड़ी।

'वहाँ पर ही खड़ा रहेगा अब? जा हाथ-मुँह धोकर आ जा। आज सुन्दरकांड नहीं सुनाया तूने।'

'अम्मा, मुझसे कहा होता। मैं सुना देती। प्रभास अकेला ही पढ़ा-लिखा है क्या?'

'अरी दुल्हन, तेरे पास कोई कम काम है जो तुझे कहती। और हाँ बाकी सब निठल्ले-कामचोर हैं। बहाना करके भाग जाते हैं। जा पिरभू, जा हाथ-मुँह धोले। शाम को सुना देना।'

मैं चुपचाप गुसलखाने में घुस गया। बाहर आया तब तक माँ जा चुकी थीं। बूढ़ी अम्मा बड़बड़ा रही थीं - 'छोटे को दवाखाने से फुरसत नहीं। पूनम (पूर्णिमा) को ही पूजा-कथा के बहाने कुछ सुना देते हैं। एक वे थे, बाप इनके। ब्याह के ले आए बस। मोड़ा-मोड़ी पैदा करते रहे हम। कुटुंब चलाना था उन्हें। उन्हीं की लीक पर बड़े चल रहे हैं। वे थे तो दवाखाने के काम के नाम पर पता नहीं कहाँ-कहाँ डोलते रहे। बड़े हैं तो अपनी चौखट से बाहर नहीं झाँकते। न उन्होंने ही कुछ बताया हमें। कौन ज़मीन, कौन मकान, कहाँ-कहाँ है। किस-किस को बाँटते रहे। कुछ नहीं बताया कभी।'

बड़बड़ाते हुए ही कब अम्मा की नींद लग गई, पता ही नहीं चला। पर उनका यह सब बोलना भी कई सवाल पैदा कर गया। कहाँ है जवाब?

किसी बात का कोई जवाब नहीं मिला। बचपन से जवानी तक कुटुंब, वारिस और विरासत के अनेक सन्दर्भ बिखरे हुए हैं मन के बवंडर में। दादी-नानी की कितनी ही कहानियाँ बच्चों के चिन्दा-चिन्दा होते सपनों में खो जाती थीं। काले चाबुक की फटकार से कितनी ही पीठों के घाव हमेशा हरे बने रहे। स्त्रियों-बच्चों के कदम को बाहर निकलने से रोकती-घूरती आँखें और सहमती आवाज़ों को किसी ने नहीं समझा कभी। जीने और करने के फासले के बीच कितना कुछ है जो समझ से परे है कुछ लोगों के लिए।

तब भी सोचता था, अब ऐसे में बूढ़ी अम्मा का क्या दोष। उनके और दादा साहब के बीच उम्र का इतना फासला था कि सोचकर भी दहशत होती है। तीसरी पत्नी और छोटी सी उम्र में सात बच्चों को जन्म देना। फिर उनकी परवरिश। फिर लगता एक अंदेशा निरन्तर। बार-बार क्यों जाते रहते हैं दूर उनसे दूसरे शहर। कभी कुछ जान नहीं पायीं कि कोई और भी गृहस्थी चल रही है दूर कहीं। किससे कहतीं। यह भी तो सच है। पर मैं क्या करूँ। अगर यही सब सच है तो पता नहीं इस कुटुंब के और इतने रहस्य होंगे। कोई तो जानता होगा। छोटे बाबा, उनका वंश-ग्रंथ या बाबूजी।

***

भाग-4

तीज-त्यौहार, पर्व-उत्सव और दशहरा-दीपावली या शादी-ब्याह जैसे अवसरों पर मधुवन और बंगलानुमा हवेली पर पूरा कुनबा इकट्ठा होता है। कभी-कभी पिता-निवास पर भी पारिवारिक हलचल होती, तब भी यही क्रम चलता था। लेकिन तब शादी-ब्याह के अवसरों के अलावा खास दिनों में मधुवन पर ही सब मिलते थे। कुछ चेहरों पर रजवाड़ों की ठसक और कुछ पर दौलत की अय्याशी के तेवर मुझे विचलित करते थे। अपने ननिहाल के लोगों की सादगी और माँ की निश्छलता मोहित करती तो पिता का गर्वीला, रौबीला किन्तु प्यार भरा व्यवहार भी आदर के भाव जगाता। मधुवन में खेलकूद होते लेकिन कटुता, बैर और घृणा फिर भी बनी हुई थी। जबकि श्याम और उसके अन्य भाई बहिनों के साथ भी अपनत्व और स्वार्थ की मिलीजुली रहनुमाई थी। मैं अक्सर कहता - 'काइयाँ हैं सब।'

माँ कान पकड़कर कहतीं - 'चुप करो बस।'

पिता को पता चलता तो गुस्सा होते थे। भाई की यारी दोस्ती दोनों 'घरों' में चलती रही। मैं सोचता था, पिता सब कुछ जानते हुए भी छोटे बाबा से अपनापन और बड़े बाबा के प्रति आदर-भाव क्यों पाल रहे हैं। जबकि माँ चुप रहतीं। तब नहीं जान पाता था। आज, जब पिता नहीं हैं, माँ भी नहीं हैं और मैं भी अपने छोटे बेटे को अनन्त यात्रा पर जाता हुआ देखकर, बेमन से अपने शहर लौट आया हूँ। तब जो नहीं जान पाया था अब वही बड़ी तीव्रता से अनुभव कर रहा हूँ। क्या था तब, क्या है अब और क्यों है, ये सारे सवाल सुलगते से, जवाब में जलती आग की तरह फैल जाते हैं। मैं काम के बोझ से परे एक खालीपन में अक्सर सोचता हूँ।

बचपन, कल और आज, घर-संसार, जीवन और सिलसिलेवार मौत। दीवार पर बढ़ती तस्वीरों के बीच काले आसमान और बन्द हवा की घुटन भरी उदासी के अहसास में एक सोच उभरता है। कभी हवा का रुख बदलता है। बादलों की लुकाछुपी में बारिश भी भटक जाती है। धरती पर फिसलन बढ़ती है कभी तो कभी तेज धूप चैन नहीं लेने देती। कुछ न कुछ चलता रहता है। धरती और आकाश पर। घर में, पड़ोस में। यंत्रों में, सोच

में। मन में, शरीर में। कुछ न कुछ घटता ही रहता है। अच्छा है या बुरा। जानने और समझने का अवकाश नहीं मिलता। कभी कभी। कुछ दिन पहले, ऐसे ही एक दिन। दस्तक हुई थी जब, बाहर कोई नहीं था। लेकिन दस्तक लगातार सुनाई दे रही थी। तब मैंने अभिन्न और विनय से बहुत सी बातें की थीं और अभिन्न ने कहा था - 'धरती, आकाश, हवा, पानी और आग, दिन-रात और मन-मस्तिष्क सब परिभाषा से परे हैं। समय भी अपरिभाषित है।'

विनय हँस दिया था। मैं चुप रहा।

'हँसो मत विनय। बाहर देखो।' अभिन्न ने कहा।

'तेज हवा चल रही है।'

'दिखती है?'

'नहीं, हवा दिखती है कभी ?'

'ठीक कहा। हवा दिखती नहीं। दिखता है आकाश। पर ये हवाएँ ही आकाश से तेज धड़कनों का संदेश लाती हैं। नदी का यौवन, हृदय के ज्वार को धरती के उपजाऊ होने के अनुभवों में पसार देता है। प्यास और प्यार का मनभावन उल्लास है वहाँ।' अभिन्न ने कहा।

'अच्छी कविता है।' निर्मला ने कहा।

'कविता ही सही, पर बात सोलह आने सच है।' अभिन्न ने कहा।

चर्चा में विराम आ गया। बाहर कोई दरवाज़ा बजा रहा था। देखा, एक अजनबी खड़ा था।

कितने ही अजनबी आगंतुकों और हैसियतदारों से रिश्तों की कहानियाँ बचपन से सुनता आया हूँ। बड़े बाबा का काला दरवाज़ा बंद करना, फिर दादा साहब के श्राद्ध के बाद खुलवा देना, अचानक समझ नहीं आया था। माधव भाई और श्याम इस विषय में अक्सर बात करते थे। मैं पहुँचता तो दोनों चुप हो जाते। एक दिन मैंने माँ से पूछा इस बारे में। 'तुम्हारी छोटी दादी और हमारा परिवार एक ही शहर में था। परस्पर नज़दीकी संबंध थे। हमारा और उनका बचपन गोंडवाना और आदिवासी रियासतों में बीता।

रजवाड़ों, महलों और हवेलियों में रहकर भी आज़ादी की लड़ाई से घर परिवार जुड़े थे। तुम्हारे नानाजी फौज में थे।' माँ ने बताया।

'पर इसमें बड़े बाबा का गुस्सा कहाँ से आ गया।' मैं चिढ़ गया था।

'पूरी बात तो सुनते नहीं हो।'

'कहो।'

'तुम्हारे छोटे बाबा की शादी में दादा साहब किसी बात पर नाराज़ हो गए थे। पर, शादी हो गई। तबसे बड़े बाबा नाराज़ हैं सबसे। श्राद्ध वाले दिन से पहले उन्होंने तुम्हारी छोटी दादी के पिता को 'काले राजा का गुलाम' कहा था। वह भी नाराज़ हो गई। छोटे बाबा की भी कहासुनी हुई। उसके बाद काला दरवाज़ा बंद करवाया था उन्होंने।'

'क्या बात है। एक काले राजा के गुलाम। दूसरे गोरे राजा के गुलाम।'

'प्रभास, फालतू बात नहीं। चलो जाओ अब।'

'पर माँ, बड़े बाबा यहाँ भी नहीं आते। बूढ़ी अम्मा से मिलने भी नहीं। बाबूजी से तो कोई झगड़ा नहीं है, फिर यहाँ क्यों नहीं आते।'

'कहा न, जाओ अब।'

माँ कुछ बताती थीं, कुछ नहीं। पिता कुछ नहीं कहते।

आप कुछ जानना चाहते हैं और वह जानकारी आपको कहीं से नहीं मिलती है। इतना ही नहीं, जिससे पूछ रहे हैं उसे सब मालूम है। लेकिन वह बताता नहीं है। तब चिढ़ होती है। खीज आती है। यही हो रहा था मेरे साथ। फिर भी, मैंने हार नहीं मानी थी। माधव भाई और श्याम को कोई मतलब नहीं था। वह जतलाते तो ऐसा ही थे। गोपू शातिर था। विजय और कमल को शायद कुछ समझ नहीं आता था। विजय तो छोटा था, पर कमल, वह तो मेरी उम्र का था। मेरा चचेरा भाई। बाकी जो थे हमसे बड़े थे। अब जब घर में कोई साथी नहीं, जोड़ीदार नहीं हो, तब बाहर तो जाना ही होगा। वही होता था। ग्वाड़ियों के लड़कों के साथ समय बीत रहा था। कबड्डी, खो-खो, गुल्ली-डंडा और अष्ट-चंग। स्कूल में, लाइब्रेरी चला जाता। घर में भी किताबें टटोलता रहता था। बूढ़ी अम्मा सुनती थीं, रामायण और महाभारत के प्रसंग।

फिर वह एक दिन। माँ और दादी चक्की पीस रही थी। श्याम और माधव, विजय और कमल हवेली गए थे। छुट्टी का दिन था। मैं चुपचाप तिमंजिले पर चला गया। वहाँ जाकर चौंका। हथियार पड़े थे वहाँ। तलवार, कटारें, फरसे और बंदूकें। एक बक्सा था, जिसमें कुछ पुरानी चिट्ठियाँ रखी थीं। वहाँ इतनी रोशनी नहीं थी कि पढ़ पाता। उठाकर ले आया। नीचे वाले हॉल से लगे छोटे कमरे की बड़ी आलमारी में रख दीं। इस आलमारी में मेरे दादाजी की किताबें थीं। देखा, हॉल में कोई नहीं है। छोटे बाबा की आलमारी का ताला खुला था। मैं वह लाल किताब ढूंढने लगा जिसमें वह लिखते रहते थे। मिल गई वह किताब। जिसे बाबा वंश-ग्रंथ कह रहे थे। मैं वहीं बैठकर पढ़ने लगा। दो-चार पन्ने पढ़कर ही ऊब होने लगी थी। ऐसा अनुभव हुआ, जैसे इतिहास या सामाजिक अध्ययन की किताब पढ़ रहा हूँ। हिरण्यकश्यप की कहानी, बुंदेलखंड के गाँव, शक्ति-पीठ और सिद्ध-पीठ की बातें पढ़कर आगे पढ़ने की इच्छा ही नहीं हुई। तब ही एक पृष्ठ पर लिखा था कि वंश-वृक्ष की जानकारी अंत में दी गई है। उत्सुकतावश, मैंने आखिर से पढ़ना शुरू किया। पर उसमें भी ऐसा कुछ प्राप्त नहीं हुआ जो मुझे तसल्ली देता। बस इतनी ही जानकारी मिली कि छोटे बाबा के पिता, उनके पिता और उनके भी पिता कभी बुंदेलखंड में रहते थे। छोटे बाबा के दादाजी वहाँ से यहाँ मालवा में आकर बस गए थे। पर कहीं यह नहीं लिखा था कि वह मालवा क्यों आए। अंग्रेजों के वफादार क्यों और कैसे हो गए। मैं पढ़ रहा था और खीज रहा था।

मुझे जानना था कि मेरे दादाजी के विषय में क्या लिखा है। लेकिन लिखा था कि दादा साहब की उज्जैन, इन्दौर और महिदपुर में ज़मीन-जायदाद थी। अंग्रेजों और राजघरानों की कृपा के विवरण थे। 1857 के गदर की बात थी, लेकिन उनकी अपनी भूमिका का कोई संकेत नहीं था। दादा साहब की पूर्व पत्नियों के उल्लेख थे, पर दादाजी का नहीं। दादा साहब की पढ़ाई-लिखाई अंग्रेजों की कृपा से ही हुई थी और बदले में उनके पिता ने पेंशन नहीं ली थी। यह अब पढ़कर मैं किताब को रखने ही जा रहा था कि बाबा साहब आ गए। में डर गया था। किताब उनकी गोलमेज़ पर रखकर जाने लगा। उन्होंने हाथ पकड़कर रोक लिया।

'क्या कर रहे थे।' उन्होंने पूछा।

'कुछ नहीं। आप क्या लिखते रहते हैं, वही देख रहा था।' मैंने कहा।

'कहा था न तुमसे कि वंश-ग्रंश लिख रहा हूँ। फिर भी तुम्हें पढ़ना था अभी ही।'

मैं चुप रहा।

'पढ़ लिया। हो गई तसल्ली।'

'नहीं, कुछ पन्ने ही पढ़े, बस। बुंदेलखंड, मंदिर और राजा की बातें।'

बाबा साहब ने गहरी साँस छोड़ी। मानों तसल्ली कर रहे हों कि मैंने ज्यादा नहीं पढ़ा। शायद यही सोचकर, उन्होंने किताब उठाई और उसे लेकर ऊपर चले गए। मैं भी उनके पीछे-पीछे ही ऊपर गया। मैंने देखा कि तीन खिड़कियों वाले कमरे के बाएँ ओर वाले छोटे कमरे में गए हैं वह। दरवाज़ा भीतर से बंद कर लिया। इसी कमरे में वह दीवाली की पूजा करते हैं। फिर वह कमरा कभी-कभी ही खुलता है। सिर्फ बाबा साहब और छोटी दादी ही खोलते हैं वह कमरा। वह सोच रहे थे कि अब उस किताब को कोई ढूंढ नहीं पाएगा। मैं चुपचाप रसोईघर की खिड़की में बैठ गया। माँ खाना बना रही थीं।

आज भी सोचता रहा हूँ कि कल से चलकर आज तक के सफर में परिभाषाएँ कैसे बदलती रही हैं। जीने के रंग-ढंग बदल गए हैं। फिर भी दुनियादारी के तौर-तरीके और भी सलीकेदार हो गए हैं। खासकर इस परिवार में। गाँठे मजबूत होती जा रही हैं। छोटे बाबा बूढ़े और रिटायर हो गए और आज जब वह नहीं हैं तब उनकी स्मृतियाँ, सब कुछ एक सरल रेखा में नहीं हैं। काले आसमान पर बादलों का आवागमन थमते ही घुटन भरी उदासी तैरने लगती है। उसी तरह उन्माद का उत्पात अब भी बाँझ यथार्थ को अपरिभाषित ही रखने की हद तक पहुँचकर रिश्तों को पिघला रहा है। एक घर और एक परिवार का रिश्ता जो कभी बना ही नहीं, लेकिन उसे निभाने की ज़िद है। पैबन्दों को कैसे ओढ़ा जा सकता है। टूटते हुए तटबन्ध हैं, जर्जर मकान और मचान हैं। वहाँ भी किसी पुल की आशा में बैठा है कोई। लेकिन ध्वस्त रिश्तों की विनाशलीला नहीं रुकती।

बाबा साहब ने वंश-ग्रंथ पढ़ने नहीं दिया। काला दरवाज़ा बंद होता और खुलता रहा। गैरेज में ताँगे के अवशेष हैं। इतिहास के पन्ने तलघर और तिमंजिले के बक्सों में पड़े छटपटाते रहे। बाबा साहब अपने पिता और पितामह की शान में कसीदे पढ़ते रहते रहे। दादाजी के बारे में सब मौन हैं। नीचे हॉल में टँगी तस्वीर मुझे चिढ़ाती है। जबकि वह मकान अब ध्वस्त हो चुका है, तब भी।

पौराणिक किस्से कहानियों में पढ़ता था कि गणेश, गणों के नायक थे। गणपति। कुबेर एक गण। लेकिन धनपति। कुबेर, गणेश से पराजित होते रहे। कुबेर दंभी और लालची थे। गणेश संतोषी। एक संग्रह पर एकाधिकार का समर्थक और दूसरा 'सबै भूमि गोपाल की' का हिमायती। अधिकार और खुशी का द्वंद था वहाँ। कमरे में टँगी वह तस्वीर मुझे कुबेर की याद दिलाती थी। अब भी वह तस्वीर कहीं देखता हूँ तो कुबेर-कथा और चरित्र याद आता है। कहानियों में पढ़ा हुआ। अब भी वह हवेली-बँगला और ग्वाड़ी, माँ और बाबूजी के चेहरे और बदलती हुई भंगिमाएँ, आँखों के सामने ठहर जाती हैं। तब से आज तक यह समझ नहीं पाया कि माँ और बाबूजी जीवन पर्यन्त इस संतुष्टि भाव पर कैसे टिके रहे। वे लोग जो कभी विश्वसनीय नहीं रहे, उनके प्रति समर्पण भावना से रिश्ते निभाते रहे। इकतरफा ईमानदारी से जुड़े रहने का औचित्य समझ से परे है।

बड़े बाबा, बड़ी दादी और बूढ़ी अम्मा को समझना मुश्किल नहीं था। बहुत जल्दी ही उनकी असलियत उजागर हो गई थी। उनका दंभ, दुर्भावना के पीछे छुपी हुई उनकी कुंठाएँ, वर्चस्व वाला सामन्ती स्वभाव और उससे बना, रचा-बसा उनका अमानुषिक व्यवहार। सबके प्रति दिखाई देता था। घर-परिवार, ग्वाड़ी के लोग और सभी रिश्तेदार उनके शिकार थे। एक अज्ञात भय से सहमते से रहते थे सब। यातनाओं से प्राप्त जख्म पाये थे उन्होंने। मैं सोचता कि ये डराने वाले जो कर रहे हैं, उसकी शिक्षा उन्हें दादा साहब ने ही दी होगी। दादा साहब को उनके पिता ने। वही संस्कार उन्हें और उनकी संतानों को गढ़ रहे हैं।

मैं विद्रोही होता जा रहा था। गोपू और भग्गू को देखकर, बड़े बाबा और बड़ी दादी को देखकर आँखें जलती थीं। माधव भाई और कमल की उदासीनता दुखी करती थी। लेकिन मुझसे सारी बातें सुनने-समझने के लिए तब मेरा कोई साथी भी नहीं था। यह बात मुझे कुछ ज्यादा ही विचलित करती थी। एक माँ थीं जिनसे कभी अपनी बात कहने का साहस कर सकता था। लेकिन माँ कभी-कभी सुनकर भी अनसुना कर देती थीं या बहला-फुसलाकर किसी और काम में लगा देती। छोटे बाबा से बातें करता था पहले, पर उनकी किताब पढ़ने की मेरी कोशिश शायद एक अपराध थी। उनकी दृष्टि में। वे मुझे देखकर भी अनदेखा करते। बूढ़ी-बड़ी अम्मा सिर्फ रामायण सुनने तक सहज रहती। फिर, सारा दिन रसोई की बाहरी खिड़की पर बैठी रहतीं। माँ के लिए भी वह मुश्किल घड़ियाँ होती थीं। मैं हर पल वह किताब और उससे उठते सवालों में खोया

रहता था। तब ही एक दिन, मैं अपने ही सवालों में खोया हुआ मधुवन तक पहुँच गया। नीचे कोई नहीं था। ऊपर शायद बाबा साहब भी नहीं थे। आज विजय मेरे साथ था। हम दोनों चुपचाप तलघर के दरवाज़े तक पहुँचे ही थे कि पड़ोस में रसोई से बड़ी दादी की आवाज़ सुनाई दी 'गोपू'। गोपू शायद मंदिर की ओर था, वहीं से चिल्लाया - 'आया माँ।' हम दोनों भागकर नीम के पास पहुँच गये। उस दिन तलघर में उतरने का इरादा छोड़ दिया। वैसे तलघर में कई बार श्याम, माधव और गोपू के साथ उतरा हूँ। लेकिन विजय पहले कभी नहीं गया था इसलिए उसे उत्सुकता थी। उसने मुझसे पूछा कि तलघर में क्या है।

मैंने कहा - ‘ऊपर बड़े बाबा का कमरा है न और उसके पास का बरामदा, उसके ठीक नीचे और रसोई से पास वाले कमरे के भी नीचे वह तलघर है गहरा। अभी हम जिस दरवाजे से आये हैं, उसके भीतर ही सीढ़ियाँ हैं नीचे जाने के लिए।

विजय ने चौंक कर कहा – ‘सच्ची।’

'हाँ, बड़ा सा एक कमरा है और बहुत सामान भरा है वहाँ।' मैंने कहा। मेरी बात सुनकर विजय ने कहा-'इतना बड़ा' और कहने के साथ ही उसकी आँखों के साथ ही माथे पर सलवटें भी उठ गई। दोनों हाथ फैलाए वह खड़ा था भौंचक।

मैं हंस दिया और बोला – 'हां... आं...आं... आं...’

वह तुरन्त ही चुप हो गया। पर उसकी उत्सुकता बनी हुई थी जानने के लिए कि उसके पिता, ताऊ और दादाजी की अनजानी दुनिया का 'रहस्य लोक' कैसा है, कैसा रहा होगा। मैंने कहा कि - 'चल, घर चलते हैं। वहाँ चलकर बताऊँगा तुझे। क्या देखा था वहाँ श्याम और गोपू के साथ।' उसे जैसे उसके दादाजी की दुनिया सिर्फ अपनी लग रही थी, मैं भी खुश था यह बताते हुए कि मेरा भाई भी साथ था। तब यह सब उम्र के अनुसार एक स्वाभाविक सोच रही होगी।

घर पहुँचकर भी विजय बार-बार ज़िद कर रहा था और मैं एक अलग ही संसार देख रहा था उसे बताते हुए। कैसे रहे होंगे वे दिन? उन दिनों के ही प्रमाण हैं ये सारे साजो-सामान। सिंहासननुमा बहुत सारी कुर्सियाँ, तख्त और तलघर की दीवारों पर टँगे हुए हथियार, तलवारें, बन्दूकें, धनुष और भाले। कुछ बड़े-बड़े बक्से। पता नहीं क्या था उनमें। जान

नहीं पाया कभी। घोड़े की लगाम और ताँगे पर रखी जाने वाली गादियाँ। वैसी ही जैसी अपने घर के तिमंजिले पर देखी थी मैंने। विजय यह सब आँखें फाड़े सुनता रहा।

'ऐं इतना सब है वहाँ।' विजय बोला - 'पिताजी की बड़ी आलमारी में भी एक तलवार और तमंचा देखा है मैंने।'

'मैंने भी देखा है।'

'तो यह सब है वहाँ। सब कुछ मेरे दादाजी का ही होगा।'

'हाँ, हाँ, तेरे दादाजी का ही है। मेरे तिमंजिले पर भी बहुत कुछ है।' मैं अकड़कर बोला। वह सहम गया। फिर बोला - 'और भी बताओ न कुछ।'

'सुन, छोटे बाबा के पास एक मोटी-सी लाल किताब है। वे उसमें कुछ-कुछ लिखते रहते हैं। एक बार मुझसे कह रहे थे कि परिवार का इतिहास लिख रहे हैं।'

'क्या-क्या लिखा है उसमें। मेरे बारे में, तुम्हारे बारे में और...?' विजय पूछता रहा।

'नहीं। मैंने ज्यादा नहीं पढ़ा। पढ़ रहा था तब ही बाबा साहब आ गये और उन्होंने किताब छीन ली मुझसे। पर वे कह रहे थे लिखना पूरा करते ही मुझे देंगे पढ़ने के लिए।'

'पर यह तो पढ़ा होगा तुमने कि तुम्हारे दादाजी कहाँ से आये थे।'

'क्या?' मैं गुस्से से बोला।

'नहीं, वो तो माँ बता रही थीं एक दिन कि बाहर से आये थे तुम्हारे दादाजी।' वह फुसफुसाया।'

'तुम झूठ बोल रहे हो विजय।'

'नहीं। माँ बता रही थीं कि उन्होंने बूढ़ी अम्मा से सुना है और पिताजी भी बता रहे थे एक दिन श्याम को।'

'मैं भी पूछूंगा माँ से। बाबूजी से।' इतना कहकर मैं बाहर आ गया। वह भी भागकर भीतर चला गया। माँ से पूछता हूँ, आखिर वह बात क्या है जो विजय को मालूम है। वह कहता है उसे छोटी दादी ने बताया है। बूढ़ी अम्मा भी जानती हैं। दादाजी कहाँ से आये थे। दादा साहब से उनका क्या रिश्ता था। बड़े बाबा और छोटे बाबा तो उनके बेटे हैं। तो बाबूजी? माँ, हम सब? बहुत सारे सवाल हैं और जवाब कोई नहीं देता। ऊपर पहुंचा तो

माँ रसोई में व्यस्त। हमेशा की तरह। सुबह, दोपहर, शाम और देर रात तक कभी-कभी। पूछो तो एक ही जवाब-'औरत के जीवन में भगवान ने बस काम ही काम लिखे हैं। रसोई से छुटकारा नहीं किसी औरत को।' दूसरी ओर बूढ़ी अम्मा के पास कोई काम नहीं। बस हुक्म चलाती हैं।

ये उन दिनों की बाते हैं, जब नीरज और गौरव का जन्म नहीं हुआ था। शुभ्रा और तपन पढ़ने बाहर चले गये थे। बड़ी बहन नयना की शादी हो गई थी। दादी गुज़र गई थीं। बाबूजी अपनी नई नौकरी में व्यस्त। घुड़साल खाली थी। न ताँगा था, न घोड़ा। पिछवाड़े के खेत खाली थे, उजाड़ मैदान। नीम, जामुन, सहजन और पीपल के पेड़ अपनी जगह मौजूद हैं। मन्दिर के बगल की झाड़ियाँ अब भी वैसी ही। विशाल तलघर और अँधेरा तिमंजिला। अँधेरे से डरकर भागा नहीं मैं कभी। पर लगता है जैसे रोशनी कहीं दूर जा रही है। 'पकड़ो-पकड़ो' ये जुगनू कहीं भाग न जायें। मैं चिल्लाता हूँ। माँ हँसती हैं। 'बेटा, बाहर देख कितना उजाला है। कहाँ खोया है। जा बाहर खेल आ।' मैं सीढ़ियाँ उतर कर मधुवन की ओर चल पड़ता हूँ। मन में कितने ही प्रश्न कितनी ही उलझनें और जिज्ञासाएँ हैं। कहीं कोई जवाब नहीं, कहीं कोई समाधान नहीं। मैं बड़बड़ाता-बुदबुदाता हुआ हवेली की सीढ़ियों के नीचे चबूतरे पर बैठ जाता हूँ।

आज भी कुछ प्रश्न हैं जो शायद खुद से ही करता हूँ और पहले भी करता था कि कहीं कुछ गलत है या सब सही है और मैं सिर्फ हवा में तैर रहा हूँ। कई बार तब, बाद के दिनों में मेघराज जी से भी पूछा। लेकिन वे तो स्वयं अपने वजूद से नावाकिफ से रेगिस्तान की रेत उलीचते रहे हैं। अभिन्न और शिवेन्द्र की सिगरेट के धुएँ में सब कुछ उड़ाकर भूला देने की आदत थी। आखिर तक दोनों ऐसे ही लापरवाह बने रहे। माधव अपने पर आई मुसीबत पर भी हँसते और बस एक ही जवाब देते-'क्या फर्क पड़ता है। कोई कुछ भी कहे।' सच में वह हमेशा दूर भागते रहे। मुझसे यह नहीं हुआ।

सीढ़ियों पर बैठकर पैर के अंगूठे से जमीन खुरच रहा था मैं। फिर थककर चबूतरे से टिक गया। आँखें बंद कर ली। तिमंजिले का दृश्य उभर रहा था। हथियार और बक्से। ऐसा लगा, जैसे कोई घोड़ा हिनहिनाकर भागा हो। पीछे से पानी उलीचने की आवाज सुनाई दी। तभी एक धक्का लगा। आँखें खोली और उठकर देखा। गोपू था। वह चबूतरे पर चढ़कर, पीछे की सीढ़ियों से उतरा और कुएँ की ओर जाने लगा।

'गोपू, दिखता नहीं है।' मैं चिल्लाया उस पर। सामने से श्याम और माधव आ रहे थे।

'नहीं दिखता उसे। उल्लू है और उल्लू को दिन में नहीं, रात में दिखाई देता है।' श्याम ने हँसकर कहा। फिर दोनों ऊपर चले गए।

गोपू मंदिर की तरफ चला गया था मैं कुएँ की जगत पर बैठ गया। गोपू मंदिर से ऊपर की ओर देख रहा था। वहीं से पूजा घर से बाहर बना छज्जा दिखाई देता है। मैं पीपल के पेड़ की ओर देख रहा था। उस पर बंधे हुए धागे हर साल बढ़ते जाते हैं।

अचानक एक दृश्य उभरता है आँखों में। कुछ साल पहले मैं तब और भी छोटा था। उन धागों को खोलने की कोशिश कर रहा था। हवेली से दादी बाहर आ रही थीं। मुझे देखा और मेरा हाथ पकड़कर धक्का दिया मुझे। मैं गिर गया था। सहारा देकर पीछे से कलिया माँ ने उठाया।

'बेटा, चोट तो नहीं लगी।' पूछा उन्होंने।

'नहीं कुछ खास नहीं।'

'ये धागे नहीं खोलते बेटा। पाप लगेगा।'

'क्यों?'

'यहाँ पुरखे बसते हैं। वे कुछ माँगते हैं। तुम्हारे पास क्या है देने को?'

'पुरखे क्या होते हैं कलिया माँ?'

'परिवार के बूढ़े बुजुर्ग लोग होते हैं, जो अब नहीं है। श्राद्ध में हम उनकी पूजा करते हैं।'

'हाँ, यह तो मालूम है मुझे। हमारे इनके पुरखे एक ही हैं न।' मैंने कहा तो दादी चिल्लाई।

'जा, अपने मताई-बाप से पूछना। तेरे पुरखे कौन हैं? यहाँ पंचायत मत कर।'

कलिया माँ ने मेरा हाथ पकड़ा और घर की ओर ले जाने लगीं। कलिया माँ बूढ़ी थीं। हमारे यहाँ दूध देती थीं। सुबह-सुबह आ जाती थीं। अभी मंदिर आई थीं दर्शन करने। मैं उनके साथ घर पहुँचा। ऊपर पहुँचा मैं। देखा माँ रसोईघर में चूल्हा फूंक रही थीं। इसलिये तब उनसे कुछ नहीं पूछा।

कुछ गिरने की आवाज़ आती है और मेरी तंद्रा भंग होती है। कलिया माँ नहीं हैं। मैं कुछ सोच रहा था और आवाज़ सुन मानों जाग गया। आवाज़ ऊपर से आई थी? मैं सामने की ओर आता हूँ, वहां माधव और श्याम हड़बड़ाते से उतर रहे थे ऊपर से। गोपू भागकर ऊपर की ओर जाता है। फिर लौटकर अपनी माँ से कहता है इन दोनों ने ऊपर छज्जे का सामान नीचे गिरा दिया है। तगाड़ियाँ, बाल्टी और कुछ डिब्बे वगैरह।'

'क्यों गये थे छज्जे पर? बोलो।' दादी पूछती हैं।

'अरे, हम तो ऐसे ही खेल रहे थे ताई।' श्याम ने कहा। माधव अपना पैर सहला रहा था।

'ये तेरे पाँव में क्या हुआ?' दादी ने पूछा।

'कुछ नहीं, यूँ ही?' माधव हँस दिया।

'नहीं माँ, माधव छज्जे पर था। वहीं मेरा पतंग माँजा व हुचका पड़ा था बाल्टी में, उसे लेकर माधव कूदा था। तभी सामान गिरा है।' गोपू ने कहा।

'अरे, वो तो बिल्ली ने गिराया है।' श्याम ने सफाई दी। माधव हँसता रहा।

'अरे, बदमाशों अब ऊपर गये तो टाँगें तोड़ दूंगी।'

'दादी, पाँव तो वैसे ही टूटा-सा है।' माधव की हँसी नहीं रुक रही थी। माधव की हँसी से दादी और चिढ़ गई और हाथ से पकड़कर नीम के चौक पर खड़ा कर दिया। फिर बोलीं- 'यही गाड़ दूंगी तुझे नीम के नीचे।'

'नहीं-नहीं, ताई, वहीं पीपल के नीचे गाड़ना।' श्याम ने ठिठोली की।

माधव की हँसी नहीं रुक रही थी। वह बोला-'फिर तो मैं वहाँ उगूँगा छोटा-सा पीपल बनकर और सब पूजा करेंगे मेरी। मज़ा आएगा।'

दादी पास पड़ी लकड़ी उठाकर उसकी ओर झपटीं और माधव ने श्याम के साथ दौड़ लगा दी। मैं तमककर, सामने आ गया और चिल्लाया 'गाड़कर तो देखो जरा। मैं भी देखूँ।' माधव और श्याम ठिठक गये।'

'अच्छा! तू क्या कर लेगा पिल्ले? मैं भी देखूँ तेरी दादागिरी।' दादी भी तमक गईं।

'मैं तुम्हारे इन्हीं हाथों को चबा-चबाकर यहाँ फेंक दूंगा। फिर कुत्ते के पिल्लों को खिलाऊँगा। बाद में यहाँ कुकरमुत्ते उगेंगे जिन्हें पैरों से मसलूँगा।'

मैं भी गुस्से में पागल हुए जा रहा था और माधव व श्याम दूर खड़े हँस रहे थे। गोपू अब तक वहाँ चुप खड़ा था। पीछे भागकर ऊपर जाने वाली सीढ़ियों के पास चबूतरे से चिल्ला कर बोला-'माँ मुँह मत लगाओ सालों को। क्या पता, मुसलमान की औलादें हों ये। दादा साहब, पता नहीं कहाँ से इन मुसल्लों के बाप-दादा को लाये थे यहाँ। वहीं किसी घूरे पर पड़ा रहने देते तो अच्छा था।'

दादी, 'चुपकर गोपू' कहती हुई भीतर चली गईं मैंने वहीं पड़ा हुआ एक पत्थर उठाया और गोपू की ओर फेंका। वह भागकर सीढ़ियां चढ़ गया। पत्थर चबूतरे से टकराया। भगवत ने नीचे उतरते हुए देखा और मुझे थप्पड़ मारता हुआ भाग गया। मैं पत्थर उठाए हुए उसके पीछे भागा पर उस दिन वह नहीं मिला। मैं पत्थर वहीं फेंककर घर लौट आया। अग्नि-पुत्र सा सुलगता हुआ घर पहुँचा। देखा माधव और श्याम इत्मीनान से बैठे हुए कैरम खेल रहे हैं। माँ, कहीं नहीं दिखीं। न तीन खिड़की वाले कमरे में, न रसोईघर में। शायद नीचे गई होंगी। छोटी दादी के पास। मैं रसोईघर वाली खिड़की पर, माँ की प्रतीक्षा में बैठ गया।

माँ की प्रतीक्षा में व्याकुल हो रहा था। मेरी खीज बढ़ती जा रही थी। श्याम और माधव, हंसते चिल्लाते हुए कैरम खेलने में व्यस्त और मैं प्रतीक्षा में खीजता हुआ। बड़बड़ाने लगा 'माँ भी बस। जब देखो तब नीचे चली जाती हैं। कभी बतियाने तो कभी काम में हाथ बँटाने और वे नीचे वाले पता नहीं क्या-क्या खुराफात कर रहे हैं। एक वह है मधुवन वाली कहती है मेरे दादाजी बाहर से आये थे।'

श्याम और माधव का यूँ खेलना-हँसना मुझे अच्छा नहीं लग रहा था। मैं जोर से चिल्लाया- 'हँसो मत तुम दोनों।'

तब ही बूढ़ी अम्मा चिल्लाई-'तू चुप कर। बड़ी देर से बके जा रहा है।'

'अच्छा। अब मैं बके जा रहा हूँ। और जब कुछ सुनना हो तब। तब तो आ बेटा। जरा कुछ पढ़कर सुना दे। वाह रे वाह...।' मैं चिढ़ गया था। क्योंकि जिसके लिए वहाँ लड़ाई की। वह यहाँ हँस रहे हैं। खेल रहे हैं।

पता नहीं, 'माँ कहां हैं। कब तक आएंगी।'

'नीचे जाकर देख जरा। वहीं होगी तेरी माँ।' बूढ़ी अम्मा ने कहा।

मैं नीचे जाने के लिए सीढ़ियाँ उतरने लगा। तभी जोर से कुछ गिरने की आवाज़ आई। नीचे झाँककर देखा। काँसे का कटोरा गोल-गोल घूमता झन्ना रहा था। मैं समझ गया कि छोटे बाबा लौट आए होंगे।

'ये दूध-थूली है। न दूध है इसमें, न शकर। सूखी-सूखी और फीकी फट।' छोटे बाबा चिल्ला रहे थे।

मैं नीचे उतरकर, खिड़की के पास ओटले पर खड़ा था। भीतर झाँक कर देखा। रसोई घर के दरवाज़े के पास छोटी दादी सिर झुकाए बैठी थीं। माँ बरामदे में आ रही थीं। उन्होंने कटोरा उठाया और रसोई में जाने को मुड़ी ही थीं कि छोटे बाबा फिर चिल्लाए।

'तुम रहने दो। ऊपर जाओ। इन्हीं महारानी को करने दो।' माँ चुपचाप चल दी। हम दोनों ऊपर आ गए।

बूढ़ी अम्मा सिर तक चादर ओढ़कर लेटी हुई थी। श्याम और माधव अभी भी कैरम खेल रहे थे। माँ अपनी रसोई में चली गई। माँ से अभी बात करना ठीक नहीं होगा। मैंने सोचा और कमरे में जाकर लेट गया। बाबूजी के आने का समय हो रहा था तभी माँ ने आवाज़ दी।

'क्या बात है?' मैंने रसोईघर में जाकर पूछा।

'छुट्टियाँ हैं तो क्या कुछ पढ़ने-लिखने का काम नहीं करोगे? ऊपर से नीचे, नीचे से मधुवन, यही काम है बस।'

'माधव भी तो कैरम खेल रहे हैं। उन्हें क्यों नहीं कहतीं कुछ।'

'ग्वाड़ी के बच्चों के साथ तो नहीं खेलते वह। कितनी बार समझाया है तुम्हें बाबूजी ने। छोटे बाबा ने। मानते नहीं।'

'पर आज मैं ग्वाड़ी के दोस्तों के साथ नहीं था। मैं तो माधव और श्याम के साथ था।

'पर जाते तो हो उन लड़कों के साथ। और वह, क्या नाम है उसका। हाँ, इदरीस और हफीज़। वे अब भी आते हैं यहाँ। मना किया है न उन्हें घर बुलाने के लिए।'

'माँ, वे मेरे साथ पढ़ते हैं। क्या बुराई है उनमें। अब यह क्या बात हुई कि यह सिंधी है, वह पंजाबी है और यह मुसलमान है। ये ग्वाड़ी वाला है और ये नीची जात का है। मेरे

साथ पढ़ते हैं सब और मेरे दोस्त हैं। सब अच्छे हैं मेरे लिए। सारे टीचर तारीफ करते हैं उनकी।'

'देखो प्रभास, सब तारीफ करते हैं, इसलिए हम भी तारीफ करेंगे। यह मत सोचना। तुम्हारे बाबूजी और हम मना करते हैं, क्या इतना काफी नहीं है।'

'पर उन सबके माँ बाबूजी तो मुझे नहीं रोकते, उनके घर आने से। आप सबको क्या तकलीफ है मेरे दोस्तों से।' मुझे गुस्सा आ रहा था।

'अब तुम्हारे मुँह कौन लगे।' इतना कहकर माँ अपने काम में लग गई। माधव और श्याम खामोश दरवाजे पर खड़े थे। मैं भी चुपचाप नीचे उतर गया।

'पता नहीं साले कौन हैं, किसकी औलाद हैं।' इतनी बड़ी बात गोपू कह रहा था और माधव व श्याम चुप रहे। बड़ी दादी भी कुछ नहीं बोली। विजय कहता है कि तुम्हारे दादाजी बाहर से आए थे। छोटे बाबा वंश-ग्रंथ लिख रहे हैं और पढ़ने नहीं देते। उन्होंने भी कहीं यह सब ही तो नहीं लिखा है उसमें। सब कुछ रहस्यमय लगता है। क्या करूँ मैं अब। कोई सुनता नहीं है, कुछ बताता नहीं है। सोचता हूँ तो लगता है कि नुकीली सलाखें चुभा रहा है कोई शरीर में।

बाबा साहब की किताब से इतना ही जान पाया कि बुंदेलखंड से आकर बस गए थे यहाँ, कोई जानकीप्रसाद। सौ बरस पुरानी बात है। विश्वास नहीं होता। उनके इकलौते वारिस गोपालप्रसाद थे। उनके बेटे, रामदास और प्रेमदास। बूढ़ी अम्मा तीसरी पत्नी हैं उनकी। मेरे दादाजी के बारे में क्या लिखा है, पढ़ ही नहीं पाया था मैं। बाबूजी ने भी इतना ही बताया कि उनके पिता पंडित उमाशंकर थे। उन्होंने कलकत्ता के अलावा कोटा, बनारस और रीवा रियासतों में नौकरी की थी। वह भी दादा साहब के बेटे थे। दोनों बाबा साहब और बूढ़ी अम्मा क्यों नहीं बताते कुछ। उन सबकी खुराफातें मेरी उलझन बढ़ा रही थीं। दादी, गोपू और विजय की बातें। मैं क्या करूँ।

आज अभिन्न और शिवेन्द्र भी नहीं आए। हालाँकि मैं उनका रास्ता नहीं देख रहा था। वे दोनों आ जाते तो यह घमासान नहीं होता? शायद जो सवाल उठ रहे हैं मेरे मन में, क्या नहीं उठते? नहीं, ऐसा नहीं है। जो हुआ, वह तो होना ही था। आज नहीं तो कल। जो मैं सोच रहा हूँ, वह भी होता ही। और कभी। हम कौन हैं, यह जानने की कोशिश होनी ही थी।

माँ ने किसी बात पर, एक बार बताया था कि तुम्हारे दादाजी और दादी यहीं रहते थे। बूढ़ी अम्मा की कड़वी बातों से दुखी होकर वे चले गए थे यहाँ से। घर से दूर रहकर नौकरी के दौरान उनकी एक नई पहचान बनी। एक नया संसार बसा। बाबूजी भी बताते थे कि दादाजी अंतिम समय तक रीवा में रहे। माँ ने बताया कि तुम्हारी बुआजी और बाबूजी को उन्होंने दादा साहब के पास भेज दिया था। बुआ जी की शादी यहीं से हुई थी। बाबूजी काम सीखने बाहर गए थे। फिर यहाँ आ गए। तब से यहीं हैं। तब दादा साहब भी जीवित थे। माँ को भी यह सब बाबूजी ने ही बताया होगा या दादी ने। पर किसने, माँ ने यह नहीं बताया। सिर्फ इतना बताया कि ये बात उनकी शादी से बहुत पहले की हैं। बाबूजी हम भाई-बहिन से अक्सर तब की बातें किया करते थे। बाबूजी बताते थे कि वे ही दादा साहब को लेकर जाया करते थे। कभी अस्पताल, कभी कचहरी और महल की तरफ। राजवाड़े और नई बस्ती की हवेलियों में कभी-कभी। दादा साहब ताँगे पर पीछे बैठते थे। और ताँगा बाबूजी चलाते। वे यह सब सुनाते हुए अक्सर उत्साहित हो जाते और एक हर्ष व गर्व का भाव उनके चेहरे से झलकता। शुरू-शुरू में हम बच्चे भी खुश होते थे यह सब सुन कर और सोचते काश, हम लोग भी उस ताँगे पर बैठ पाते। पर अब तो न वह ताँगा है और न घोड़ा। दशहरा, राखी और अन्य त्यौहारों पर एक नम्बर ताँगा जाता है और माँ-बाबूजी के साथ हम सब उस पर बैठते हैं। कहीं दूर जाना हो तो बैलगाड़ी आ जाती है। कुछ साल पहले तक जेल की मोटर आ जाती थी। उसमें बीच की खाली जगह एक बैंच रख ली जाती। छोटे बाबा और हमारा परिवार उसमें बैठकर जाता। पर अब यह सब नहीं होता।

सोचते-सोचते मुझे कब नींद आ गई, पता ही नहीं चला। शाम ढल रही थी। माधव मुझे झकझोर रहा था, तब नींद खुली। भूख महसूस हुई और याद आया कि दिन में खाना ही नहीं खाया था मैंने। ऊपर गया तो देखा माँ और बाबूजी कुछ बातें कर रहे हैं कि एक चिट्ठी हाथ में लिए हुए। मैं पास जाकर बैठ गया। लिफाफा रखा हुआ था। पता लिखा हुआ था श्री भानुप्रकाश जी, मैनेजर। मैं समझ गया कि पत्र बम्बई से आया है। बाबूजी ने कहा - 'हम कल बम्बई जा रहे हैं कुछ काम से। कोई शिकायत नहीं मिलना चाहिये लौटने पर। माधव सुन रहे हो न?'

''जी बाबूजी'

दूसरे दिन बाबूजी चले गये। मैं अब भी अपने सवालों से जूझता रहता। मंदिर मार्ग, महल, नई बस्ती, राजवाड़े और माल रोड पर भटकते हुए अपने दोस्तों के साथ कुछ समय उन सवालों से बाहर अपने अस्तित्व के नये पहलुओं में डूबता हुआ किशोर मन अब कुछ नये सपने देख रहा था। सोचता, बाबूजी के कामों के सिलसिले में अपना खुद का कितना है, कितना नहीं। क्योंकि जिनिंग प्रेस का काम अब कम होता जा रहा है। शायद बन्द ही हो जाए। कुछ कहा नहीं जा सकता कि बम्बई में बैठे मालिकों के मन में क्या है। पुराने सेठ अब बूढ़े हो रहे हैं। उनके पार्टनर एक मुसलमान हैं। बूढ़े गुजराती सेठ धोती-कुरता और जाकेट पहनते हैं। मुसलमान सेठ हमेशा सूट टाई में रहते हैं। लंबा कद, गौर वर्ण बिल्कुल जिन्ना जैसे। एक-दो बरस पहले उज्जैन आये थे दोनों। गुजराती सेठ तो शहर के एक गुजराती सेठ की हवेली में ठहरे थे। मुसलमान सेठ एक होटल में। गुजराती सेठ का पूरा परिवार आया था। दूसरे पार्टनर अकेले थे। बाबूजी से मिलने घर आये थे तब उन्हें देखा था। छोटे बाबा के बड़े हॉल में बैठे थे। बाबूजी की उन सबके साथ जिनिंग फैक्ट्री वाले बंगले में बैठकें होती थी। बाबूजी को दोनों सेठ बहुत मानते हैं।

पता नहीं, कब लौटेंगे बाबूजी। कब तक चलेगा बंबई जाना। फिर आज कल तो फैक्ट्री के किसी मुकदमे के लिए दिल्ली भी जाना होता है। कभी यहां, कभी वहां इस चक्कर में बाबा साहब और दूसरी कई बातों के लिए बाबूजी से कुछ कहने का अवसर ही नहीं मिल रहा है।

पता नहीं कब तक चलेगा यह। कब तसल्ली होगी मुझे?

***

भाग-5

वे दिन। पुरानी यादों में भटकते हुए अचानक सामने आकर स्थिर हो जाने वाले कुछ चिन्ह। वे गलियारे, सड़कें, कमरे और पीपल का वह वृक्ष। चौगान में खड़ा हुआ नीम का पेड़। सब याद आते हैं जब, लगता है कुछ तो नहीं बदला। लेकिन कोतवाली की ओर जाती सड़क से गुजरता हूँ तो बहुमंजिला भवन देखकर अनुभव होता है सब कुछ तो बदल गया। कहीं जब वह तीन खिड़की वाला कमरा, वह तिमंजिला और काला दरवाजा। वे नाम चिन्ह-पत्थर, कुछ भी तो नहीं रहा। अभिन्न कहता था, उस काले दरवाजे पर पहुँचकर भीतर की ओर देखता हुआ 'यार, प्रभास तुम इसे मधुवन कहते हो? यह तो डरावनी हवेली लगती है मुझे' और घर आकर तीन खिड़की वाले कमरे की ओर देखकर कहता 'यह पुराना बंगला है अंग्रेजों के समय का।' सच ही कहता था वह। इसीलिए मैं तो उसे बड़ी हवेली ही कहता था और इसे छोटी हवेली। पर अब तो सब यादों में है। इस अर्थ में सब कुछ बदल गया है। एक बड़े बदलाव की शुरुआत तो बहुत पहले ही हो गई थी। बचपन के उन पुराने दिनों में ही।

उन दिनों, बाबूजी का बम्बई आना-जाना लगातार होता रहता था। ऐसे ही एक दिन बम्बई से लौटने के बाद की बात है। शाम के समय तीन खिड़की वाले कमरे में माँ और बाबूजी बैठे हुए थे। मैं और माधव भी पहुँचे तो उन्होंने पास ही बिठा लिया। बताया माँ ने कि बाबूजी ने बगल में एक प्लॉट खरीद लिया है। अब वहाँ हम अपना नया घर बनाएंगे। बाबूजी ने कहा- 'पीछे जो खेत वाली परिवार की ज़मीन थी, वह सरकार ने ले ली है अपने पजेशन में। वहीं प्लाट कट रहे हैं। एक हमने खरीद लिया है।'

'और यह मकान। वह मधुवन वाला मकान। ये भी सरकार के पास रहेगा?' हम भाइयों को यही जानने की उत्सुकता थी।

'नहीं। यहाँ छोटे साहब ही रहेंगे। वहाँ बड़े साहब का ही कब्जा रहेगा। हाँ, बड़े साहब को मुआवज़े में मंदिर के बाजू में दो बड़े प्लाट मिलेंगे। मंदिर वाला हिस्सा भी उनके पास ही रहेगा।' बाबूजी ने बताया।

'तो छोटे बाबा को मुआवजा नहीं मिलेगा?' मैंने पूछा।

'नहीं। असल में सरकारी कब्जे का मुकदमा बहुत पहले से चल रहा था। दोनों भाइयों के बंटवारे वाले मामले के पहले से ही। और छोटे साहब का जो हिस्सा था, वह इस मकान सहित उन्हें पहले ही मिल गया था।'

'और अपना हिस्सा। हम तो प्लाट खरीद रहे हैं और इन्हें फ्री में मिल रहा है।' मैंने उत्सुकतावश ही पूछा था। पर बाबूजी गंभीर हो गये थे। वे शायद कुछ ओर सोच रहे थे। उनके मन में भी कुछ प्रश्न थे, कुछ सन्देह और कुछ समाधान भी संभवतः। माँ भी शायद कुछ सोच रही थी। उन्होंने सही समय समझा होगा इसे, इसीलिए बोलीं-'बहुत कुछ बातें हैं जो हमें बच्चों को बताना चाहिये। बड़े हो गये हैं ये। अब नीरज और गौरव भी हो गये हैं। इन्हें भी कुछ सुनना पड़े तो अच्छा नहीं लगेगा।'

'इसीलिए तो प्लाट पर अपना मकान बनाने का सोच रहे हैं।'

'पर अपने बच्चे भी तो यहाँ 'अपना हिस्सा' जैसी बात सोच रहे हैं। सुना नहीं आपने, प्रभास ने क्या कहा।'

'हाँ, पर जो अपना नहीं है उस पर माथापच्ची क्यों करें।'

'तो क्या हम लोग बाहर से आये हैं यहाँ।' मैं बीच में बोल पड़ा।

'क्या बकते हो? किसने सिखाया है ये सब ।' बाबूजी गुस्सा हुए।

'सिखाया नहीं है, कहते हैं सब। नीचे वाले, मधुवन वाले, सभी कहते हैं।'

'क्या कहते हैं?'

'यही कि हमारे दादाजी बाहर से आये थे। विजय कहता है माँ से सुना है। और गोपू कहता है कि क्या पता साले मुसलमान हों ये। पता नहीं इनके पुरखों को दादा साहब कहाँ से लाये हैं यहाँ। बड़ी दादी कहती हैं कि अपने मताई-बाप से पूछना कौन हैं तेरे पुरखे? और माधव को नीम के नीचे गाड़ने की बात कह रही थीं एक दिन।'

'क्यों माधव, क्या कह रहा है प्रभास? सच है यह?' बाबूजी ने पूछा तो माधव चुप, सिर झुकाये बैठे रहे।

'बोलते क्यों नहीं।'

माधव धीरे से बोले - 'हाँ।'

बाबूजी और माँ दोनों सन्न रह गये। कुछ देर खामोश बैठ रहे। फिर माँ बोली कि 'प्रभास बता रहा था कि छोटे साहब परिवार के बारे में कोई किताब लिख रहे हैं। पता नहीं हम लोगों के बारे में क्या लिखा होगा।'

'क्यों प्रभास? और तुम्हें कैसे मालूम।' बाबूजी ने पूछा।

'मैंने देखा है उन्हें लिखते हुए और कुछ पन्ने पढ़े भी हैं।' मैंने कहा।

'क्या पढ़ा तुमने हमारे बारे में।'

'मैंने कहा न कि ज्यादा नहीं पढ़ पाया था मैं। बाबा साहब ने किताब छीन ली थी। फिर पता नहीं कहीं छिपा दी।'

'हाँ, तो हम कैसे मान लें कि हमारे बारे में कुछ गलत ही लिखा होगा। बंटवारे के वक्त हमने उनका ही साथ दिया। बड़े साहब कहते थे कि छोटे का साथ छोड़ दो तो हम ग्वाड़ी और उससे लगी जमीन तुम्हारे नाम कर देंगे। फिर भी हमने छोटे का साथ नहीं छोड़ा।' बाबूजी कुछ ज्यादा गंभीर हो गये थे। फिर बोले-'चलो छोड़ो अभी इस किस्से को। सो जाओ अभी। फिर कभी बात करेंगे। कल तो बाहर जाना है।'

'कहाँ जाना है?' माँ ने पूछा

'इन्दौर जाना है कुछ काम से। शाम तक वापस आ जाएँगे।' बाबूजी ने कहा।

सुबह जब नींद खुली, धूप निकल आई थी। देखा, सब सोकर उठ चुके थे। सिर्फ मैं, अकेला देर तक सोता रहा। उठकर सबसे पहले माँ के पास गया तो वे तपन और शुभ्रा का दूध तैयार कर ही थीं। नीरज और गौरव वहीं बैठे हुए अष्ट-चंग खेल रहे थे। ज़ाहिर है कोड़ियाँ उन्होंने मेरी संदूक से निकाली होंगी। मैं बाथरूम में चला गया और हाथ-मुँह धोकर बाहर आया, तब तक माँ ने मेरे लिए चाय बना दी थी। मैं चुपचाप चाय पीता रहा। पास ही, पूजा घर से बूढ़ी अम्मा का स्वर सुनाई दे रहा था- 'राम भजे जा राम बजे जा, न काहू को डर है। सरवरी को नगर बसत है, न काहू का घर है' और 'राम रामेती रामेती रमे रामे मनोरमे। सहस्त्रनाम तत्तुल्यं राम नाम वरानने।' यह राम रामेती वाला श्लोक अक्सर बाबूजी बोला करते थे। आज बूढ़ी अम्मा से सुनकर मुझे अचम्भा हो रहा था। 'राम भजे जा' उनका प्रिय भजन है। पर अभी राम रामेती उनके मुँह से सुना तो याद आया माधव और बाबूजी कहीं दिखाई नहीं दे रहे। मैं नीचे बाबा साहब की तरफ चला

गया, शायद वहाँ हों। पर वहाँ भी नहीं थे। वहाँ श्याम के एक बड़े भाई बरामदे में बैठे अखबार पढ़ रहे थे। अखबार बाबूजी मँगाते थे। मैंने अखबार माँगा तो वह उसे लेकर पास वाले कमरे में चले गये और दरवाज़ा अन्दर से बन्द कर लिया। मैं बड़बड़ाता हुआ ऊपर आ गया और माँ से पूछा- 'बाबूजी कहाँ हैं?'

'वे माधव को लेकर इंदौर गये हैं। शाम तक आ जाएँगे।'

'वाह! अच्छा है। उधर वह अखबार लेकर बन्द कमरे में बैठे हैं और इधर माधव इन्दौर चले गये हैं।' मैं चिढ़ गया।

'वह कौन? कौन बैठे हैं अखबार लेकर?' माँ ने पूछा।

'होंगे वही। क्या नाम है उनका महेश और सुरेश होंगे। छुट्टियाँ मनाने वही आये हैं न। अखबार पढ़ना है पर खरीद नहीं सकते।'

'जाने दो बेटा। अखबार मिल जाएगा। इधर आओ, देखो आज हम क्या बना रहे हैं।'

'क्या बना रही हैं आप।'

'पूरण पोली। तुम्हें बहुत पसन्द है न।'

माँ किसी किस्से को खत्म करने के लिए इसी तरह बातें घुमाती हैं। यही सोचते हुए मैं बोला 'हमें बहुत पसन्द है। फिर वहीं बैठ गया मैं। तपन और शुभ्रा भी बैठ गये। नीरज और गौरव बूढ़ी अम्मा के पास बैठे उनसे कहानी सुन रहे थे। वे दोनों बड़े दत्त-चित्त बैठे हुए थे। वे सुन भी रहे थे और देख भी रहे थे बूढ़ी अम्मा को खाना बनाते हुए। बूढ़ी अम्मा सालों से अपना खाना खुद बनाती थीं। राजगीरे के आटे की लपसी, राजगीरे की रोटी और हरी सब्जी उबली हुई, हल्का तड़का लगी हुई पर वह नमक नहीं खाती थीं। बच्चों को उनके हाथ की बनी लपसी बड़ी स्वादिष्ट लगती थी। शायद उसी प्रसाद की आशा में दोनों बैठे हुए थे। माँ के पास कुछ देर बैठकर मैं भी बूढ़ी अम्मा के कमरे में छत से लगी खिड़की के पास बैठ गया। पीछे बनी हुई ग्वाड़ी से गानों की आवाज़ आ रही थी। शायद कोई गा रहा था। मैं उठकर छत पर देखने चला गया कि कौन गा रहा है?

शाम को बाबूजी लौट आये थे। सबके मन में यह जानने की उत्सुकता थी कि अचानक हुई इस यात्रा का उद्देश्य क्या था। लेकिन मेरे मन में बहुत सारे सवाल थे और मुझे उनके भी जवाब चाहिये थे। दादा साहब की विरासत, बाबा साहब की परिवार-कथा के मायने

जो वे लिख रहे हैं और मेरे दादा-दादी का चाहा-अनचाहा प्रवास जो उनका निवास बन गया। दोनों हवेलियों द्वारा दिये जा रहे दंश और अपने अस्तित्व का अर्थ। अपने परिवार के वजूद का सत्य। पिता के अतिरिक्त कौन है जो आखिरी समाधान दे और एक ऐसी पुख्ता ज़मीन जिस पर उनके पुत्र अपने पैर जमा सकें। सबसे अधिक मुझे बड़ी हवेली वाली दादी की यह बात अब तक चुभ रही है कि 'जा अपने माँ-बाप से पूछ तेरे पुरखे कहाँ से आये' और गोपू का यह कहना कि 'क्या पता साले मुसलमान हो।' मुझे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि हम मुसलमान हैं या किसी नीची जाति के। पर मुझे मालूम है किसी को पड़ता है, बाबूजी को पड़ता है, बूढ़ी अम्मा और दोनों हवेली वालों को सबसे अधिक फर्क पड़ता है।

मेरे दोस्तों, खासकर इदरीस, हफीज और रईस अहमद को घर बुलाना भी माँ-बाबूजी को पसन्द नहीं। ग्यारसी, अनोखे, लोचन, नंदू और नारायण। कालु, जग्गू, सत्तू और लालू, ग्वाड़ी के इन दोस्तों के साथ मेरा खेलना भी पसन्द नहीं किसी को। मुझे अब भी याद है, जब कुछ साल पहले काले दरवाज़े के पास में ग्वाड़ी के दोस्तों के साथ होली का डाँडा गाड़ रहा था तब बड़े बाबा के सामने मेरी पेशी हुई थी। बाबूजी और छोटे बाबा भी नाराज हुए थे। फिर मैं इन सबके साथ जब रंग खेलकर घर आया, तब बाबूजी ने पिटाई की थी। और तो और एक दिन खूबचन्द घर पर आया था और उसने नाक व मुँह से आवाज़ निकालते हुए और मटकी को तबले जैसा बजाते हुए धुनें सुनाई थीं तो माँ को अच्छा लगा था। लेकिन जब मैं घर में काम आने वाले पीतल के ग्लास से पानी देने लगा, तब माँ ने रोक दिया था और उसे टूटी डंडी के कप में पानी दिया था। उसने पिया तो माँ ने मुझसे कहा था कि इसको बाहर कूड़ेदान में फेंक दो। मुझे अच्छा नहीं लगा। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि ऐसा क्यों? वह तो सिन्धी है। इससे भी छूआछूत। बाद में यह बात पता चली कि खूबचन्द का परिवार शरणार्थी बनकर पाकिस्तान से आया है। इसलिए उसको भी सब मुसलमानों जैसा समझकर छूआछूत पालते हैं। अब सोचता हूँ तो हँसी आती है, दुख भी होता है। मेरे अपने लोगों के मन-मस्तिष्क में यह छूआछूत कब, कैसे और क्यों पैठ गई है। सब मुझ पर भी बंदिशें लगाना चाहते हैं। मेरी बात सुनने को कोई तैयार ही नहीं हैं। परिवार के नाम पर कौन-सी परिभाषा बना रहे हैं। इन सबसे तो मेरे दोस्त भले हैं। रईस, इदरीस, ग्यारसी, लोचन और कालू। उनके छूने से न तो मैं काला हुआ और न मेरे छूने से वे गोरे हुए। हम सब सिर से पाँव तक एक जैसे

ही हैं। फिर रईस के अब्बा तो गोरे हैं। अभिन्न मुझसे कहता है कि उसके बाबा और रईस के अब्बा के माथे पर एक जैसे बल पड़ते हैं।

ये बातें हमारे बचपन का अहसास भर नहीं हैं। एक साल बाद हम भी जवानी में कदम रखेंगे। 'बच्चे हो अभी' और 'तुम नहीं समझोगे' यह कहकर कब तक हमें बहलाते रहेंगे?

हमारे सोच अब एक दृढ़ निश्चय बन चुके थे। महाराजवाड़ा स्कूल में हमारा यह आखिरी साल था। शुक्रवार का दिन था वह। रईस, इदरीस और हफीज़, दोपहर की नमाज़ पढ़ने गए थे। हर शुक्रवार जाते थे। प्राचार्य की अनुमति से उन्हें यह छूट मिली हुई थी। हमारी कक्षा के कुछ लड़कों ने इसका विरोध करते हुए हड़ताल की थी। उन्होंने माँग रखी कि हर सोमवार को हमें भी महाकाल दर्शन की अनुमति दी जाए। प्राचार्य ने इंकार कर दिया। इसी बात को लेकर विरोध, धरना और नारेबाजी होने लगी। अभिन्न, शिवेन्द्र और मैं इस विरोध में शामिल नहीं हुए। प्राचार्य ने हड़ताल में शामिल छात्रों को निलंबित कर दिया। सूचना सबके घरों में पहुँची।

हम इस विरोध में शामिल नहीं थे, इसलिए हमारा निलंबन नहीं हुआ था। हमें धमकी मिल रही थी। हमारे घर वालों ने भी कहा कि सोमवार की छुट्टी तुम सबको मिले। इसका समर्थन क्यों नहीं कर रहो हो। सभी पालकों को लग रहा था कि प्राचार्य ने नमाज़ की अनुमति और महाकाल दर्शन के लिए इन्कार कर सही नहीं किया। स्कूल का विवाद शहर की ओर मुड़ गया था। पालकों के माध्यम से राजनीतिक रूप ले रहा था यह विवाद। प्राचार्य पर दबाव बनाया जा रहा था। हमारे पालकों से भी राजनीतिक दल के लोग और दूसरे पालक मिल रहे थे।

प्राचार्य ने पहले छात्र नेताओं की बैठक बुलाई। कोई हल नहीं निकला तो पालकों की बैठक बुलाई। किसी एक निर्णय पर सहमति नहीं बन रही थी। क्योंकि पालक बँटे हुए थे। राजनीतिक दवाब के साथ ही प्रशासनिक दबाव भी था। प्राचार्य चिंतित थे। उनकी एक छवि थी। छात्र, शिक्षक और पालक सभी उनका सम्मान करते थे। वह अपनी सख्ती के लिए जाने जाते थे। पर यह घटना एक चुनौती थी उनके सामने।

राजनीति से जुड़े लोग सिर्फ बयानबाजी से ही नहीं, हथियारों से सज्जित होकर दंगा फैलाने की तैयारी में थे। ऐसे में हमारे शिक्षक ही हमारे सहायक बने। संस्कृत शिक्षक बलभद्रसिंह 'धुंध', हिन्दी शिक्षक शुक्लाजी और अंग्रेजी शिक्षक महमूद मास्टर साहब

एक साथ भूख हड़ताल पर बैठ गए। उनकी सिर्फ एक माँग थी कि स्कूल-कॉलेज को राजनीति से दूर रखा जाए। हमारी समस्या, हम अपने विद्यार्थियों के साथ बैठकर सुलझाएंगे। बाहरी हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। उन्होंने पालकों से भी प्रार्थना की कि वे बहकावे में नहीं आएं। अपने बच्चों को सिर्फ पढ़ने की ओर प्रेरित करें। उनकी बातों का असर हुआ।

ये तीनों शिक्षक अत्यंत लोकप्रिय थे। नाटक, वाद-विवाद और अन्य कार्यक्रमों के साथ ही खेल गतिविधियों की रूपरेखा भी वही निश्चित करते थे। महमूद मास्टर साहब हमारे घर भी आते थे। और घरों पर भी जाते होंगे। पंडित, मौलवी, राजनेता और कई धार्मिक सामाजिक कार्यकर्ताओं से उनके अच्छे सम्बन्ध थे। यही हैसियत कवि पुष्पजी की थी। जब हमारे तीनों शिक्षकों के साथ कवि पुष्पजी भी आए, तब माहौल बदलने लगा था।

सबसे पहले प्राचार्य ने सभी छात्रों का निलंबन समाप्त किया। स्कूल में शिक्षक-पालक समिति का गठन किया गया। सोमवार को सुविधा देने का प्रश्न ही नहीं था। वह माँग एक प्रतिक्रिया थी। धीरे-धीरे स्कूल में सब सामान्य हो गया था। लेकिन हमारे घर में अब भी सब कुछ सामान्य नहीं था।

मैं सोचता था कि छोटे बाबा संवेदनशील हैं। मास्टर साहब से उनकी अच्छी दोस्ती थी। पर मैं गलत था। स्कूल के घटनाक्रम से वह विचलित थे। यही नहीं, मुझसे नाराज़ भी थे। खुश थे कि उनके श्याम और विजय उस घटना से दूर थे न इस पक्ष में, न उस पक्ष में। माधव और कमल भी तटस्थ रहे। गोपू, सोमवार वाले दल में शामिल था। मैं इस दल के विरोध में था। इसलिए मैं सबकी नज़र में दोषी था। बड़ी हवेली वाले, नीचे वाले और हमारा घर, सब मुझे अपराधी मान रहे थे। गोपू आग में घी डालने का काम कर रहा था।

अब स्कूल की एक छोटी-सी घटना जिसका सुखद समापन भी हो गया था। लेकिन हमारे घर में बिन बात का तनाव था। बड़े बाबा, छोटे बाबा और बाबूजी बैठे थे हवेली में। छोटी दादी और माँ नीचे हॉल में।

'मैं कहता था न इन सालों के बारे में। अब तो सिद्ध भी हो गया। तभी तो प्रभास उनके समर्थन में खड़ा था स्कूल में।' गोपू अपने दोस्तों के साथ नीचे से हल्ला मचाता हुआ निकल गया। उसके दोस्त ताली बजा रहे थे। माँ को बुरा लगा।

'क्या तुम्हें इसीलिए स्कूल भेजते हैं? क्या ज़रूरत थी किसी का साथ देने की।' माँ ने गुस्सा करते हुए कहा।

'मैंने किसी का समर्थन या विरोध नहीं किया। मैंने सिर्फ यह कहा था कि कक्षा छोड़कर महाकाल जाने के पक्ष में नहीं हूँ मैं। शुक्रवार को नमाज़ के लिए जाना सही है या गलत, यह कहने वाला मैं कौन होता हूँ। गोपू जो बिना बात हल्ला मचाता है, उसे कोई क्यों नहीं रोकता?'

'रोकेंगे उसे भी।'

'आप रोकेंगी?'

'नहीं बाबा साहब रोकेंगे। तुम्हारी दादी रोकेंगी।'

'दादी तो खुद माधव को नीम के नीचे गाड़ने की धमकी दे रही थीं। तब गोपू ने भी बकबक की थी।'

'तुमसे तो बस बहस करवा लो।' माँ पीछा छुड़ाने के लिए अक्सर ऐसे ही टाल जाती थीं।

'मैं बहस नहीं कर रहा। सिर्फ अपनी बात कह रहा हूँ। बड़े बाबा क्या रोकेंगे उसे। वह तो स्वयं छोटे बाबा से शिकायत कर रहे थे।'

'क्या कह रहे थे।'

'कह रहे थे, छोटे तुम समझाते क्यों नहीं इस लड़के को। इसके बाप से कहो कि सज़ा दे इसको। तभी सुधरेगा।'

'तुम्हें किसने कहा?'

'श्याम ने और कौन बताएगा।'

हर दूसरे-तीसरे दिन यही होता रहता था। छुट्टियाँ खत्म होते ही महेश और सुरेश भी चले गए। रमेश दो दिन बाद जाएंगे। उनका आखिरी साल है। फिर नौकरी मिल ही जाएगी। उनके मामा बड़े अफसर हैं। पर अखबार छिपाने वाले तो गए। समय से ऊपर आने लगा अखबार। सुबह जल्दी उठना और कलिया माँ से दूध लेना, फिर शुरु हो गया था यह क्रम। पिछले दिनों की बातें भूलने लगा था। पढ़ाई के कारण हवेली और मंदिर की तरफ जाना कम हो गया था। श्याम और माधव के खेलकूद-हंगामों में कोई कमी

नहीं आई थी। छोटे बाबा अक्सर दोनों को बुलाकर डांटते। कमल और विजय की नई जोड़ी बन गई थी। मैं दोस्तों के साथ अपनी पढ़ाई में व्यस्त हो गया। फिर एक दिन कुछ ऐसा हुआ कि पुरानी घटनाएँ फिर याद आने लगीं। लेकिन माँ-बाबूजी को फुरसत ही नहीं थी मेरी बात सुनने की।

उस दिन, मैं अकेला, गुमसुम-सा कुएँ की जगत पर बैठा हुआ था। अपने हाथों में कंचे लिए उन्हें उछालता उठ खड़ा हुआ मैं तो हाथ से कुछ कंचे फिसलकर पीपल के पास तक चले गये। हवेली वाली दादी वहीं बैठी हुई थीं। शायद कोई पूजा की तैयारी में थीं। उन्होंने मुझे घूर कर देखा और बोलीं-'क्यों रे दलिद्दर क्यों हमारा धर्म भ्रष्ट कर रहा है।'

उनकी आवाज़ सुनकर गोपू बाहर निकल आया। अपने पैरों से कंचे बाहर कर उन्हें पास की झाड़ी में फेंक कर बोला-'माँ, स्कूल में मुसल्लों की सोहबत में यही तो सीखेगा।'

मैं भी चिढ़कर बोला-'तुम्हारी संगत से तो उनकी सोहबत लाख दर्जे बेहतर है। और, तुम्हारा कोई धर्म भी है जो भ्रष्ट हो गया?' गोपू और उसकी माँ कुछ कर पाते उसके पहले ही पीपल पर बैठे बन्दर ने पेशाब कर दी और कूदकर मंदिर के शिखर पर बैठ गया। मैं चुपचाप अपने घर की ओर चल पड़ा। क्योंकि वे दोनों भी भागकर भीतर चले गये थे।

घर पहुंचकर सीढ़ियों की तरफ के दरवाज़े से अपने कमरे में आ गया। पास ही बाबा साहब अपने कमरे में बैठे हुए बात कर रहे थे। साथ में जो बैठे थे उन्हें सब मुनीम जी कहते थे। वह शायद किसी नगर सेठ के मुनीम होंगे। मैं दरवाज़े को थोड़ा-सा खोलकर उन्हें देख-सुन रहा था। मुनीम जी कह रहे थे आपके दादा साहब के खेत की जमीन पर जो प्लाट कट रहे हैं, वहीं बाबू साहब ने भी मकान बनाने के लिए एक प्लाट खरीदा है।

‘अब ऐसा है कि जायदाद के बंटवारे में बड़े ने उन्हें इसलिए कुछ नहीं दिया, क्योंकि उन्होंने हमारा साथ दिया। अब हमारा भी फर्ज बनता है न। तो हमने उन्हें प्लाट खरीदने के लिए पैसे दे दिये। दादा के जो मकान थे उसे बेचकर उन्होंने अपना धंधा शुरू किया। हमने ही उनकी शादी में खर्च किया। अब वह अपना मकान बना रहे हैं। खुशी की बात है।' छोटे बाबा ने कहा।

उनकी बात सुनकर मुझे गुस्सा आने लगा था। मैंने एकदम से दरवाज़ा खोल दिया। मुनीम जी यथावत बैठे रहे, लेकिन छोटे बाबा हड़बड़ा गये। तेज़ स्वर में बोले-'क्या

करते हो?' 'कुछ नहीं उधर जाने के लिए दरवाज़ा खोला है, बस।' और हाथ से सीधा इशारा करता हुआ भीतर की सीढ़ियों की ओर बढ़ गया। सीढ़ियाँ चढ़ते हुए देखा, श्याम और विजय अपनी माँ के पास बैठे हुए हैं। विजय पूछ रहा है- 'माँ बाहर कमरे में दादा साहब की फोटो है दीवार पर। ऐसी ही मधुवन में भी टँगी है। पर ऊपर प्रभास और माधव के दादाजी की कोई फोटो नहीं है। न उनकी दादी की है, न बुआ की है। ऐसा क्यों?' उसे जवाब क्या मिला, इस पर ध्यान न देते हुए मैं लकड़ी की सीढ़ियों पर पैर पटकते हुए ऊपर चला गया।

ये क्या चल रहा है इस घर में। सब एक दूसरे से बिल्कुल अलग-थलग, लेकिन फिर भी अपनेपन का स्वाँग करते से लगते हैं। आज की बातों के साथ ही पुराना कुछ फिर याद आ रहा था। हम मुसलमान हैं, दलिद्दर हैं। माधव को ज़मीन में गाड़ने की धमकी देने वाले हमारे अपने कैसे हो सकते हैं? पर उन छोटे बाबा को भी कैसे भूल जाऊँ जिन्होंने मेरी पाटी पूजा की थी। मेरा नामकरण किया था। उन सुन्दर काका को कैसे भूल सकता हूँ जिन्होंने टपरेनुमा छत से गिरने पर मुझे उठाया था और यह भी सच है कि उन्हीं बाबा साहब ने अपनी किताब को पढ़ने से मुझे रोक दिया था। माँ और बाबूजी की समस्या क्या है कि वह हमें पूरा सच नहीं बता रहे। इस भरे-पूरे परिवार में रहकर भी एक परायेपन और शरणार्थी होने का अहसास मुझ पर हावी हो रहा था। मुझे मेरे सवालों के जवाब नहीं मिल रहे थे। रईस और इदरीस की संगत का असर और बड़ी बहन नयना के ससुराल में बहनोई साहब और उनके मित्र जब कभी मिलते तो नई-नई बातें सुनता। तब ही ब्लिट्ज पेपर नियमित पढ़ने लगा। उसी का असर यह हुआ कि इदरीस और रईस के साथ रावल मास्टर साहब के पड़ोस में स्थित पार्टी-दफ्तर जाने लगा। स्कूल के आखिरी साल तक चौक की सभाओं में जाना, सुनना और कभी-कभी बोलना भी अच्छा लग रहा था। लेकिन भीतर के अहसासों तथा उनको पैदा करने के लिए ज़िम्मेदार लोगों के प्रति एक नफरत सी भर गई थी। एक विद्रोह जन्म ले रहा था। अब सोच लिया था कि अपने भविष्य के सवाल को खुद ही हल करूंगा। मैं कौन हूँ - के साथ ही मुझे क्या करना है, का विचार भी मेरे भीतर घुमड़ रहा था। किसी भी तरह मेरा मन शान्त नहीं था। पिछले दो-तीन बरसों से बाबूजी का आना-जाना बम्बई के साथ दिल्ली की ओर भी होने लगा था। एक दिन ऐसे ही माँ से यह भी मालूम हुआ था कि बाबूजी जिस फैक्ट्री में मैनेजर हैं, उसके पीछे खेत की ज़मीन भी सरकार ने अपने कब्जे में ले ली है। कॉलोनी

एवं अस्पताल बनेगा वहाँ। मुआवजे का मुकदमा सुप्रीम कोर्ट तक पहुँच गया था। इसलिए बाबूजी दिल्ली भी जाते रहे हैं। इधर इन यात्राओं के साथ ही मकान के काम का बोझ भी। इसीलिए बाबूजी से बात नहीं हो पाती और माँ ज्यादा कुछ बताती नहीं। इससे मेरे मन की अशांति भी बढ़ रही थी।

'तो क्या अब बाबूजी वहाँ मैनेजर नहीं रहेंगे।' मैंने एक दिन माँ से पूछ लिया था।

'नहीं ऐसा नहीं है।' माँ ने बताया कि 'मैनेजर रहेंगे। फैक्ट्री की जमीन तो है ही।'

'यहाँ तो पिछले कुछ सालों से हैं बाबूजी। इसके पहले क्या दुकान थी अपनी। छोटे बाबा मुनीमजी को बता रहे थे कि वह दुकान बेच दी। उसके बाद फैक्ट्री में आये।'

'हाँ ठीक कह रहे थे। तुम्हारे दादाजी का एक मकान था इन्दौर में। उसे बेचकर दुकान शुरू की थी। फिर शुभ्रा के जन्म के समय हम बीमार थे। तब बाबूजी ने वह दुकान बेच दी थी। तुम्हारे दादाजी के नहीं रहने के बाद दुकान शुरु की थी। तब तुम्हारे दोनों काका भी पढ़ रहे थे। दादी भी यहीं आ गई थीं। इसी समय इन्दौर का मकान बेचा था बाबूजी ने। फिर तुम्हारे काका की शादी। इस सबका खर्च था। दुकान तब बेची जब फैक्ट्री में आये।' बस इससे आगे और इससे ज्यादा माँ ने कुछ नहीं कहा।

अब भी बहुत कुछ जानना था। पर मैं यह समझ गया था कि बाबूजी ने अपने जीवन में संघर्ष बहुत किया है। बहुत सारी जिम्मेदारियों का निर्वाह किया है। इसीलिए मेरा गुस्सा इन हवेली वालों के प्रति और बढ़ता गया। यह प्रश्न अनुत्तरित ही रह जाता कि इन हवेली वालों से हमारे रिश्तों की बुनियाद क्या है। अगर हम इनमें से ही हैं तो फिर दोनों घरों से परायेपन की तानाकशी क्यों सुनाई दे रही है। फिर नीचे वालों से, छोटी दादी से माँ का रिश्ता तो रहा है। फिर भी हम इतने अलग, इतने उपेक्षित क्यों हैं। मुझे उस कड़ी को खोजना है। छोटे बाबा की उस किताब में ऐसा क्या लिखा है जिसे वे यत्नपूर्वक छिपा रहे हैं, क्यों? मेरे लिए यह समझना और भी मुश्किल था कि बाबूजी मेरी हर बात पर गंभीर हो जाते हैं, लेकिन जवाब या समाधान नहीं मिलता। मेरे लिए सब कुछ बहुत मुश्किल हो रहा था।

अक्सर गोला मंडी स्कूल के हेडमास्टर मेहता जी याद आते हैं। प्रार्थना सभाओं में वे हमेशा यह सीख देते थे-'सच कहो। सच कहने और सुनने से मत डरो। वहीं कुछ गलत हो रहा हो तो विरोध करो, प्रतिकार करो। आवाज़ उठाओ। तब ही कुछ बन पाओगे।

गाँधीजी कहते थे...।’ मैं उन्हें यदि रोककर कहता कि गाँधी जी कहते थे कि अगर कोई थप्पड़ मारे तो दूसरा गाल भी सामने कर दो। क्या यह सही होगा, तब वे चुप हो जाते।

यह सब सोचकर कभी-कभी हँसी आती है और कभी यह भी सोचता हूँ कि मैं सच ही तो कहता रहा हूँ। गलत का विरोध कर रहा हूँ। सच को जानने की कोशिश कर रहा हूँ और यह सब जानना जरूरी भी लगता है तो माँ-बाबूजी खामोश क्यों हैं? बाबा साहब क्यों चुप हैं। हवेली वाली दादी क्यों हमें बुरा-भला कहती हैं और गोपू, उसका क्या किया जाए? पर कुछ नहीं हुआ। कुछ नहीं हो रहा। नयना जीजी से जानने का मन ही नहीं हुआ कभी। माधव अपने में मगन रहते हैं।

कुछ साल पहले की बात है बूढ़ी अम्मा गा रही थीं 'ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर।' मैं कुछ और कहकर निकल गया था 'हर काहू से दोस्ती, पर मुझ से सबको बैर।' तब माँ बहुत नाराज़ हुई थीं। अब ऐसी कोई बात कहो तो मुस्कुरा देती हैं।

महाराजवाड़ा स्कूल में वार्षिकोत्सव की तैयारियाँ चल रही थी। उससे पूर्व मध्यप्रदेश का स्थापना दिवस मनाया जाता है। महमूद मास्टर साहब पर सारी ज़िम्मेदारियाँ थीं और उन्होंने मेरे साथ अभिन्न, रईस और शिवेन्द्र को भी कुछ काम सौंपे। जैसे भाषण प्रतियोगिता के लिए, नाटक और तात्कालिक भाषण के लिए बोलने को तैयार रहना था हमें। एक नवम्बर 1956 को मध्यप्रदेश का गठन हुआ था। मध्यभारत, महाकौशल, विन्ध्यप्रदेश और भोपाल रियासत को मिलाकर मध्यप्रदेश बना था। मेहता जी कहते थे कि मालवा, निमाड़, बुन्देलखण्ड, बघेलखंड, गोंडवाना, छत्तीसगढ़ और भोपाल रियासत मिलाकर मध्यप्रदेश का गठन हुआ। वह बड़े दुःखी होते थे कि भोपाल राजधानी बना। उनका मन था राजधानी उज्जैन होना था। कुछ शिक्षक कहते इन्दौर या ग्वालियर तो कुछ जबलपुर के पक्षधर। पर सोचते रहने से क्या हासिल होगा। ऐसा महमूद साहब कहते हैं। तो भोपाल ही राजधानी है अब। उज्जैन में विश्वविद्यालय बना और जबलपुर में हाईकोर्ट। रीवा, इन्दौर और ग्वालियर में भी बहुत कुछ बना। पर बहस चलती रहती है। हम दोस्त तो अलग-अलग क्षेत्रों की साहित्यिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पहचान पर भाषण लिख रहे थे और नाटक तैयार कर रहे थे।

मुझे अपनी इन्हीं तैयारियों के साथ वे दिन याद आ रहे थे, जब माँ और बाबूजी के साथ एक बार नागपुर गये थे हम लोग। तब मैं माधव और शुभ्रा ही थे। ऐसे ही एक बार माँ के

साथ भी हम तीनों गये थे शायद तपन भी साथ रहा हो। तब हम रायगढ़ गये थे। और बचपन में कोई तीन-चार बार जबलपुर भी गये थे। ये सारे स्थल हमारी ननिहाल से संबंधित थे। रायगढ़ में नानाजी नहीं थे। वे तब रंगून में थे, फौज में सिपाही। लेकिन नागपुर व जबलपुर में नानाजी भी थे। तब वे अक्सर मेरे सवालों से नाराज़ हो जाते थे। शायद तब उन्हें इधर के घटनाक्रमों की कोई जानकारी ही नहीं होगी। वे सदा छोटे बाबा व दादी की अतिश्योक्तिपूर्ण प्रशंसा ही करते। मुझे तब भी यह अच्छा नहीं लगता था, पता नहीं क्यों। पर वे अपने प्रगाढ़ सम्बन्धों के बारे में निश्चिन्त थे। वे भी हवेलियों के संसार में घिरे हुए एक तनहा व्यक्ति थे। मैं इधर बाबूजी के साथ यहाँ की हवेलियों से घिरा हुआ।

उन दिनों रायगढ़, नागपुर और जबलपुर के अलावा राजूर और अजनी जैसे छोटे रेलवे स्टेशनों के गाँव में माँ लेकर गई थीं हमें। राजूर में छोटे काका जयप्रकाश की पहली पोस्टिंग हुई थी। अजनी में राजकुमारी बुआ रहती थीं। नागपुर के पास थी एक बस्ती अजनी। जैसे उज्जैन के पास मकोड़िया आम और खिलचीपुर। वहाँ अजनी में फूफाजी रामेश्वरप्रसाद दुबे रेलवे अधिकारी थे। पहली बार अजनी हम लोग बाबूजी के साथ गये थे और लौटते समय नयना जीजी भी हमारे साथ रहने आ गई थीं। दूसरी बार छोटे काका के साथ गये और वे हमें राजूर भी ले गये थे। तब दादी भी वहाँ थीं। मुझे अब भी याद है दादी रोज़ सुबह मथानी से दही मथतीं। मक्खन निकालतीं। ताज़ा दही की लस्सी माधव व मुझे पीने को देतीं। शुभ्रा और तपन छोटे थे। तब ही एक दिन बाबूजी की चिट्ठी आई। दादी ने माँ से कहा, पढ़कर सुनाओ। माँ चिट्ठी पढ़ती जा रही थीं कि अचानक रोने लगी थीं। दादी कहतीं सुनाओ और माँ और रोती जाती। दादी ने माँ के हाथ से चिट्ठी छीनकर माधव को दी और बोलीं- 'तुम सुनाओ।' माधव ने अटक-अटक कर पढ़ा। चिट्ठी में बुआ की मृत्यु का समाचार लिखा था बाबूजी ने। अब दादी भी रोने लगी थीं। हम सब रो रहे थे तब ही काका आये। उन्होंने कहा आज ही उज्जैन चलना है।

बुआ की मृत्यु उज्जैन में हुई थी। मेरे लिए तब यह समझ पाना भी मुश्किल हो रहा था कि अभी एक बरस पहले बुआ अजनी में थीं। अपने घर। उज्जैन कैसे पहुँची। पर जो हो, अब हमें उज्जैन जाना है। रास्ता लम्बा था, दूरी भले ही कम हो। सीधी रेल नहीं मिलती थी। हम राजूर से नागपुर आये। नागपुर से भोपाल और भोपाल से उज्जैन। नागपुर स्टेशन पर नाना-नानी मिलने आये थे। नानी-दादी गले मिल रही थीं। दोनों रोती

जा रही थीं और याद नहीं आ रहा कि तब रोते हुए वे क्या कह रहीं थीं। लेकिन उनका बोलते हुए रोते जाना याद रहा बस। वह नानी और दादी की पहली और आखिरी मुलाकात थी। दादी उज्जैन आकर भी ज्यादा नहीं रुकीं। उनका यह उज्जैन प्रवास भी आखिरी था। फिर लौट गई थीं राजूर और वहीं प्राण त्यागे। उनके अंतिम समय छोटे काका ही उनके पास थे और अब जबलपुर से खबर आई है कि नाना भी कैन्सर-ग्रस्त हैं। बम्बई जा रहे हैं इलाज के लिए। हम सब सोच रहे थे कि बम्बई जैसा बड़ा शहर, नाना बीमार और साथ में अकेली नानी।

एक नवम्बर स्थापना दिवस की तैयारी के साथ ही इस एक समाचार में मन में अलग ही हलचल पैदा कर दी थी। मैं बुन्देली, बघेली, छत्तीसगढ़ी और मालवी-निमाड़ी संस्कृतियों का तालमेल नवाबी भोपाल की तहज़ीब से बिठाने की मानसिक कसरत कर रहा था और नानी, दादी और नाना के चेहरों के साथ एक तस्वीर बनते-बनते धुंधलाती-सी दिख रही थी। वह शायद दादाजी का चेहरा होगा जो इसलिए नहीं बन पा रहा था कि मैंने उन्हें देखा ही नहीं था। उनकी तस्वीर भी घर में कहीं नहीं थी। यदि बड़े और छोटे बाबा के पास रही भी होगी, तो उन्होंने कभी इस विषय में कोई बात ही नहीं की। बाबूजी के अलावा कोई कुछ नहीं बताता। माँ बतायें कैसे, उन्होंने भी देखा नहीं दादाजी को। मैं सोचता। बाबूजी बताते हैं कि दादा साहब की मृत्यु 1934 में और दादाजी की 1939 में हुई थी। दादी अभी कुछ बरस पहले 1953 में गुजर गईं तो क्या अब नाना.... मैं अपना सिर झटक कर अपनी सोच को रोकता हूँ।

नवम्बर आया और चला गया। सर्दियाँ बीत गईं। नया साल शुरू हुआ। परीक्षाओं का दौर आया और गर्मी शुरू हो गई। मकान का काम तेज़ी से हो रहा था। बाबूजी व्यस्त । शायद इसी वर्ष पूरा हो जाए। नाना भी जबलपुर लौट चुके थे। लौटने से पूर्व उज्जैन आये। एक-दो दिन रूके और चले गये। कुछ दिन बाद बाबूजी ने माँ को जबलपुर भेजने का निर्णय लिया। माँ के साथ माधव, शुभ्रा और गौरव भी गये। बाबूजी ने मुझे रोक लिया। साथ ही तपन और नीरज को भी। मैं रोज़ सुबह नये मकान पर पानी की तराई करने जाता था। बाबूजी ने मन में एक निश्चय कर लिया था शायद।

माँ के जाने के बाद मकान का काम तीव्र गति से हो रहा था। मेरा भी दोस्तों से मिलना-जुलना बन्द-सा ही था। सुबह उठते ही काम में लग जाता, वे सारे काम जो माँ किया करती थीं। बाबूजी पूजा करने के बाद मकान पर चले जाते। मैं अपने लिए, तपन, नीरज

और बाबूजी के लिए चाय-नाश्ता व खाना तैयार करता। बूढ़ी अम्मा, छोटी दादी और उनकी बड़ी बेटी भैरवी अक्सर हमारी रसोई के आसपास ही मंडराती रहतीं। बूढ़ी अम्मा अपनी तय जगह रसोईघर के बाहर वाली खिड़की पर आसन लगातीं। भैरवी और दादी हमारे ही पाटले उठाकर उन पर विराजतीं। मैं कुढ़ता और नीरज से धीमे स्वर में कुछ कहता हूँ तो वह मुस्कुरा देता है।

दोनों हमारे ही अखबार के पन्ने मुँह के सामने लगाकर पढ़ने का ढोंग करतीं। एक दिन, भैरवी ने मुझसे पूछा 'क्यों भाई, अब तो तुम लोग अपने नये घर में रहोगे? कब जाओगे।'

मैं चुप रहा तो दादी बोलीं-'जरूरी नहीं है भैरवी। हो सकता है भानु भइया ने कोई किरायेदार ढूंढ लिया हो।'

'हाँ SSSS हमें तो जेई सच लगता है।' बूढ़ी अम्मा बोल पड़ीं।

मैं फिर भी चुप रहा। नीरज उनके सामने खड़ा हो गया। भैरवी बोलीं – 'परदा किये क्यों खड़ा है रे। उधर बैठ न।'

'अखबार दो। मुझे भी पढ़ना है।'

'ओ हो! अब ये भी पढ़न्ता की पूँछ हो रहे हैं। अखबार पढ़ेंगे। अम्मा सुना आपने।'

तब ही नीचे दरवाज़ा खड़कने की आवाज़ आई। मैं नीरज से बोला-'जा, नीचे दरवाजा खोल। शायद बाबूजी आये होंगे। इनकी-उनकी बातों पर ध्यान मत दे ।'

'लो बोलो, अम्मा, अब हम इनके-उनके हो गये। बातें तो सुनो नवाब साहब की।' भैरवी ने चिढ़कर कहा तो मैं भी 'जब देखो बक-बक-झिक-झिक' कहता हुआ भीतर की कोठरी में चला गया।

दोनों, सीढ़ियों पर आहट सुनकर, अखबार पाटले पर रखकर पूजा घर की तरफ निकल गईं। बूढ़ी अम्मा वहीं जमी रहीं।

बाबूजी आ गये थे। वे रतलामी सेव का पैकेट लाये थे। मुझे देकर बोले – 'रख लो खाने के साथ थोड़ा-थोड़ा खा लेंगे।' मैं खाना परोसने की तैयारी करने लगा।

रात में सोने से पहले बाबूजी ने कहा कि 'कल से थोड़ा-थोड़ा सामान समेटना शुरू करेंगे। उधर काम लगभग पूरा हो गया है। आज पेंटर आकर देख गया है। कल से काम

शुरु करेगा और एक हफ्ते में काम पूरा हो जाना चाहिए। फिर यहाँ का सामान वहाँ पहुँचाना शुरु करेंगे। रसोई का कुछ सामान बचेगा जो तुम्हारी माँ के आने के बाद ले जाएंगे। अब सो जाओ।' बाबूजी भी सो गये थे थोड़ी देर में।

दूसरे दिन सुबह उठकर मैंने चाय-नाश्ते व खाने का काम जल्दी से पूरा कर लिया और सामान समेटना शुरू कर दिया। बगल की कोठरी व तीन खिड़की वाले कमरे में रखने लगा। मैं सामान इकट्ठा करता और नीरज कमरे में उसे अलग-अलग रखता जाता था। जितना उसे समझ में आता। फिर बाबूजी उसे व्यवस्थित करते थे। बाबूजी, रोज़ वहाँ काम शुरू करवाकर आ जाते थे। तब वहाँ मिस्त्री साहब निगरानी करते थे। ऐसे ही एक दिन, जब मैं तिमंजिले पर से कुछ सामान उतार रहा था, श्याम वहाँ आकर खड़ा हो गया। विजय और भैरवी भी रसोईघर के बाहर खिड़की पर बैठ गये थे। शायद देखने आ गये थे कि हम क्या-क्या ले जा रहे हैं। जब बाबूजी नहीं होते थे, तब वे लोग आ जाते। बाबूजी के आते ही उड़न छू।

एक दिन, मैं तिमंजले से कुछ सामान उतार रहा था। एक लोहे का रैकनुमा स्टैंड था जो जूते-चप्पल रखने के लिए माँ ने बनवाया था। लेकिन रसोई के बगल में, सीढ़ियों के पास जगह कम होने के कारण उसे ऊपर रख दिया था। जूते-चप्पल ऐसे ही रखे रहते। वहाँ मैंने वह स्टैंड रख दिया, यह सोचकर कि यहीं से नीचे ले जाएँगे सामान के साथ। भैरवी तुरन्त पहुँची, 'यह कहाँ ले जाते हो?'

'हमारा है हम ले जाएँगे। काम आएगा हमारे।' मैंने जवाब दिया।

'नहीं, ये नहीं ले जाओगे तुम।' श्याम बोला।

'ऐसे कैसे नहीं ले जाएँगे। कोई दादागिरी है?'

'हाँ, है। हमारा है यह, जा श्याम माँ को बता और उन्हें बुला ला यहाँ।' भैरवी ने तमककर कहा।

मैंने स्टैंड रसोईघर में घसीट लिया। नीरज उससे टिककर खड़ा हो गया। छोटी दादी एक पोटली लेकर ऊपर आ गई थीं। पोटली सामने रखकर बैठ गई जमीन पर पसर कर।

'इसे खोलो श्याम।' उन्होंने कहा।

फिर उसमें से लकड़ी के तीन गोल पाटले, बेलन और एक मसालादान निकालकर रख दिया।

'लो, ये भी ले जाओ। ये भी तुम्हारा है।' बोली वह।

'नहीं, ये सब हमारा नहीं है। हमारा सामान हमारे पास है।' मैंने जवाब दिया।

'अरे भाई, तुम्हारे फूफाजी लाए थे तो तुम्हारा हुआ न।'

'नहीं फूफाजी ने सबके लिए भेजी थीं ये चीजें। माँ ने सबको बाँट दीं थीं। हमारे हिस्से की हमारे पास हैं। दूसरों के हिस्से की चीजों पर हम कब्ज़ा नहीं करते'

'ओ हो। बातें सुनो इन ज्ञानी महाराज की।' भैरवी ने ताना मारा।

तभी नीचे से बाबूजी की आवाज सुनाई दी।

'मिस्त्री साहब, आप यहीं रूकना। मैं अभी आया।'

इतना सुनना था कि दादी, भैरवी और श्याम पोटली में सामान समेट कर नीचे चले गए। बाबूजी ऊपर आए। उधर पूजाघर से बूढ़ी अम्मा ज़ोर-ज़ोर से गा रही थीं।

'ठाकुर भले बिराजे जी, जगन्नाथपुरी में भले बिराजे जी।'

हफ्ता-दस दिन के बाद, हमारा लगभग सारा सामान जा चुका था। फैक्ट्री से चौकीदार बा और दो-तीन मजदूर आ गए थे, हाथ ठेले लेकर। मैं उन्हीं ठेलों में सामान भिजवाता रहा। वहाँ बाबूजी ने मिस्त्री और बेलदारों की मदद से सामान उतरवा लिया था। शाम को हम लोग मिलकर सामान व्यवस्थित रखते रहे। नीरज खुश था कि ऊपर बहुत बड़ी और पक्की छत मिलेगी खेलने के लिए। सामने और बायी तरफ भी काफी जगह थी।

'बिस्तर और रसोई का सामान तुम्हारी माँ के आने के बाद लाएँगे।' बाबूजी ने कहा।

'बाबूजी, पूजा भी तो करेंगे।' मैंने कहा।

'हाँ, गृह प्रवेश की पूजा करेंगे। उसी के बाद शिफ्ट करेंगे। देखो, नीरज कहाँ गया।'

'ऊपर गया होगा छत पर। मैं बुलाता हूँ।' आँगन में निकलकर मैंने आवाज लगाई तो नीरज आ गया। दूसरे दिन, चाय-नाश्ते के बाद बाबूजी तैयार हुए। बाहर जा रहे थे शायद।

'हम पंडित जी से मिलकर आते हैं। याद रखना कि चिट्ठी लिखना है, तुम्हारे नानाजी के समाचार जानने और तुम्हारी माँ का वापसी का कार्यक्रम जानने के लिए।' इतना कहकर बाबूजी उतरकर नीचे गये। लेकिन तुरन्त ही ऊपर आ गये। उनके हाथ में एक लिफाफा था। बोले-'जबलपुर से ही चिट्ठी आई है। बाबूजी लिफाफा खोलते हुए ही पूजाघर से निकलकर कमरे में पहुँचे। हम दोनों भी उनके पीछे-पीछे। वे आलमारी के पास ही बैठ गये। हम तीनों पास ही बैठ गये। बाबूजी ने पत्र पढ़ने से पहले मुझसे कहा कि 'हमारी छोटी आलमारी में से कागज़ और पेन भी निकाल लो। और नीरज कोठरी में तख्ती लाना जरा। तब तक वे पत्र पढ़ते रहे। पत्र पढ़ने के बाद उन्होंने मुझे पकड़ा दिया और तख्ती में कागज लगाकर लिखने लगे। मैंने देखा कि वे लिखते जा रहे हैं और रोते जा रहे हैं। लगा कोई बात ज़रूर है, यही सोचकर मैंने पत्र पढ़ा। पत्र पढ़ते ही मुझे भी रोना आ गया। नीरज कुछ समझा नहीं। मैंने उसे पास बिठाकर कहा 'नीरज नानाजी की मृत्यु हो गई है जबलपुर में।' फिर बाबू जी से पूछा 'अब हमें जाना होगा न जबलपुर।'

'नहीं, अब यहाँ इतना काम है तो हम लोग नहीं जा सकेंगे। फिर तुम्हारी माँ वहाँ है। माधव और शुभ्रा, तुम्हारी मौसियाँ भी हैं। छोटी काकी के मायके वाले भी हैं। कहते हुए बाबूजी फिर से रुँआसे हो गये। गहरी साँस लेकर छोड़ते हुए बोले-'बहुत बुरा हुआ।'

बहुत समय बाद मैंने बाबूजी को ऐसे रोते हुए देखा था। दादी के समय का कुछ याद नहीं। नयना जीजी की शादी के समय का याद है। फूफाजी जीजी की विदाई के पूर्व ही जब लौट गये थे अपने घर। उस समय रोते देखा था। पहली बार और अब। आज के दिन। और ऐसे समय भी बड़ी हवेली से बाबूजी से मिलने कोई नहीं आया। नीचे वाले भी नहीं। बूढ़ी अम्मा को बाबूजी ने बताया तो वे अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर बैठ गई। बोली कुछ नहीं। नीरज को उनकी इस मुद्रा पर हँसी आ गई। वह भागकर भीतर चला गया। मैं भी गुस्से में भीतर चला आया। बाबूजी नीचे उतर गये। मुझे बुरा लगा कि अब बाबूजी बाबा साहब और दादी के साथ बैठेंगे। मुझे मालूम है कि इस समय भी उनके पास अपने ही जरूरी काम होंगे। उनके यहाँ रमेश की शादी की बातें हो रही थीं। भैरवी को ससुराल छोड़ने के लिए किसी को जाना है। हर काम के लिए बाबूजी से ही मनुहार करते हैं दोनों। बाबा साहब और दादी। अपना काम करवाना हो तो भानु भइया, भानु भइया। और यों भानु। मतलबी। मैं अपने में ही बड़बड़ाता जा रहा था। नीरज चुपचाप, गुमसुम सुन रहा था। बोलता भी क्या वह।

कुछ दिन ऐसे ही खामोशी में बीत गये। हम लोगों ने इस बीच सारा सामान नये मकान में व्यवस्थित कर लिया था। बाबूजी ने एक दिन बताया कि अगले सोमवार शुभ मुहूर्त है। उसी दिन तुम्हारी माँ जबलपुर से लौट रही हैं। उन्हें स्टेशन से सीधे नये मकान पर ही लाएँगे। तब ही गृह-प्रवेश का पूजन होगा। सुबह नहा धोकर हम लोग पहुँच जाएँगे।

सोमवार सुबह माँ, शुभ्रा, माधव और गौरव के साथ लौट आई। नये घर में सब खुश थे। सामने की ओर खुली जगह, ऊपर छत। सामने, अगल-बगल के मकानों में भी लोग रहने लगे थे।

***

भाग-6

शाम ढल रही थी। लेकिन साफ आसमान में कुछ पतंगें उड़ती-मँडराती दिखाई दे रही थीं। माधव के हाथ में डोर और तपन के हाथ हुचका था। पेंच लड़ाने के मूड में वह कभी नहीं रहे। इसलिए आज भी डोर खींचते हुए पतंग उतारने में व्यस्त थे। तपन में वह तेजी नहीं थी डोर लपेटने में। धूप कम हो रही थी और ठंड बढ़ रही थी। दो दिन पहले बीत गये संक्रांति त्यौहार की धूप अब भी बनी हुई थी। मुझे लगा, शायद माँ ने आवाज दी है। मैं नीचे चला गया।

पतंग उड़ाने में मेरी दिलचस्पी कभी नहीं रही। मैं गुल्ली-डंडा खेला करता था दोस्तों के साथ। स्कूल के दिनों में भी और कॉलेज में कुछ अधिक ही। बल्कि कॉलेज में क्रिकेट, हॉकी और फुटबाल जैसे खेलों से जुड़े मेरे सहपाठी भी गुल्ली-डंडा उसी प्यार और तल्लीनता से खेलते थे। गुल्ली-डंडा हो या होली-रंगपंचमी जैसे त्यौहार, मेरे सहपाठियों के समूह में तब भी रईस, इदरीस, कमाल, हफीज़ और युसूफ भी शामिल होते थे। मैं उनके यहाँ ईद पर कभी न भी जा पाऊँ पर वे दशहरा और दीपावली मिलने अवश्य आते। पतंग भी उसी उत्साह से उड़ाते थे सब। स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस और अन्य कई त्यौहारों पर भी हम सभी एक साथ शामिल रहते और वन्दे मातरम, जनगणमन और सारे जहाँ से अच्छा, 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' व 'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से' भी सस्वर गाते थे। तब की बात ही और थी।

अक्सर यही होता रहा है मेरे साथ। माधव पतंग उड़ाते और मैं खाली बैठा अकेला सोचा करता। स्कूल के अंतिम वर्ष से लेकर कॉलेज के दिनों तक भी। अलग ही दिन थे। घर में रहते हुए अपने अकेलेपन में जीते हुए कुछ और ही ढंग से तरोताजा। पुराने शहर से लेकर नये बस रहे शहर तक दोस्तों के साथ अपनी एक अलग ही दुनिया बना रहे थे हम तब। माँ-बाबूजी फुरसत में जब चाहे तब, हवेली वालों के यहाँ जाते ही रहे। तब ही एक दिन बाबूजी बोले 'अब हम माल रोड वाले, फैक्ट्री के बंगले में रहेंगे।' हाँ, बंगला ही तो था वो। अंग्रेजों के जमाने का। सामने बरामदा, लकड़ी की जालियों के बीच दरवाज़ा। बड़े-बड़े लकड़ी के लट्ठों पर कहीं लोहे की चद्दरें। सामने और बाजू की ढलवाँ छत पर कबेलू। दो बड़े हॉल। बरामदे की एक बाजू लंबा संकरा कमरा जिसे सब नाल

कहते थे। दूसरे बाजू एक बरामदा और उससे लगा हुआ एक और कमरा, जिसे रसोईघर बना दिया। इसके बगल में बड़ा सा मैदान, शौचालय, एक लम्बी दालान जैसी जगह जहाँ गायें बँधी रहती थीं। आम, जामफल, जामुन, इमली, बेर और नीम-बबूल के वृक्ष। अच्छा खासा छोटे से वन-प्रान्तर जैसा बगीचा। घर के सामने की ज़मीन पर भी बड़े बड़े वृक्ष। इस मैदान के आगे खेत और एक बाजू फैक्ट्री का उखड़ा-उजड़ा हुआ ढांचा खंडहर-सा। यहाँ हमें बसना था। नाग सरोवर कॉलोनी का नया घर छूट रहा था। मुझे कभी-कभी यह अनुभव होता कि वाकई हम सब विस्थापित हुए लोग हैं। शरणार्थी, हवेलीनुमा बँगला से नई कॉलोनी होते हुए अब एक और रियासतकालीन अवशेष में जा रहे हैं। किसी पर हमारा कोई अधिकार नहीं। यहाँ से पता नहीं कहाँ जाएंगे? बाबूजी ने यह भी तो नहीं बताया कि हमारे दादाजी कहाँ से आये थे। वे बसे भी तो रीवा रियासत में। देह वहीं त्यागी। दादी भी यहाँ से वहाँ होती रहीं और दूर राजूर में प्राण त्यागे। हवेलीनुमा-बँगला छूटने का दुख नहीं हुआ, वह नया घर छोड़ते समय हो रहा था। माँ बताती थीं कि दादाजी ने विरासत में एक मकान ही छोड़ा था इन्दौर में और वह बाबूजी ने जरूरत के समय बेच दिया। हवेलियों की विरासत में उन्हें कुछ नहीं मिला। मिला सिर्फ दगा। विश्वासघात। पर उन्होंने उनका हवेली वालों का साथ नहीं छोड़ा।

माँ और बाबूजी के संघर्ष और उनकी संलग्नताओं के साथ ही हवेली वालों के लगाव और उनके वैमनस्य के पहलुओं को लेकर मेरे भीतर एक नयी कहानी जन्म लेती रही है। उस कहानी में एक बहस चलती रहती है, बड़ी हवेली वाले विरुद्ध छोटी हवेली वाले विरुद्ध हम सब। लगता है एक परिवार कथा जो छोटे बाबा लिख रहे थे या अभी भी लिख रहे हों वह वंश ग्रंथ जब तक नहीं मिलता, तब तक मेरे सवालों के जवाब भी नहीं मिलेंगे। कहानी पूरी नहीं होगी, बहस आखिरी निष्कर्ष तक नहीं पहुँचेगी।

कुछ दिनों से मेरे मन में एक बात कहीं गहरे भीतर तक कुरेद रही है कि माधव को शायद कुछ तो मालूम है, तब ही तो वह मेरे सवाल करते समय खामोश रहे। फिर उन्होंने भी कभी नहीं बताया कि उस दिन इन्दौर क्यों गये थे? कहाँ गये थे? उस दिन से आज तक बाबूजी ने भी नहीं बताया। फिर सोचता हूँ कि हम सभी नये मकान, शिफ्टिंग और अन्य कामों में मशगूल रहे। इस बीच नानाजी का आना, फिर उनकी मृत्यु। छोटे बाबा के यहाँ शादी। शादी में नानाजी के बड़े भाई का आना । शायद पहली बार आये थे वे। मुझे याद नहीं आता कि उसके पहले कभी हम भाई बहिनों ने देखा हो उन्हें। या

शायद मैंने और माधव ने तब देखा हो, जब हम रायगढ़ गये थे माँ के साथ। माल रोड के इस मकान में भी कई मामा पहली बार मिले। एक-दो मामा छोटी हवेली में भी आये थे। ये सभी माँ के चचेरे या मौसेरे भाई थे।

माल रोड के मकान में रहते हुए साल बीतते रहे। मन में सवाल उठते रहे और मन में ही कुलबुलाते रहे। उबलते पानी से होती एक अजीब सी सनसनाहट की तरह ही मन अनेक विचारों की आहट सुनाता रहा। हमारे वजूद के लिए दिए गए अनैतिक तानों और फब्तियों ने घर में कोई बहस पैदा नहीं की। कई बार मन में यह विचार भी आता है कि मैं किसी तानाशाह के साम्राज्य में एक अल्पसंख्यक हूँ। इतना अकेलापन महसूस करता था। इसी सोच के चलते एक अलग ही रास्ते पर चल पड़ा था। मंदिर मार्ग पर पार्टी दफ्तर था और कोतवाली चौराहे पर भारतीय जलपान गृह। वहाँ अक्सर बैठकें होती थीं। कामरेड रामसिंह आज़ाद जलपान गृह के मालिक थे। पार्टी दफ्तर में और जलपान गृह में उनसे चर्चा होती थी। मैं बैठकों में भी मौजूद रहता और बहस में खुलकर भाग लेता था। अभिन्न को अच्छा लगता था, लेकिन वह वहाँ नहीं आता था। रईस अहमद, हफीज और शिवेन्द्र मेरे साथ होते थे। एक नया मित्र करतार सिंह आता था कभी-कभी। पहलवान के अखाड़े पर युवाओं की बैठकें होती थीं। यहाँ गोपू नहीं, अब विजय मेरा पीछा करता और हर घर में खबरें सुनाता रहता। पर, मैंने अब शिकायत करना और सुनना छोड़ दिया था।

इन दिनों यों तो कोई खास बात नहीं हुई थी। फिर भी कुछ ऐसा हुआ कि बाबूजी ने अपने भीतर छुपे हुए जानकारी के बक्से की कुंडी खोल दी। लेकिन, जितना जानना चाहता था मैं, उतना कुछ मिला नहीं। इतना अवश्य था कि बर्फ पिघलने लगी थी।

फैक्ट्री बंद होने के बाद ज़मीन खाली पड़ी थी। सरकार कब्जा न कर ले, यह सोचकर बाबूजी नई योजनाएँ बना रहे थे। माल रोड पर ही खेती-बाड़ी के लिए कुछ जमीन ली थी उन्होंने। शहर से कोई चार मील दूर थी वह ज़मीन। फैक्ट्री की ज़मीन पर कुछ नये उद्योग शुरू करने के लिए जानकारी जुटा रहे थे। लक्कड़ पीठा वालों से भी बात चल रही थी। बाबूजी का बाहर आना-जाना भी होता रहा। खंडवा, झाँसी, गुना, बीना और अशोक नगर से अभी लौटे ही थे। इस बारे में माँ से पूछा मैंने।

'हां, कुछ पारिवारिक काम से गए थे।'

'छोटे बाबा का ही कुछ काम होगा।'

मेरा अनुमान सही था। छोटे बाबा के लड़के और लड़कियों की शादी की बात चल रही थी। वहाँ इसी काम से गए थे। लौटने के बाद से ही बाबूजी गंभीर और उदास थे।

'क्या बात है?' माँ ने पूछा

'हर जगह एक सवाल। हम बताते छोटे साहब के विषय में और वहाँ सब सवाल करते हमारे और हमारे बाबूजी के बारे में। छोटे और बड़े साहब, दोनों ने वहाँ पत्र लिखे थे कि हम कौन हैं। हमने भी कह दिया कि रिश्ता हमारे नहीं, छोटे साहब के बच्चों का लेकर आए हैं।'

मैं सोच रहा था कि देखें अब भी कुछ बताते हैं या नहीं बाबूजी। पर कुछ नहीं हुआ। उन्हें माधव ने अपनी ट्रेनिंग की सूचना दी और सब उस तैयारी में जुट गये। एक साल की ट्रेनिंग। सबसे ज्यादा चिंतित माँ थीं। एक दिन माधव चले ही गये बाहर अपनी ट्रेनिंग के लिए।

मैं आकाश में छुपते और फिर प्रकट हो जाते तारों का खेल देख रहा था। भीतर की खटर-पटर सुनाई दे रही थी। क्या हो रहा है भीतर, यह जानने की इच्छा थी लेकिन मन उठने का नहीं था। बिल्कुल भी। फिर सोचा, शायद भंडारे में चूहे होंगे। फिर भी न उठने की इच्छा से खाट पर पड़ा हुआ आकाश ही देखता रहा। सुबह उठने पर सबसे पहले भंडारे में जाकर देखा। पर लगा नहीं रात वहाँ कोई उत्पात हुआ हो चूहों का। वापस अपने कामों में लग गया।

बाहर बैठक में माँ-बाबूजी बात कर रहे थे। माँ शायद पूछ रही थीं कि उस दिन क्या हुआ था आखिर खंडवा, अशोक नगर और झाँसी में। बाबूजी कुछ और ही बोल रहे थे। मैं पास पहुँचा तब भी वे बात करते रहे। मुझे अच्छा लगा। मैं भी वहाँ बैठ गया। पता नहीं किस बात की तारतम्य में बाबूजी ने कहा 'अब चार-पाँच साल बाद फिर उस बात को उठाने का क्या मतलब?'

माँ ने कहा-'हिसाब तो तब ही पूरा हो गया था। घर की दोनों शादियों में भी उन्होंने कुछ नहीं किया था।'

'हाँ भाई वही तो। जयप्रकाश की शादी से पहले ही दुकान-मकान बेच दिया था हमने। नयना की शादी में वही सब कुछ दे दिया जो जयप्रकाश को दहेज में मिला। तब ही तो जीजाजी बिगड़ गये थे नो पलेथन, नो पलेथन।'

'पलेथन?' मैं बीच में ही बोल पड़ा।

'हाँ। अगर नकद दे दिया तो फिर और कोई सामान-दहेज के लिए कह रहे थे कि नो पलेथन। ज्यादा नहीं देना है लड़के वालों को। तुम्हारे फूफाजी इसी ज्यादा को पलेथन कह रहे थे।' माँ ने समझाया।

'दोनों शादियों में दिया कुछ नहीं। हमने माँगा भी नहीं। फिर ग्वाड़ी के मकानों का पाई-पाई चुकता कर दिया। पूरा हिसाब दे दिया मय रसीदों के। अब कहते हैं छोटे साहब कि शादियों का कर्जा चुकाओ और ग्वाड़ी का किराया भी लौटा दो। और तो और मुनीम जी बता रहे थे कि जगह-जगह यह कह रहे हैं कि कॉलोनी के प्लॉट-मकान में भी उन्होंने पैसा दिया है।' बाबूजी चिढ़कर बोले।

'पर यह तो बताइये कि वहाँ क्या हुआ था आखिर?'

'एक तो यही कि हमने हिसाब-किताब में गड़बड़ की थी। फिर यह कि उन्होंने शादियों में, मकान बनाने में हमारी सहायता की। अब ये तो सही नहीं है न।'

'और दूसरी बात?'

'वही पुराना किस्सा। छोटे साहब की शादी में हमारे बाबूजी की उपस्थिति पर जो सवाल उठाये गये थे, आज भी उसका सच हमारे मुँह से सुनना चाह रहे थे कुछ लोग। कुछ पुराने बड़े-बूढ़े।'

'आपने क्या कहा?'

'हमने यही कहा कि छोटे साहब के लड़के-लड़कियों की शादियां तय करने से उस पुरानी बात का क्या सम्बन्ध। अब हम दादा साहब की तरह तैश में आकर उठ तो नहीं सकते थे। हम तो सम्बन्ध तय करने गये थे। आखिर लड़कियों की शादी में कहीं न कहीं समझौता तो करना पड़ता है। वही हमने किया। छोटे साहब ने जो तय किया था और वे लोग जो माँग रख रहे थे उसमें फर्क था। हमने दोनों के बीच का रास्ता अपनाया। ये जो

दे रहे थे उससे कुछ ज्यादा और वे जो माँग रहे थे उससे कुछ कम पर बात बन गई। अब छोटे साहब मान तो गये, पर इतना कहकर कि हमने उन्हें धोखा दिया है।'

'अब आप इनके पचड़े में मत पड़ा करो।'

'अरे ये सब ड्रामेबाज हैं। इनसे दूर रहने में ही भलाई है।' मैं फिर बीच में बोल पड़ा और मुझे आश्चर्य हुआ कि माँ और बाबूजी दोनों ही चुप रहे। नाराज़ नहीं हुए मुझ पर।

मैंने फिर पूछ ही लिया कि 'बाबा साहब की शादी में क्या हुआ था?' तब पहली बार उन्होंने एक सत्य मुझसे कहा और मैं सन्न रह गया।

बाबूजी ने कहा-'विजय ने तुमसे जो कुछ कहा था वह गलत नहीं है। लेकिन गोपू की अनर्गल बातों पर ध्यान मत दिया करो।'

'नहीं, वह बात नहीं है। असल में जब उसने कहा कि क्या पता साले मुसलमान की औलाद हैं। तब मुझे कुछ अच्छा नहीं लगा था। पर अगर मुसलमान हुए तो क्या? इन्सान तो हैं। और मुसलमान हैं तो इस परिवार में कैसे आये? सवाल तो उठेगा ही मन में।'

'अब तुम बात को इधर-उधर मत घुमाओ। कहा न कि गोपू की बातों पर ध्यान मत दिया करो।' माँ ने बीच में ही टोंक दिया।

'मैं बात को घुमा नहीं रहा हूँ माँ। मूल मुद्दे पर आ रहा हूँ। मैं सालों से कितने ही सवालों के जवाब ढूंढता रहा। आज भी कुछ नहीं मालूम। विजय की बात सच है अगर तो गोपू की बातें अनर्गल कैसे हैं। अनर्गल हैं तो फिर दोनों की बातों का सच क्या है? और बड़ी दादी की बात। कहाँ से आए तेरे पुरखे, तेरे माँ-बाप से पूछ। क्या है यह माँ? आखिर क्या रिश्ता है हमारा हवेली वालों से, बंगले वालों से?'

बाबूजी चुप थे। शायद सोच रहे थे कि बात कहाँ से शुरू करें। लेकिन तभी बाहर किसी की आवाज़ सुनकर माँ उठ गईं। कुछ देर के लिए कमरे में फिर खामोशी थी। बाबूजी शायद माँ की उपस्थिति में ही कुछ बताना चाहते हैं। मैंने सोचा। बाबूजी कुछ कह रहे थे, शायद अपने आप से, 'बहुत कुछ बर्दाश्त करना पड़ता है। किया है हमने भी।' माँ लौट आई थी। बाबूजी ने बोलना शुरू किया। पहले मुझसे वही सवाल। 'कहाँ से आए तुम्हारे पुरखे? यही कहा था न बड़ी काकी ने।'

'जी।'

'कुछ गलत नहीं कहा उन्होंने। हमारे पिताजी को दादा साहब ने गोद लिया था। बहुत पुरानी बात है।'

'तो क्या बूढ़ी अम्मा ही हमारे दादाजी की माँ हैं?'

'नहीं, वह दादा साहब की तीसरी पत्नी हैं। उनकी पहली पत्नी की कोई भी संतान जीवित नहीं रही। तब उन्होंने और दादा साहब ने एक बच्चा गोद लिया था। वही हमारे पिता थे।'

'आप जानते हैं उस परिवार के बारे में, जहाँ दादाजी का जन्म हुआ था।'

'हम उनसे मिले भी हैं। इन्दौर का परिवार है। दादा साहब ने ही बताया था कि इन्दौर का ब्राह्मण परिवार है।'

'फिर, गोपू क्यों अनाप-शनाप बोलता है। उसे कोई कुछ बोलता भी नहीं।'

'भाई, उसे जो बताया गया, वही वह बोलता है। गोद लेते समय छुटकन मामा और उनके पिता भी जीवित थे। उन्होंने ही बात फैलाई गलत ढंग से। उसी का हंगामा छोटे साहब की शादी में हुआ। उसके बाद ही दादा साहब ने बापूजी के सामने ही हमें सब बताया था।' बाबूजी अपने पिता को बापूजी कहते थे।

'मुझसे सहन नहीं होता यह सब।'

'सहना पड़ता है। अम्मा यही कहती थीं कि क्षमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात।' माँ ने कहा।

'माँ, बाबा साहब और दादी तो बड़े हैं। सिर्फ विजय छोटा है। उससे तो झगड़ा नहीं करता मैं।'

'ध्यान मत दो, फिजूल बातों पर।' बाबूजी ने कहा और उठ गए।

जो कुछ चल रहा था और जो कुछ जाना मैंने, वह सब शॉकिंग था। जब पूरी तरह जान गया कि हमारा परिवार एक दत्तक पुत्र का परिवार है। उसका मुझे कोई दुख नहीं था। तकलीफ इस बात से ज्यादा थी कि सब लोग जानते हैं यह, सिर्फ हम नहीं। यह सिर्फ शॉकिंग नहीं था, बल्कि एक टीस बन गया था।

पहले मैं सोचता था कि दादा साहब ने यह ज़हर घोला होगा। तभी तो ऐसी बातें बाबा साहब, दादी, गोपू और विजय तक पहुंचीं। दादा साहब से ही यह सार्वजनिक हुई होंगी और बाद में दादाजी भी जान गए होंगे। अब भी, सब कुछ जान लेने के बाद मेरा मन यह नहीं मान पाता कि दादा साहब ने स्वयं ही यह बात कह दी होगी। सब कुछ देख-सुन कर बाबूजी ने पुष्टि करना चाहा होगा। दादा साहब ने तभी यह बताया होगा।

हम कौन हैं, इस बात का जवाब मिलने के बाद भी कुछ और जिज्ञासा थी मन में। लेकिन हवेली वालों के प्रति प्यार और आदर का भाव समाप्त हो गया था। एक नफरत है बस। छोटे बाबा की लाल किताब, उसे पढ़ने और पाने की एक इच्छा थी तब कुछ मालूम नहीं था, तब भी एक अलगाव था। जब कुछ-कुछ मालूम हुआ तब एक अलग ही दूरी अनुभव होने लगी। कुछ लोगों का व्यवहार इस अनुभव को एक नफरत के साथ ही चोट पहुँचाने की तड़प में बदल रहा था। नहीं जानता था कि माधव इस सब को कितना जानते हैं? नहीं जानते हैं तो अब जानकर कैसे रिएक्ट करेंगे। शुभ्रा, तपन, नीरज और गौरव की क्या प्रतिक्रिया होगी। समझेंगे कितना, यह सवाल भी मन में उठता। यह सब माँ जानती थीं। बाबूजी ने बताया ही होगा। बाबूजी, बहुत पहले से जानते थे, फिर भी अब तक खामोश रहे। भविष्य में भी उनमें कोई बदलाव आएगा या नहीं, कहना मुश्किल था। पर, दत्तक होने का भाव! किसी एक के दत्तक होने से उसके समूचे परिवार का अस्तित्व व्यथित जीवन का पात्र बन जाए, यह मुझे स्वीकार नहीं था। हम कोई और हैं तो फिर क्यों न किसी और की ही तरह बाहर हो जाएँ। क्यों नहीं।

कैसे दिन रहे होंगे? दादाजी और अम्मा को क्या-क्या न सहना पड़ा होगा। वह क्या सोचते होंगे? मेरे मन में जो सवाल हैं, वे सवाल काका-बुआ के मन भी आए होंगे कभी। वे भी दादाजी से पूछते होंगे। उस परिवार के परिसर से बाहर आने के बाद भी कुछ तो था जो मुझे विचलित करता रहा।

इतिहास के पन्नों पर कितनी ही कहानियाँ पढ़ी थीं। उन पर अक्सर महमूद मास्टर साहब और शुक्ला जी से बातें करता था। दोनों बड़े प्यार से समझाते थे। यात्रा विवरण, इतिहास-कथाएँ और अनेक वंश ग्रंथों पर वे तर्क और तथ्यों से बात करते थे। छोटे बाबा ने सिर्फ उन इतिहासकारों के नाम ही याद रखे हैं। किसी तथ्य से, विचार और भावना से कोई सरोकार नहीं उनका। इसीलिए, हम सबसे प्रत्यक्ष संबंध होने के बावजूद, वे सब किसी काम, स्वार्थ या किसी मदद के लिए जुड़ाव दर्शाते थे, अन्यथा

नहीं। बाबूजी इस सबके लिए उन्हें हमेशा उपलब्ध रहे। यही कारण रहा होगा उस जुड़ाव का। संबंधों के दिखावे का। माँ के साथ तो और भी विश्वासघात हुए हैं। पर यह सब सिर्फ मैं सोचता था।

पुराने जमाने की वंश-परंपरा की बातें, आज भी घटित हो रही हैं और उन्हें झूठ के शब्द जाल में गूंथ कर महान बताया जा रहा है। सिर्फ हमारे घर में नहीं, और भी कई जगह होता होगा। रीति-रिवाज, रूढ़ियाँ, जात-पात और ऊँच-नीच को निष्ठा सहित मानता-पालता यह परिवार है, जहाँ मेरे दोस्तों को पसंद नहीं किया जाता। इसीलिए मैं यह मानने के लिए विवश हुआ कि वंश-परंपरा, उत्तराधिकार, वंश-वृद्धि और कुलीनता के पाखंडों से हवेलियों का पुराना नाता है। इसी के चलते हवेली के मालिक दादा साहब को गोद लेने के बावजूद अपने पुत्र में परायेपन का अहसास हुआ होगा। उनकी संगत भी सामंती थी। छोटे बाबा की किताब में भी सामंती ठसक को आदर के साथ याद किया गया है। दादा साहब में एक कसक रही होगी कि उन्होंने 'अपना वारिस-अपना खून' की ज़िद पाल ली। तीन विवाह किए। पूछना ही होगा बाबूजी से कभी। सोचता था और एक दिन वह अवसर आ ही गया।

दिसम्बर की ठंड के दिन थे। उन दिनों स्कूल-कॉलेज में दशहरा-दीवाली और क्रिसमस की छुट्टियाँ लम्बी अवधि की हुआ करती थीं। तीन सप्ताह का दीवाली और एक सप्ताह का क्रिसमस का अवकाश होता। बाबूजी भी उन दिनों घर पर ही रहते थे। दोपहर आँगन की धूप में निकलती और रात रजाइयों में दुबककर बीतती। गपशप होती। खेल होते। माँ-बाबूजी कैरम खेलते और हम भाई-बहिन तीन-दो-पाँच, ताश पत्ती का खेल। दो लोग खेलते सात-आठ। फुरसत में पुराने किस्से निकलते। किस्से शुरू होते और फिर मेरे सवाल भी। एक दिन, बाबूजी बता रहे थे कि दादा साहब ने अंग्रेजों और सिंधिया से संबंधों के चलते हुए बहुत सी जमीन-जायदाद बनाई थी। कुछ जमीन उन्हें इनाम-स्वरूप भी मिली। उन्होंने घाटी वाले अपने रिश्तेदारों की भी खूब मदद की। उनकी नौकरी लगवाई।

'दादा साहब के पिता ने भी खूब कमाया होगा। कुछ-कुछ पढ़ा है मैंने छोटे बाबा की किताब में।' मैंने भी अपनी टिप्पणी की।

'दादा साहब के बाप-दादा खानदानी रईस थे। बुंदेलखंड में बहुत जमीन-जायदाद है। पंडिताई करते थे, खेती बाड़ी थी। बड़े साहूकार थे। ब्याज पर भी रूपया देते थे।'

'फिर तो वसूली में भी कुछ जमीन हथिया ली होगी।'

'वहाँ का तो हमें नहीं मालूम।'

'पर यहाँ का तो मालूम होगा आपको। दादा साहब भी कर्ज देते थे। उन्होंने हथिया ली होगी जमीन।'

बाबूजी कुछ देर चुप रहे, तो माँ बोल पड़ीं-'अब ऐसी बातें नहीं बताई जाती न।'

'अब जो भी हो। पर बहुत जायदाद थी वहाँ। बब्बा जानकीप्रसाद की ही मिल्कियत थी वहाँ नुनसाई में। दादा साहब गोपालप्रसाद तब छोटे थे। जानकीप्रसाद चार भाई थे। सब बुन्देलखंड में ही रहे। बब्बा और दादा साहब के ऊपर अंग्रेज सरकार की बड़ी कृपा थी। बब्बा वहाँ भी और यहाँ भी, मालवा में नामी गिरामी शख्सियत रहे।

'यहाँ मालवा क्यों आ गये थे, जब वहाँ इतना सब कारोबार था।' मैंने पूछा।

'अब ज्यादा तो हमें नहीं मालूम। जितना कुछ सुना-समझा वह इतना ही है।'

'तो अब वहाँ कौन लोग हैं। वहाँ की जमीन-जायदाद का क्या हुआ।'

'दादा साहब तो यही बताते थे कि उनके पिता वहाँ से इन्दौर चले आये थे। डाक-तार महकमे के बड़े अफसर थे, मालवा सूबे में। नुनसाई में मकान, मंदिर और खेती-बाड़ी थी। कुटुंबी देखभाल करते थे। जाते रहे वहाँ। दादा साहब भी जाते थे। बब्बा ने सारी जायदाद दादा साहब के नाम लिख दी थी। कानूनी कागज़ात अब भी होंगे बड़े साहब के पास। छोटे के पास उसकी नकल हमने देखी है। अब क्या किया उसका इन लोगों ने पता नहीं। कुछ बताते नहीं हैं।'

'तो यहाँ भी कौन कम जायजाद है दोनों के पास।' माँ ने कहा।

'हाँ, महिदपुर, इन्दौर और उज्जैन में मकान, हवेलियाँ रही हैं। अब भी हैं। बड़े और छोटे के घरों से लगी पूरी ज़मीन मुखिया परिवार की ही थी। खेती भी थी। अब कॉलोनी बन गई। इन्हीं लोगों ने ध्यान नहीं दिया और सरकारी हो गया सब एक दिन।'

मुझे यह सुनने में मजा आ रहा था। बाबूजी का सुनाने का अन्दाज भी अनूठा था। ऐसा लग रहा था, जैसे कहानी सुन रहा हूँ। इसीलिए फिर पूछ लिया 'कब की बातें हैं यह सब?' बाबूजी ने बताया कि 'अब कोई सन-संवत तो पक्का मालूम नहीं। पर हाँ, सन 1800 के बाद के बरसों की बातें होंगी। सन 1838 में दादा साहब का जन्म हुआ था। तब बब्बा वहीं थे, बुंदेलखंड में। तो उसके बाद ही इधर आये होंगे। दादा साहब बाद में आये थे। बब्बा गदर के समय यहाँ थे। अब रिटायर कब हुए। यह तो याद नहीं। शायद गदर के बाद रिटायर हुए होंगे।'

'फिर उसके बाद?'

'उनके पिता को अंग्रेजों से पेन्शन मिलती थी और अंग्रेजों के कारण उन्हें पहले आगरा, फिर बम्बई पढ़ाई के लिए भेजा गया था। उन्होंने डॉक्टरी की परीक्षा पास की थी। इन्दौर और उज्जैन में डाक्टर रहे। उज्जैन से रिटायर हो गये।'

'दादा साहब और उनके पिता ब्रिटिश सरकार की नौकरी करते थे। इन्दौर और ग्वालियर के राजघराने से भी उनके अच्छे सम्बन्ध रहे। बूढ़ी अम्मा ने ऐसी ही बातें बताई थीं एक बार।'

'दादा साहब ने उन राज परिवारों के सदस्यों का भी इलाज किया था। हमने पहले भी बताया है कि उनके पास एक ताँगा था। वे ताँगे से आया-जाया करते थे। हमने भी उनका ताँगा चलाया है।'

'छोटे बाबा ने यह भी लिखा है कि बचपन में दादा साहब अपनी नानी के पास रहते थे।'

'हाँ सही है। बब्बा जानकीप्रसाद तब इन्दौर में थे। दादा साहब की नानी उन्हें पुरोहित बनाना चाहती थीं। जब बब्बा को मालूम हुआ तो उन्होंने इन्दौर बुलवा लिया था।'

'तो दादा साहब यहीं पढ़े फिर।'

'हाँ, पर बाद में आगरा चले गये और वहाँ से बंबई।'

'बाबूजी, छोटे बाबा ने लिखा है कि बब्बा ने दादा साहब को आशीर्वाद दिया था कि तुम्हारे और विवाह होंगे। ऐसा क्यों?

'अब इतना यह सब तो हमें नहीं मालूम। हाँ, पर यह बात सच है कि दादा साहब ने तीन शादियाँ की थीं। पहली शादी से हुई उनकी संतानें जिन्दा नहीं रहीं। जल्दी गुज़र गई। तब

तक बब्बा जानकी प्रसाद जीवित थे। तब दादा साहब भी इन्दौर आ गये थे। जब बब्बा इन्दौर से उज्जैन आये तब ही दादा साहब भी उज्जैन आ गये थे। ये सब गदर के बाद की बात है। उज्जैन में ही बब्बा का निधन हुआ। उन्होंने ही दादा साहब को वंश चलाने के लिए पुनः विवाह के लिए भी कहा था। उनकी मृत्यु के एकाध बरस बाद दादा साहब ने दूसरी शादी की। लेकिन उनसे दादा साहब की पाँच संतानें हुई। पर कुंभ तीर्थ-यात्रा के दौरान या उसके बाद कभी उनकी दूसरी पत्नी व पाँचों संतानें भी जीवित नहीं रहीं। उसके बाद दादा साहब ने तीसरी शादी की।'

'बाबूजी, मुझे सारी बातें रहस्यमय लग रही हैं। बूढ़ी अम्मा कुछ कहती हैं। आप कुछ कह रहे हैं और छोटे बाबा कुछ और ही लिख चुके हैं। आखिर सत्य क्या है?'

'भाई, अब हमने जो सुना है वही बता रहे हैं। तुम्हें जो मानना है वह मानो। अब इससे हमें क्या लेना देना।'

'तो दादा साहब ने हमारे दादाजी को गोद कब लिया।'

'उन्हें गोद तो अपने दूसरे विवाह के बाद ही लिया था। तब उनकी पहली पत्नी ज़िन्दा थी और हमारे बापूजी को उन्होंने ही पाला-बड़ा किया। हाँ, हमें यह मालूम है कि दादा साहब की तीसरी पत्नी से बाबूजी सिर्फ तीन बरस छोटे थे और उनकी शादी में वे शायद 9 या 10 बरस के रहे होंगे।'

बाबूजी ने बस उस दिन इतना ही बताया और उठ गये। मेरे मन में अब भी बहुत सवाल थे। सोचते रहने के सिवा और क्या कर सकता था मैं। सोचते समय हर बार महमूद मास्टर साहब की याद आती है, मतलब यह कि उनकी बातें याद आती हैं। उनकी छोटी से छोटी बात में हमेशा बड़ा-सा और गहरा अर्थ छिपा होता है। आज भी, जब कभी मिलते हैं तो बड़े प्यार से मिलते हैं।

मास्टर साहब ने एक बार कहा था कि 'हर छोटी से छोटी भूल या गलती को भी याद रखना चाहिये। हर छोटी-सी याद को भी। अगर यादें हैं तो कुछ करने की ख्वाहिश जरूर होगी। नहीं तो कदम-कदम पर भूल करते जाएँगे। वह, यह भी कहते हैं कि चलते चलो। आगे, पीछे नहीं। पीछे जो छूट गया उस पर सोचो और आगे जो मिलता है उसे देखो। सिर्फ नीचे नहीं, यह सोचकर कि कहीं ठोकर न लग जाए। कोई बात नहीं, गिरो तो फिर उठो और चलो। रूको और देखो, समझो और बढ़ो। ऊपर देखो, सिर्फ आकाश नहीं,

कंगूरे, मीनारें, गुंबद, टिमटिमाते तारे और घटता-बढ़ता चन्द्रमा। तब ही तो जानोगे, खोजोगे और पाओगे।' एक बार ऐसी ही किसी बात को सुनकर शिवेन्द्र ने कहा था - 'सर तो कविता करते हैं, एब्सर्ड कविता।' अभिन्न हँस पड़ा था। मैं ठिठका था, पर मास्टर साहब ने चलते-चलते कहा-'शिवेन्द्र बताओ तो अभिन्न क्यों हँसा।'

'सर, आपकी बातें सुनकर।' उसने जवाब दिया।

'मेरी बात पर हँसा या तुम्हारी बात सुनकर, एब्सर्ड।'

'शायद दोनों पर।' शिवेन्द्र ने कहा

'नहीं, शिवेन्द्र तुरन्त जो कुछ कहोगे वह त्वरित प्रतिक्रिया है, बस। सोचो, उस हँसी के पीछे क्या है? तब और ही अर्थ खुलेगा। पर सोचो तो।' कुछ देर चलकर वे रुके। हम चलते-चलते नज़रबाग तक आ गये थे। वह बोले, 'चलो कुछ देर बैठते हैं वहाँ।' एक बैंच पर हम तीनों बैठ गये। मास्टर साहब टहलते रहे। फिर बोले - 'मेरे नन्हें दोस्तों, जीवन में 'एब्सर्ड' तब तक ही है कोई बात या वस्तु, जब तक उसे सिर्फ सुनते या देखते हैं। लेकिन जब हम उस पर सोचते हैं, तब कितनी ही खिड़कियाँ खुल जाती हैं और कितने ही अर्थ उस वस्तु या बात की पहचान से हम रूबरू होते हैं।'

मास्टर साहब की बातों ने मुझे बहुत अधिक प्रभावित किया और तब से मैं और अधिक जानने के लिए व्यग्र होता रहा। माल रोड पर घूमते हुए, फैक्ट्री वाले मकान से स्कूल या कॉलेज जाते हुए अक्सर मिलों की चिमनियों ने मुझसे बहुत कुछ कहा था। एक चिमनी आज भी बहुत कुछ कहती है। बात तब की है जब मैं गोला मंडी के स्कूल में पढ़ता था। स्काउट-दल के सदस्यों की ड्यूटी सिंहस्थ मेला में लगाई गई थी। सीनियर दल के स्काउट नदी-घाटों पर ड्यूटी करते थे। जूनियर मेला-प्रदर्शनी में ड्यूटी देते थे। सुबह आठ से बारह, दोपहर बारह से तीन, तीन से छह और शाम छह से रात दस बजे तक ड्यूटी रहती। इस तरह चार शिफ्ट में आठ से दस स्काउट्स की टीमें बनी हुई थीं। तब छोटी हवेली वाले मकान में हम लोग रहते थे। मैं मेला-प्रदर्शनी में ड्यूटी देने वाली टीम में शामिल था। ड्यूटी जब सुबह या दोपहर की होती, तब माल रोड से प्रदर्शनी-स्थल पर जाते समय और आते समय भी रास्ते से एक ओर मिल की चिमनी दिखाई देती। आगे चलकर कुछ दूर एक दरगाह थी। दोनों आज भी अपनी जगह मौजूद हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि मिल अब बन्द हो गयी है। दरगाह अब भी है। नैरोगेज रेल थी जो अब

बन्द हो गई है। आसपास मकानों, दुकानों और दफ्तरों के बीच घिरी हुई चिमनी आज भी शान से खड़ी है। कुछ लोगों को लगता है कि यह विकास की इबारत को मुँह चिढ़ाता एक चिन्ह है जिसे अब मिटा देना चाहिये। मुझे लगता है कि यह शहर की पुरातनता का एक प्रमाण है। एक किस्म का हैरिटेज। एक पहचान। संग्रहणीय और रक्षणीय। इसे बनाये रखना हमारी सभ्यता को प्रवाहमान करेगा। इसके आसपास भी, इसके चारों ओर लौहे की श्रृंखला बनाना चाहिये। जंजीरों की श्रृंखला। पेड़-पौधे, एक छोटा सा बगीचा, जलियाँवाला बाग की तरह। इससे जुड़ा इतिहास ही तो बताता है कि बीमार या मिटते उद्योगों वाला यह शहर भी कभी उद्योगों से आबाद था। ये चिमनी कभी धुआँ छोड़ती थी। सायरन बजता था और हज़ारों श्रमिक भीतर जाते थे और बाहर आते थे। करघे चलते थे और कपड़ा बनता था। सामने बनी फैक्ट्री और आसपास की कितने ही कॉटन प्रेस से बनी हुई रुई की गांठें बाहर आकर मिलों तक पहुँचती थीं और भी दूर-सुदूर शहरों तक भी। कितने ही जीवन, जिन्दा, जिन्दादिल और बीमार, कभी-कभी असमय कोई बीमारी पालकर बाहर निकले। बिना किसी एलबम या दीवार पर चिपके या टँगे हुए अतीत में गुम हो गये। कुछ नाम सहित। कुछ बेनाम। इस चिमनी को, इस जैसी शहर की और भी चिमनियों को जो अब भी हैं, उन्हें ही हज़ारों मज़दूरों और उनके परिवारों की याद में एक स्मारक का रूप देने में क्या हर्ज है। मज़दूर की आजीविका का वह साधन, वे मिलें उनकी और अब शेष रह गई ये निशानियाँ एक गौरवपूर्ण स्मारक क्यों नहीं हो सकतीं। राजमहलों, हवेलियों और किलों के बचे हुए खण्डहर यदि स्मारक बन सकते हैं तो इन निशानियों को, तब की मिलों में काम आने वाले कल-पुर्जो को भी वैसे ही प्रदर्शित करना चाहिये, जैसे राजसी लिबासों, सिक्कों, आभूषणों और हथियारों को किया जाता है। रेल के भाप इंजनों को किया जाता है। श्रम के सम्मान और श्रमिकों के सम्मान के लिए इतना करना काफी तो नहीं, शुरुआती कदम जरूर होगा।

महमूद मास्टर साहब की बातें जब भी याद करता हूँ, हमेशा मेरी यादों की कथा इसी तरह बढ़ती रहती है। इन्हीं यादों में रेल के भाप-इंजन भी हैं। नैरोगेज लाइन बन्द हो गई। पटरियाँ उखड़ गईं। सड़क चौड़ी हो गई। पटरियों के किनारे-किनारे कुछ अलग हटकर अधिकांश जिनिंग फैक्ट्रियां भी उजड़ गईं। लेकिन उनका सामान भी संरक्षित रखने लायक नहीं माना गया। न कहीं और उनका उपयोग हुआ, न ही उन्हें रखा गया।

कौड़ियों के भाव बिक गया हो। इस अर्थ में चिमनियाँ खुशकिस्मत हैं कि अब भी खड़ी हुई हैं। शायद इसलिए कि मुझ जैसे लोगों को यादों की जुगाली करने का अवसर मिल सके।

जब जिनिंग फैक्ट्री चलती थी, हम बच्चे अक्सर दूर से देखते सुनते थे आवाजें और गठानों का तुलना और रवाना होना अगले पड़ाव के लिए। जब तक सामान रखा रहा वहाँ, फैक्ट्री बन्द होने के बाद, हम सब सीढ़ियाँ उतरकर एक तहखाने जैसे कमरे में चले जाते थे। वहाँ बड़ा काला लोहे का बायलर रखा रहता था। उसके आसपास बैठते। ठंडा फर्श और कमरे का वातावरण। अद्भुत सुख और सुकून का अनुभव होता था। फिर वहाँ समूह-गीत गाते और अपनी गूँजती आवाजों पर खुश होते। अब कहाँ वह सब। बस आगे चलकर खेड़ापति हनुमान मंदिर और उससे आगे दरगाह है। अब भी आबाद। यही क्या कम है।

आज भी जब मन होता है, इस सड़क पर दरगाह और चिमनी के पास से गुजरता हूँ तो मन में एक लहर-सी उठती है। तब भी गुजरता था। उस दिन भी, जब बाबूजी ने दादा साहब की तीसरी शादी की बात बतायी थी और फिर एक लम्बी खामोशी में बहुत दिन गुज़र गये।

रात को जब नींद नहीं आती, चुपचाप उठकर बाहर निकल जाता। उस दिन के बाद से अक्सर यही होता रहता था। रात को जब भी सपना आता, लगता जैसे मैं एक गहरी सुरंग में उतर रहा हूँ। सुरंग जहाँ समाप्त होती है, वहाँ फिर एक बड़ा-सा कमरा है। कमरे के बाहर से आवाजें सुनाई देती है, जैसे एक भीड़ नारा लगाते हुए जा रही है। तभी कमरे में तेज़ प्रकाश फैल जाता है। कुछ चेहरे दिखाई देते हैं। धीरे-धीरे उनके धड़ से चेहरा गायब हो जाता है और हरेक धड़ के ऊपर एक नयी शक्लें दिखाई देती हैं। फिर, हर शक्ल एक किताब में बदलने लगती है। किताबों के बीच एक आकृति उभरती है, 'अरे, ये तो दादा साहब हैं।' वह कहते हैं 'तुम्हें किताब चाहिये थी, तो लो यह किताब। लाल, पीली, नीली या हरी कौन सी किताब पढ़ना है। मैं लाल किताब की ओर बढ़ता हूँ उस पर लिखा था 'लाल किताब'। उसे मैं पकड़ना चाहता हूँ तो दूसरी किताब हाथ आती है लिखा था 'दत्तक कथा' तब ही मेरी नींद खुल जाती है और मैं आँखें मलता हुआ बुदबुदाता हूँ 'दत्तक कथा'।

सपने आज भी आते हैं, लेकिन तब और आज के सपनों में एक फर्क आ गया है। आजकल अक्सर सपने में गुज़र गये लोग ही दिखाई देते हैं। वे लोग भी जिन्हें आज तक देखा नहीं या वे जिनसे कभी कोई परिचय नहीं हुआ, वे सपनों में अपनत्व जताते हुए मिलते हैं। उन मृत आत्माओं के इस तरह सपनों में मिलने के पीछे कोई कारण अवश्य है, ऐसा कई शुभचिन्तकों का ख्याल है। पहले तो मैं कुछ नहीं सोचता था इस बारे में, लेकिन जब एक रात सपने में कवि पुष्प जी और मेघराज जी मिले, तब मैं सपने में ही नहीं, बल्कि नींद से जागने पर भी अचंभित हुआ। परेशान भी रहा कुछ दिनों तक। कारण वे दोनों मृतात्माएँ भी मुझे एक शोक-सभा में मिलीं। जिनकी शोकसभा में मैं उनसे मिल रहा था उन्हें वे दोनों कभी मिले ही नहीं थे। अपरिचित रहे उनके जीवन भर। कोई संगति नहीं बिठा पाता हूँ मैं इसकी। इसे संयोग कहूँ या दुर्योग मानूँ। जब इस सपने के विषय में विनय को बताया, तब उसने कहा- 'देखो, दो बातें मुझे प्रतीत होती हैं। एक, तुम इन दोनों महानुभावों से बहुत प्यार करते थे तो वे बार-बार आते हैं तुम्हारे सपने में। दो, वे आगाह करना चाह रहे हैं तुम्हें किसी आसन्न संकट से। शोक-सभा में मिलने का शायद यही अर्थ है।'

मैं कुछ नहीं बोला, लेकिन निर्मला बोली- 'भाई साहब, आजकल ये अपने बचपन की यादों में खोये रहते हैं। वंश-ग्रंथ, दादाजी और दत्तक-कथा की घटनाएँ इन्हें हमेशा घेरे रहती हैं। अब जो होना था, वह हो गया। उसे हम बदल तो नहीं सकते।'

'नहीं, नहीं ऐसा मत सोचो निर्मला। जो हुआ, उसे हम बदल नहीं सकते, पर उसके प्रभावों से बचकर भी हम कहीं नहीं जा पाते। ऐसा भी होता है। ज़रूरी नहीं कि हर एक के साथ हो। लेकिन संवेदनशील लोग इसके प्रभाव की जकड़ में बने रहते हैं। आखिर प्रभास ने बचपन से आज तक बहुत कुछ देखा होगा, असामान्य-सा, जो उसे अक्सर असहज कर जाता है। अब कह लेने से ही तो हल्कापन महसूस होगा। और आपसे शेयर न करे अपनी बात, यह कैसे हो सकता है।' विनय ने प्रतिवाद करते हुए अपनी बात कही।

कुछ क्षण हम तीनों खामोश रहे। इस बीच निर्मला चाय बनाने के लिए भीतर चली गई। विनय ने मुझसे पूछा कि 'उसने ठीक कहा न?'

मुझे उसकी बात सही लग रही थी, लेकिन मैं तब भी कुछ और सोच रहा था। इसलिए 'हूँ' कहकर ही रुक गया। कुछ देर ठहरकर विनय चला गया। मैंने चाय की प्यालियाँ ट्रे में रखी और भीतर रखने चला गया। फिर, अपने कमरे में जाकर लेट गया। सामने उजालदान में बाबूजी की फोटो रखी हुई है, उसे देखता रहा। पुष्प जी और मेघराज जी फिर याद आये। पुष्प जी की यादें भी ठीक उसी तरह अविस्मरणीय हैं जितनी घटना प्रधान बचपन की बातें हैं। पिता में अक्सर उनकी छवि देखता था या कहूँ उनमें पिता की छवि। लेकिन मेघराज जी में बड़े भाई वाला भाव कभी नहीं लगा। हालांकि वह अपने को बड़ा भाई, एक परिवार और एक सोच जैसा मानते थे। उनकी मृत्यु से पूर्व के कुछ बरस हमारे सम्बन्धों में एक खिंचाव आ गया था। इसीलिए उनका सपने में आना मुझे असहज कर गया।

मैं सोच रहा था उस दिन के बारे में जब बाबूजी ने पिछली बातों को दोहराते हुए दादा साहब, दादाजी और दत्तक कथा की बातें बताना फिर शुरू की थीं। कभी-कभी यह विचार भी मन में आता कि मैंने शायद एक गलती की है। मुझे तब ही छोटे बाबा से अपने सवाल पूछने थे। दादा साहब और बूढ़ी अम्मा के रिश्तों में कोई खिंचाव था क्या? मैंने साहस नहीं किया। मेरी कमज़ोरी, मेरा डर या छोटे बाबा के प्रति कुछ अधिक ही आदर का भाव। अपने आप पर ही क्रोध आता है। गोपू की बदतमीजियों पर भी मुझे बड़े और छोटे बाबा से बात करना चाहिए थी। कुछ तो होता। बाबूजी अपनी बात पूरी किये बिना ही उठ जाते थे अक्सर। बूढ़ी अम्मा की शादी की बात से आगे वे कुछ नहीं बोले। बूढ़ी अम्मा से इससे ज्यादा की उम्मीद नहीं की थी मैंने। फिर भी वह काफी कुछ बोल जाती थीं किसी धुन में। लेकिन बाबा साहब इस विषय पर सदा मौन रहे। आज सोचता हूँ तो लगता है बड़े चतुर चालाक थे दोनों भाई। बड़े बाबा पाखंडी और हेकड़ी से भरे हुए और छोटे बाबा प्यार और अपनत्व का आडम्बर करते रहे जीवन भर। सब कुछ जानते हुए भी माँ-बाबूजी का उनके प्रति समर्पित रहना मेरे लिए हमेशा एक अबूझ पहेली बना रहा।

***

भाग-7

चैत्र कृष्ण पक्ष का कोई दिन था। हिन्दू वर्षारंभ में कुछ दिन शेष थे। सन अवश्य बदल गया था। ठीक से याद है मुझे सन 1966 ही था। मार्च का महीना था। मैं आँगन में बैठ कर अखबार पढ़ रहा था। माँ ने आवाज़ दी। भीतर झाँका, दिखा नहीं। भीतर जाकर देखा, रसोईघर में भी नहीं थीं। वह बैठक में थीं। पास ही श्याम बैठा था।

'क्या कर रहे थे?' माँ ने पूछा।

'अखबार पढ़ रहा था।'

'इतने मशगूल थे कि बाहर की आवाज़ सुनाई नहीं दी।'

'हाँ, नहीं सुनाई दी। बोलो क्या बात है? पर इसीलिए कहता हूँ कि कॉल बेल लगवा लो।'

'कुछ कमाने-धमाने लगोगे, तब लगवा लेंगे।'

'यह तो बाद की बात है। अब बोलो भी क्या बात है?'

'वह तो हमने खिड़की से देख लिया था श्याम को आते हुए तो खोल दिया दरवाज़ा।'

'मैं देख लेता या सुन लेता तो मैं खोल देता। अच्छा हुआ कि आपने देख लिया। आप नहाने गई थीं। मैंने रसोई घर की भीतर वाली खिड़की बंद की और आँगन में चला गया। पर बात यह तो नहीं है। बात क्या है, वह बताओ। और श्री श्यामलाल जी किसलिए पधारे हैं?'

'बाबा साहब याद कर रहे हैं तुम्हें। श्याम बुलाने आया है।'

'ठीक है, मिल लूँगा मैं बाबा साहब से।'

'अभी चले जाओ प्रभास। आज छुट्टी हैं बाबा साहब घर पर ही हैं।'

'शायद इसीलिए बुलाया है। कह रहे थे कि बहुत ज़रूरी काम है। साथ लेकर आना, यह भी कहा है।' श्याम ने कहा।

'ठीक है भाई। आ जाऊँगा। अभी तो नहाने जा रहा हूँ। तुम जाओ।'

श्याम चला गया। मैं सोच रहा था कि मुझसे क्या काम है बाबा साहब को। अजब-गजब लोग हैं। माँ से पूछा मैंने।

'होगा कोई काम।' माँ ने कहा।

'पर इतना ज़रूरी कि तुरंत बुलाया है। साथ लेकर आना।'

'मई में कस्तूरी की शादी है। शायद इस बारे में कोई बात करनी हो।'

'शादी के बारे में, और मुझसे?'

'क्यों क्या हुआ इसमें?'

'माँ, मैं इतना बड़ा कब से हो गया कि शादी के बारे में कोई ज़रूरी बात वह मुझसे करेंगे। श्याम भी मेरी उम्र का है। उससे करवा लें। नहीं, भानु भैया और उनके लड़के ही करेंगे सब।'

'होगी ऐसी ही कोई बात, जो तुम्हारे ही बस की हो। जाओगे, तभी तो कुछ मालूम होगा न। कुछ कामों में तुम्हारा भरोसा भी करते हैं वह।'

'भरोसा। मुझ पर। क्या बात कही माँ। ऐसा था तो फिर वह वंश-ग्रंथ पढ़ने को क्यों नहीं दिया अब तक, हम में से किसी को भी।'

'लिखा ही नहीं होगा पूरा।'

'माँ, भरोसा उन्हें किसी पर नहीं है। बाबूजी पर भी नहीं।'

'उन पर तो है। शादी तय करने वही गए थे।'

'और लड़के वालों की माँग मान लेने की बात पर बाबा साहब ने ही ऐतराज किया था। पीठ पीछे भी ये लोग क्या कहते और करते हैं, मालूम नहीं आपको ?'

'पिछली बातें मत उठाओ अभी। नहाने जाओ और आज ही जाना है, भूलना मत।'

नहाने के बाद तैयार होकर माँ के पास गया ताकि बता दूँ, मैं जा रहा हूँ। रसोईघर के दरवाजे पर पहुँचा तो देखा, माँ पाटले पर बैठी। पाँव सहला रही हैं।

'क्या हुआ?' मैंने पूछा।

'कुछ खास नहीं। बरतन स्टैंड के पाये से पैर टकरा गया। कुछ देर में ठीक हो जाएगा। स्टैंड बीच में रखा है, इससे रास्ता संकरा हो गया है उस तरफ जाने के लिए।'

'बाबूजी से कहती क्यों नहीं कि आँगन से लगे कमरे में रसोईघर शिफ्ट कर लें। इस लम्बे बोगदे से कमरे को रसोईघर कैसे कह सकते हैं।'

'हाँ, भैया कहेंगे उनसे आज ही। इस नाल में गुजारा कब तक करेंगे। वह हाँ कहें, तब तो सामान वहाँ जाएगा।'

नाल! पता नहीं, इस लंबे, सकरे कमरे को नाल क्यों कहते हैं। लगभग तीस फीट लम्बा और पाँच या छः फीट चौड़ा कमरा था, लम्बी सुरंग-सा। सड़क से लगा हुआ। बरामदा कह सकते हैं उसे। सड़क की ओर वाली दीवार में दो खिड़कियाँ थीं। घर के भीतर की ओर भी दो खिड़कियाँ और दो दरवाजे थे। एक दरवाजा बाहर की ओर बैठक वाले बरामदे में खुलता। नाल के ठीक बीच में एक लकड़ी का स्टैंड रखा हुआ था। एक तरह से पार्टीशन था वह कमरे का। एक कमरे में दो कमरे। एक खिड़की हॉल में खुलती थी और दूसरी पीछे वाले कमरे में। नाल के दूसरे हिस्से में, दरवाज़े से लगा एक चबूतरा था। दो फीट ऊँचा। यह एक छोटा सा बाथरूम था। वहीं जाते समय स्टैंड के पाये से माँ को ठोकर लगी थी।

हम लोग जब तक इस मकान में रहे, बगल वाली सड़क के किनारे उज्जैन-आगर नैरोगेज रेल की पटरी बिछी हुई थी। जब ट्रेन गुजरती, तब कंपन महसूस होता था। हालांकि ट्रेन यहाँ रेंगती हुई चलती थी। छोटे बाबा के मकान में भी एक ऐसी ही लम्बी नाल थी। लम्बाई में इससे बड़ी और चौड़ाई में लगभग बराबर। नाल खत्म होने पर बाथरूम, उससे लगा हुआ एक कमरा और वहीं से बाहर बड़ी हवेली जाने का रास्ता खुलता था। एक दरवाज़ा बगल में जो बाबा साहब के हॉल में खुलता। दोनों घरों में ये नाल ज्यादा उपयोग में नहीं आती थी। भंडार घर के तरह इस्तेमाल होती थीं। फैक्ट्री वाले मकान में हम लोगों के पहुँचने के बाद ही नाल का उपयोग शुरू हुआ। पर, मुझे माँ का वहाँ काम करना अच्छा नहीं लगता था। इसीलिए मैंने तय कर लिया था कि आज ही बाबूजी से बात करूँगा इस विषय में। यही सब सोचते हुए मैंने माँ से कहा- 'मैं बाबा साहब से मिलकर आता हूँ।'

'सुनो प्रभास, अगर उन्हें बाज़ार से कुछ सामान मँगवाना हो तो मना मत करना, ला देना।' माँ ने कहा।

'ठीक है, ला दूँगा। वैसे लगता नहीं कुछ मँगवाना होगा। इतना भरोसा नहीं है उन्हें, हममें से किसी पर। कोई और ही बात होगी।'

'चलो, अब जाओ।'

मैं रवाना हुआ। रास्ते भर सोचता रहा कि आखिर मुझसे क्या काम होगा। उनके घर पहुँचा, तब वे बरामदे में चहलकदमी कर रहे थे। मेरे प्रणाम के जवाब में बोले- 'तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था। आओ। मैं उनके पीछे-पीछे हॉल में पहुँचा। दीवान पर कुछ कागज़ रखे थे। एक-दो किताबें, कुछ विवाह-पत्रिकाएँ भी थीं। मैं पास ही एक कुर्सी खींचकर बैठ गया। वे दीवान पर पाँव पसारकर बैठ गये। फिर बोले 'इतनी देर कहाँ लगाई, कब से रास्ता देख रहा हूँ। श्याम के साथ आने के लिए ही बोला था मैंने।'

'कुछ नहीं। माँ को पैर में चोट लग गई। स्टैंड से ठोकर लगी थी। इसलिए देर हुई। श्याम जब आया, मैं नहा रहा था। आप बताएँ, क्या करना है?'

'हाँ, मई में कस्तूरी की शादी है। भैरवी, सुन्दर और रमेश की शादी के समय तो तुम छोटे थे, इसलिए तुमसे मदद नहीं ले पाये। अब पहला काम तो यह है। शादी का निमंत्रण-पत्र तुम्हें तैयार करना है। दूसरा, एक अभिनन्दन-पत्र लिखना है। वह बारातियों के स्वागत के समय पढ़ा जाएगा। अभिनन्दन-पत्र में घराती-बारातियों का स्वागत करेंगे। इस स्वागत-गीत में हमारी सामाजिक परम्परा, रीति रिवाज़ और हमारे पुरखों का गुणगान होना चाहिए। इसी के साथ हम जहाँ रह रहे हैं और जहाँ के मूल निवासी रहे हैं हमारे पूर्वज, उन स्थानों का भी परिचय उसमें होना चाहिये। माने बुन्देलखंड, ब्राह्मण-समाज और मालवा का परिचय देते हुए पुरखों का गुणगान बहुत आवश्यक है प्रभास।' बाबा साहब ने इतना सब ऐसे बोल दिया, मानों कहीं भाषण दे रहे हैं।

'बाबा साहब, लिख तो दूँगा मैं। लेकिन इतनी सब जानकारी देना क्या ज़रूरी है? बहुत लम्बा हो जाएगा।'

'तो तुम क्या सोच रहे हो, कविराज। हम भी सुनें।'

'मेरे विचार से दूल्हे के माता-पिता, भाई-बहिन और दुल्हन के माता-पिता, भाई बहिन, इतना उल्लेख ही पर्याप्त रहेगा।'

'नहीं-नहीं ऐसे नहीं चलेगा। हमारे बुन्देलखंड की शान का बखान तो होना ही चाहिये। फिर हमारे बब्बा और दादा साहब की कृपा से ही ये परिवार फल-फूल रहा है। इनका गुणगान भी जरूरी है। तुम जानो यह कि कैसे करना है।'

'निमंत्रण-पत्र कैसा चाहते हैं आप? वह भी बता दीजिए।' मैंने विषय बदलने की गरज से कहा।

'हाँ, निमंत्रण-पत्र में अधिक नहीं तो बब्बा और दादा साहब का भी उल्लेख हो। नीचे दर्शनाभिलाषियों में मधुवन वाले हमारे भतीजों और सुन्दर, रमेश, महेश, सुरेश, श्याम व विजय के नाम होंगे। विनीत में हमारा और तुम्हारे बड़े बाबा साहब का नाम। बस।'

'ठीक है बाबा साहब। मैं कोशिश करूंगा कि आपकी इच्छानुसार हो जाए यह सब। कोई और बात?'

'हाँ भाई परिवार के बड़े-बूढ़ों का नाम और हमारे बुन्देलखंड के बारे में भी बताना है अभी। वे उठे और भीतर गये। शायद ऊपर गये होंगे, मैंने लकड़ी की सीढ़ियों पर हो रही धम-धम की आवाज़ से अनुमान लगाया। वे वापस आये, तब तक के लिए मैंने पास ही तिपाई पर रखे निमंत्रण-पत्र उठा लिये। एक-एक कर देखता रहा। सुन्दर, रमेश और भैरवी की शादी के निमंत्रण-पत्र थे उनमें। बड़े बाबा के दो बड़े बेटों और चारों बेटियों की भी विवाह-पत्रिकाएँ थीं। उनमें ऐसे नाम भरे हुए थे, जैसे किसी ग्रंथ में पुस्तक-सूची में रहते हैं। ऊब कर मैंने वे पत्रिकाएँ तिपाई पर रख दीं। बाबा साहब एक मोटी लाल डायरी जैसी किताब लिये हुए थे। वे फिर दीवान पर पसर गये। पास ही फैले कागज़ों में से एक बड़ा कागज़ मुझे देते हुए बोले 'तुम्हारी सहायता के लिए नाम वगैरह इसमें लिखते जाना।' मैंने कागज़ उनके हाथ से लेकर पास ही रखी एक पेंसिल उठा ली और उनसे पूछा 'यह कोई किताब है?' जबकि मैं समझ गया था कि यह वह 'वंश-ग्रंथ' होगा, जो वे लिख रहे हैं।

उन्होंने कहा-'हम अपने कुटुम्ब की जानकारी देते हुए किताब लिख रहे हैं, वही है। तुमने भी तो पढ़ा है न इसे।'

'हाँ, पर ज्यादा नहीं पढ़ पाया था। कुछ पन्ने ही पढ़े थे और आपने पीछे से आकर किताब छीन ली थी।'

'तुम चोरी-छिपे पढ़ रहे थे। इसलिए। अब उस बात को छोड़ो और हमारी बात ध्यान से सुनो।' वे किताब के पन्ने पलटते जा रहे थे। फिर रुकते और बोलने लगते। शायद उसी में से पढ़कर बता रहे थे।

'हमारे पुरखे बुंदेलखंड के मौजा रोरा में रहते थे। हमारे पिताजी दादा साहब बताते थे कि मौजा रोरा के गाँव नुनसाई के रहने वाले थे पंडित मर्यादा महाराज। उनके पुत्र थे पंडित रामदीन। रामदीन के चार बेटे, भैरवदास, बनारसीदास, जमनादास और जानकीप्रसाद। जानकीप्रसाद हमारे बब्बा थे।'

'इन चारों की कोई बहन नहीं थी।'

'अब यह सब हमें मालूम नहीं। और तुम टोंको नहीं। पूरा सुन लो पहले। हाँ तो हम कह रहे थे कि हमारे बब्बा थे जानकीप्रसाद। उनके बब्बा को जालौन के राजा साहब ने ही नुनसाई में बसाया था। उन्हें वहाँ बहुत सी ज़मीन भी दी। पास में ही हमारी कुल देवी अक्षरा माता का मंदिर है।'

'बाबा साहब इतना सब शामिल करना काफी लंबा हो जाएगा।'

'प्रभास, हम विस्तार से इसलिए बता रहे हैं तुम्हें हमारे कुटुंब की जानकारी मिल जाए। हाँ, तो हम बता रहे थे कि रामदीन जी के चार बेटे थे। चारों ने अपनी अलग-अलग पहचान बनाई। भैरवदास जी का घराना गिरधान में बस गया। बनारसीदास नुनसाई रहे। जमनादास जी जखौली में बस गये। चौथा घराना हमारे बब्बा जानकीप्रसाद जी का था। बब्बा नुनसाई की अपनी सारी जायदाद को संभालने की जिम्मेदारी अपने कुटुंबियों को सौंप कर उज्जैन आ गए। जमनादास जी देखभाल करते रहे। आजकल उनके बेटे और पोते देख रहे हैं। दादा साहब भी जाते रहते थे।

'कुछ लोग तो यहाँ भी आते रहे हैं न। मैंने देखा है। बूढ़ी अम्मा और बाबूजी से बातें करते रहते थे।'

'हाँ, बेनीप्रसाद जी के बेटे और पोते आते थे यहाँ। ठाकुरप्रसाद, माधव और मुरलीप्रसाद आते थे। अब तुम्हें यह जानकारी कैसे देना है यह तुम सोचो।'

'बाबा साहब, अभी यहाँ की बात तो शुरु नहीं हुई है।'

'हाँ, वह सब भी बताएँगे। एक बार ज़रा अपनी डायरी में देख लें कि पुराने लोगों के कोई नाम छूटे तो नहीं।'

'जी, बाबा साहब देख लीजिए।' मैं भी मूड में आ गया था।

'नहीं, अब कोई नाम बाकी नहीं है। यहाँ के सब नाम तुम्हें पता ही हैं। हमने पहले ही बता दिये हैं।'

'बाबा साहब, फिर भी। कहीं ऐसा न हो कि कुछ कमी रह जाए। लगता है मुझे असल बात शुरू ही नहीं हुई है। बब्बा जी नुनसाई से यहाँ आ गये। फिर क्या हुआ? और दादा साहब की बातें।'

'अरे, अब आज इतना ही बहुत है। फिर तुमने ही कहा न कि बहुत लम्बा हो जाएगा। अभिनन्दन पत्र। निमंत्रण-पत्र में तो सिर्फ नाम ही जाने हैं, सो तुमने जान लिये। दादा साहब से जुड़े प्रसंग इस सबसे अलग हैं। तुम्हें उनके विषय में भानु भैया ने बताया ही होगा। बचपन में वही उनके साथ आते-जाते थे। ताँगा वही चलाते थे। कुछ लिख लो फिर बात करेंगे।'

'ठीक है बाबा साहब। तो मैं चलता हूँ।'

'हाँ।' उन्होंने कहा और दीवान से उठ गये। मैं भी उठ गया। भीतर जाता और ऊपर जाकर बूढ़ी अम्मा से मिलता तो समय ज्यादा हो जाता। यह सोचकर मैं घर चला आया।

उस समय मैं चला तो आया, लेकिन यह सोचता रहा कि बाबा साहब ने बड़ी सफाई से बात टाल दी, जब मैंने दादा साहब का जिक्र किया। शायद वे बताना नहीं चाह रहे हों। अब तक जितना, जो कुछ उन्होंने बताया उसमें दादाजी की कहीं बात नहीं की। उनका नाम तक नहीं लिया। बुन्देलखंड के चार घराने तो उन्होंने बता दिये अपने कुटुंबियों के, लेकिन वे अलग-अलग क्यों बसे और चौथा उनका घराना उज्जैन आकर क्यों बस गया। उनके साथ और कौन-कौन आया। सारी बातें वे छिपा गये और दादा साहब की बात पूछने पर बीच में बाबूजी को ले आये। फिर एक बात बार-बार चुभती रही कि वे बुन्देलखंड और अपने कुटुम्ब को हमारा-हमारा ही कह रहे थे। कहीं भी उन्होंने हम लोगों का, अपना नहीं कहा। मुझे लगा कि वे मेरे दादाजी और उनके परिवार को अलग

कर रहे थे। जैसे हम लोग उनके नहीं है। इस पूरे वार्तालाप में मुझे वही परायेपन का अनुभव होता रहा। कई बार लगा कि मैं क्यों बैठा हूँ। क्यों सुन रहा हूँ उनकी सब बातें। क्यों लिखूँ वह सब जो वे चाहते हैं। यही सब सोचता, मन ही मन कुढ़न महसूस करता हुआ घर पहुँचा। माँ और बाबूजी आँगन में बैठे हुए थे। शुभ्रा भीतर रसोईघर में थी। तपन, नीरज और गौरव हॉल में सो रहे थे। मैं भी आँगन में जाकर बैठ गया। भूख भी लग रही थी। चिढ़ भी भरी हुई थी। पर सोचा पहले खाना खा लूँ। शायद यही सोचकर माँ ने कुछ नहीं पूछा। सिर्फ इतना कहा 'जाओ, पहले खाना खा लो। शुभ्रा परोस देगी।' मैं रसोई की तरफ चला गया।

मैंने और शुभ्रा ने साथ ही खाना खाया और हाथ-मुंह धोकर आँगन में ही पहुँच गये। माँ को यह जानने की उत्सुकता थी कि छोटे बाबा ने मुझे क्यों बुलाया था। मुझे देखते ही बोली - 'हाँ, अब बताओ क्यों बुलाया था तुम्हें?'

बाबूजी को शायद माँ ने नहीं बताया था अब तक। मुझे यही लगा। क्योंकि उन्होंने तुरन्त ही पूछा - 'किसने बुलाया था? कहां गये थे तुम ?'

'छोटे बाबा ने बुलाया था। वहीं गया था।'

'क्यों बुलाया था, वही तो पूछ रहे हैं हम भी।' माँ ने कहा।

'दो काम बताए हैं उन्होंने। कस्तूरी की शादी में वे चाहते हैं कि बारातियों के सामने एक अभिनन्दन-पत्र पढ़ा जाए। लिखने के लिए मुझे कहा है। साथ ही निमंत्रण-पत्र का प्रारूप भी मुझे ही तैयार करना है।'

'कोई बात नहीं। तुम्हारे लिए कौन सा मुश्किल काम है। तुम लिखते रहते हो कुछ न कुछ। फिर तुम्हारे महमूद मास्टर जी भी तुम्हारी तारीफ करते हैं उनसे। इसीलिये कह दिया।' माँ ने कहा

'ठीक है। कर देना उनका यह काम।' बाबूजी ने भी माँ का समर्थन किया।

'मुझे लिखने से कोई ऐतराज नहीं है। लेकिन जैसा वे चाहते हैं वैसा लिखना एक समस्या है।'

'क्या चाहते हैं वे?' बाबूजी ने पूछा।

'उन्होंने अपने बब्बा, फिर बब्बा के भी बब्बा से शुरू कर श्याम और विजय तक के नाम गिना दिये। फिर उनके कुटुंब, कुटुंबियों और बुन्देलखंड का गुणगान भी चाहते हैं वे अभिनन्दन-पत्र में। इतना सब समेटू तो एक छोटी-सी किताब नहीं बन जाएगी। निमंत्रण-पत्र में भी वे उनके बब्बा, दादा साहब के साथ, बड़े बाबा और उनके परिवार वालों के नाम भी चाहते हैं। उनका और उनके बेटों का नाम तो होगा ही।

'बस कि और भी कुछ?' माँ ने पूछा।

'बस।'

'उनकी महिमा अपरम्पार है भैया।' इतना कहकर माँ उठ गई।

'फिर क्या सोचा तुमने?' बाबूजी ने पूछा।

मैंने जवाब दिया-'बाबूजी, इतना तो नहीं हो पाएगा। एक पेज का अभिनन्दन पत्र लिख दूँगा मैं। निमंत्रण-पत्र भी एक ही पृष्ठ का होगा। एक पृष्ठ वैवाहिक कार्यक्रम का अलग रहेगा, बस। उन्हें पसन्द आये या नहीं।'

माँ अब तक खड़ी हुई थीं। मैंने कहा - 'माँ आप बैठ जाओ। कुछ और भी बताना है।'

माँ बैठ गई।

'बाबा साहब जो किताब लिख रहे हैं उसी में से नाम लिखवा रहे थे। और भी बहुत सी बातें बताई उन्होंने परिवार के विषय में। तारीफ करते हुए। लेकिन पूरी बात में दादाजी का नाम एक बार भी नहीं लिया। दादाजी का नाम, आपका नाम और दोनों काका का नाम भी नहीं लिखवाया। न अभिनन्दन-पत्र के लिए और न निमंत्रण-पत्र के लिए। जबकि आपने छोटे काका और नयना जिज्जी की शादी की पत्रिका में बड़े बाबा और छोटे बाबा, दोनों का नाम शामिल किया था। मुझे यह बात अच्छी नहीं लगी। फिर परिवार-कुटुम्ब की बात में वे हमेशा हम, हमारा कुटुंब इस तरह कहते हैं। हमारे दादाजी और आप जैसे उनमें शामिल नहीं हैं। अपन लोग, अपना परिवार कभी नहीं कहते। फिर हम सब क्यों उनकी तरफदारी करें।'

'तो, कब तक लिख लोगे, जो भी लिखना है। पर, ध्यान रहे कि उन्होंने जो नाम दिये हैं उनके अलावा कोई और नाम नहीं जोड़ना है। बेकार का एक नया बखेड़ा मत बनाना।' माँ ने चेताया।

'वह तो ठीक है। मैं कोई नाम नहीं जोड़ूंगा। पर यह कब तक चलेगा। एक घर के लोग हमें मुसलमान की औलाद बताते रहें तो दूसरे घर वाले यह कहें कि हमारे दादाजी यहाँ बाहर से आये हैं। और हम उन्हें अपना मानते रहें। मुझसे नहीं होगी यह जी-हुजूरी।'

'तो मना कर देते।'

'बाबा साहब बहुत माहिर हैं नाटक करने में। कोई काम करवाना हो तो बड़ी चिकनी-चुपड़ी बात करेंगे। इस तरह बात बनाएँगे कि उनसे बड़ा शुभचिन्तक और प्यार करने वाला कोई और नहीं है। बात मनवाना जानते हैं और मनवा भी लेते हैं। मैं कोई सम्बन्ध तोड़ने वाली बात नहीं कर रहा। लेकिन अपना आत्म-सम्मान भी तो होना चाहिये। फिर एक बात और है माँ। बाबा साहब बहुत कुछ बताते हैं तो बहुत कुछ छिपाते भी हैं। अपने कुटुंब की बातें इस तरह सुनाते हैं कि उनके जैसा कोई कुटुंब है ही नहीं। हर बात बढ़ा-चढ़ाकर ही बताएँगे। जबकि असलियत कुछ और है।'

'किस असलियत की बात कर रहे हो।' बाबूजी ने पूछा।

'एक बार बूढ़ी अम्मा ने भी उनके और दादा साहब के परिवारों के बारे में बताया था। दादा साहब के पिता मालवा क्यों आये, यह बात उन्होंने बताई नहीं और लिखी भी नहीं। बूढ़ी अम्मा ने बताई थी।'

'क्या बताई थी?'

'यही कि बुन्देलखंड में उन्हें आजादी की लड़ाई लड़ रहे लोगों से खतरा था। क्योंकि एक तरफ तो वे अंग्रेज़ सरकार के समर्थक थे और दूसरी ओर वहाँ के रजवाड़ों के भी वे कृपापात्र थे। बूढ़ी अम्मा ने एक-एक बात बहुत खुलकर बताई और बाबा साहब छिपा गये।'

'हां, अम्मा ठीक कहतीं हैं। वहाँ कुछ तो ज़मीन-जायदाद की आपसी लड़ाई भी रही होगी और अंग्रेजों का साथ देने की वजह से उनका विरोध भी था। इसीलिए वहाँ से सब कुछ समेटकर बब्बा इधर आ गये थे।'

'आपको तो सब कुछ मालूम होगा। बताइए न कुछ।'

'हाँ, दादा साहब भी कुछ बातें बताते रहे हैं। कुछ हमारे बाबूजी ने बताई जो शायद उन्होंने बड़ी माँ से भी सुनी होंगी।'

बाबूजी, आज बहुत दिनों बाद मूड में थे। उन्होंने पिछली बार जहाँ बात खत्म की थी उससे भी पहले की बातें सुनाई।

शुभ्रा भी सो गई थी। माँ उसे देखकर वापस लौट आई। बाबूजी ने माँ से चाय बनाने के लिए कहा तो माँ चाय बनाने भीतर गई और लौटकर आई तब तीन प्याले और केटली में चाय लेकर। बाबूजी ने चाय पीते हुए बताना शुरू किया। उन्होंने बात शुरू की बुन्देलखंड से। 'अब मर्यादा महाराज से पहले की बातें तो याद नहीं। शायद किसी ने बताई भी नहीं हों। मर्यादा महाराज के किस्से को भी छोड़ो। बात उन दिनों की है जब छोटे साहब के बब्बा यानी दादा साहब के पिता नुनसाई में रहते थे। हमें दादा साहब और बाबूजी से ज्यादा बूढ़ी अम्मा के छुटकन भैया ने बताई। छुटकन मामा अक्सर अम्मा के पास आ जाते थे। बहुत देर बैठते थे। राखी के अलावा भी नदी घाटी वाले मकान में या चौक वाले मंदिर भी जाते थे हम उनसे मिलने। तब भी उनसे बातें होती थीं। वे बताते थे बुन्देलखंड के बारे में...' बाबूजी बोल रहे थे। बूढ़ी अम्मा की तरह ही। वे बोल रहे थे और मुझे अम्मा की बताई बातें भी तभी याद आ रही थीं। ऐसा लग रहा था कि दूर-सुदूर के वन-प्रान्तर, गाँव, खेत-खलिहान, नारे और कहीं शोर, कहीं गोली चलने की आवाज़ें आ रही हैं। एक के बाद एक दृश्य बदल रहे हैं। चेहरे बदल रहे हैं, एक जुलूस आ रहा है और सामने एक बड़ा ऊँचा मीनार-सा खड़ा हुआ है, एक स्तंभ उसे घेरे हुए अनेक लोग और भागता हुआ एक घोड़ा इधर आता हुआ दिख रहा है। मैं सुन रहा हूँ। बाबूजी और बूढ़ी अम्मा बोल रहे हैं - 'बुन्देलखंड।'

लेकिन उस दिन ऐसा नहीं लगा था, जब बाबूजी ने अपनी शादी का किस्सा सुनाया था। वास्तव में माँ और बाबूजी दोनों बता रहे थे। एक बार छोटे बाबा ने भी बताया था। पर बाबूजी ने यह नहीं बताया था जो छोटे बाबा ने बताया था। छोटे बाबा की बारात में दादाजी और बाबूजी दोनों गये थे। तब दादा साहब भी थे। इसके बाद बाबूजी कई बार अपनी काकी को छोड़ने या लेने गये थे। वहीं एक बार उनकी तबीयत खराब हुई थी। तब माँ ने काफी देखभाल की थी बाबूजी की।

बाबूजी को यह सब देखकर अच्छा लगा था। दरअसल छोटे बाबा के ससुर और माँ की दादी सगे भाई-बहिन थे। इस रिश्ते से बाबूजी की काकी माँ की बुआ लगती थीं। छोटे बाबा ने बताया कि बाबूजी से सम्बन्ध तय करने के विषय में हमारे नानाजी ने उन्हें पत्र लिखा था। और शादी हो गई थी। वहाँ अपने मायके में माँ छोटे बाबा और छोटी दादी

की भतीजी थीं और यहाँ आई तो बहू बन गई। अब यह रिश्ता तो बाहर से नहीं आया। मैं सोचता था। बाबूजी सुना रहे थे बुन्देलखंड की बातें और भीतर इस रिश्ते और उस रिश्ते की उलझनें भी उठ रही थीं। मैं यह भी सोचता कि बूढ़ी अम्मा ने यह बात क्यों छिपा ली थी।

इस परिवार से माँ के रिश्तों के बारे में जानने के बाद मैं यही सोचता रहता कि छोटे बाबा ने माँ से अपने पुराने रिश्ते को अधिक महत्व नहीं दिया। वह हमेशा माँ को घर की बहू का दर्जा देते थे। उनका तीव्र आग्रह था कि माँ उनके चरण स्पर्श करें। छोटी दादी भी हम भाई-बहिन से नानी का रिश्ता नहीं मानती थीं। सदा दादी ही बनीं रहीं। हम उनके बेटों को मामा बोलते रहे। लेकिन वह चाहती थीं, हम उन्हें काका कहें। वह यह भी चाहतीं थीं कि उम्र में हमसे उनके छोटे बेटों को भी हम काका कहें, उनके पैर छुएँ। उनकी छोटी बेटियों को भी हम बुआ कहें और उनके भी चरण स्पर्श करें। मुझसे यह कभी नहीं हुआ। मैं इस बात की हमेशा अवज्ञा करता रहा। स्वाभाविक था कि उनका व्यवहार मेरे प्रति सदैव कुछ अलग ही रहा। वह माँ से मेरे विरूद्ध कितनी ही बातें कहती रहीं। माँ मुझसे कुछ कहतीं तो मैं अनसुनी कर जाता था।

एक अव्यक्त-सी तनातनी, उन सबके प्रति इन तमाम कारणों से उम्र भर बनी रही। एक प्रसंग, उन दिनों का है जब मैं रतलाम रहने लगा था। कभी छुट्टियों में आना-जाना होता। अक्सर तब ही सबसे मुलाकात होती। विजय उन दिनों भोपाल में था। रमेश भी तबादले पर भोपाल पहुँचे। वह विजय के घर पर ही रहते। समय बीतने के साथ एक परिवर्तन था जो सम्बन्धों में दिखाई देता। या शायद स्वभाव की ऊपरी सतह पर यह महसूस होता हो। बचपन की यादें अवचेतन में कहीं हों। जो भी हो विजय की मुझसे बातें होती रहतीं। हम अक्सर साथ घूमते। एक दिन, विजय ने अपनी बातें बताई कि किस तरह रमेश भैया के कारण वह परेशानी में है।

अब यही बात एक दिन मैंने माँ को बताई तो पता नहीं क्या सोचकर माँ ने छोटी दादी से कह दिया कि 'विजय ऐसा बता रहा था प्रभास को।'

छोटी दादी से बात, छोटे बाबा तक पहुँची। दोनों भोपाल गये। वहाँ क्या हुआ, नहीं मालूम, लेकिन इसके बाद विजय ने ऐसी बातें मुझसे फिर कभी नहीं की। कुछ समय

बाद वह मिला तो उसने सिर्फ यही कहा 'तुम्हे अपनी माँ को वह बात नहीं बताना चाहिए थी।' मैं स्तब्ध था।

माँ ने ऐसा क्यों किया था? अक्सर सोचता हूँ। पर क्या करूँ। हाँ, इसके बाद मेरे रिश्ते उन लोगों से औपचारिक रह गये थे बस। पर कुछ लोगों के बचपन के विपरीत बदलते हुए व्यवहार एक नई अनुभव-कथा बना रहे थे। श्याम, विजय और गोपू ही नहीं, छोटे बाबा और दादी, मधुवन के और लोग, सब कुछ न कुछ नया दे रहे थे, दे चुके थे, पता नहीं और कितना होना है अभी। यह सिर्फ उस एक घटना को लेकर ही नहीं, बहुत पहले से लगने लगा था कि कोई एक नहीं, पूरा परिसर ही एक अभिशप्त और रहस्य लोक है।

फैक्ट्री वाले मकान में रहते हुए और कुछ सालों बाद पुनः नई बस्ती वाले घर में पहुँचने पर भी कुछ ऐसे घट रहा था बहुत कुछ जो मेरे प्रश्नों, संशय और जिज्ञासाओं में वृद्धि कर रहा था। मधुवन वाले बड़े बाबा के बड़े साहबजादे बाबूजी के पास आकर घंटों बैठे रहते। यों बड़े चुप्पे थे वह। बचपन में उन्हें बहुत कम देखा था बाबूजी से वह दस बरस छोटे होंगे। वह अपने पिता की शिकायत करते। बाबूजी ने दादा साहब की जायदाद का बंटवारा करवा दिया था। लेकिन अपनी संपत्ति की वसीयत बड़े बाबा ने कभी नहीं की। बड़े बाबा के बड़े बेटे बाबूजी से मदद चाहते थे कि वे उन्हें अपने पिता से सम्पत्ति में से हिस्सा दिला दें। बाबूजी बताते थे कि एक बार बड़े बाबा ने उनसे कहा था 'मेरे पिता ने जो अर्जित किया था मैंने उसे बाँटा नहीं। उसे सहेजा है। हुडिया चलाकर उसे बढ़ाया है। मेरी मेहनत है भाई। मेरे बाद सब लड़ें और जिसके हिस्से जो आए उसे वह रख लें।' जरूरत पड़ने पर भी उन्होंने हाथ उठाकर किसी की सहायता नहीं की। पता नहीं कैसे परवरिश होती रही उनके कुनबे की। दबे-छिपे, हर कोई उन्हें लेकर नई-नई कहानियां सुनाता। कंजूस, हेकड, अंधविश्वासी, पाखंडी और न जाने किस-किस नाम से उनके किस्से बचपन से सुनता आया हूँ। पहले उनसे डर लगता था, फिर उनके प्रति तटस्थ हो गया। पर यही बात धीरे-धीरे उनके प्रति एक घृणा में कब बदल गई, पता ही नहीं चला।

बड़े के विपरीत छोटे बाबा थे। लोग उन्हें शालीन समझते। धार्मिक, सहृदय और दयालु। एक अर्थ में थे भी। अपने व्यवसाय में। लेकिन असल में वे बड़े गुस्सैल थे। मनमाफिक कुछ न हो तो तोड़-फोड़, चीजें उठाकर फेंकना, माँ और दादी कहीं गई हों तो उनके लौटने से पूर्व हॉल का दरवाजा भीतर से बन्द कर बैठ जाना और अक्सर यह होता था।

अपना काम निकालना हो तो बड़े 'मिठबोले' थे वह। जब उनके स्वभाव का यह वैचित्र्य मुझे समझ में आने लगा तो मैंने सोचा कि यह भी दोहरी मानसिकता, एक व्यक्ति दो चेहरे।

विचार बदलते रहे। परिस्थितियाँ, सोच की दिशा बदलती रहीं। लगता वास्तव में दोनों बाबा के ये परिवार एक पहेली नहीं हैं, एक वास्तविकता हैं। सबका दोहरा चरित्र है। माँ कभी-कभी कहती थीं 'चार बरतन हैं, इकट्ठा होंगे तो खड़केंगे ही।' सही कहती थीं माँ। बरतन खड़कते रहे, उठते गिरते रहे लेकिन बड़ी चतुराई से बाहर आवाज़ नहीं पहुँचने दी इन लोगों ने। एक सूत्र में बँधा हुआ दिखाई देने वाला परिवार भी विभाजित है। यही सच है लेकिन माँ, जब किसी प्रतिकार की बात हो तो यह कहकर खामोश कर देतीं थीं 'हुई है वही जो राम रचि राखा, को करि तब बढ़ावहि साखा।'

***

भाग-8

इस्तांबुल एक विदेशी शहर का नाम है जिसे हमारे परिवार में किसी ने नहीं देखा। देखें कैसे, आज तक कोई विदेश गया ही नहीं। बड़ी और छोटी हवेली वाले भी कभी नहीं गये। नानाजी रंगून रहे लेकिन तब वह भौगोलिक दृष्टि से हमारा अपना-सा ही था। भारतीय। बूढ़ी अम्मा और छुटकन मामा जब अनजान बुन्देलखंड के शहर या गाँव का नाम लेते थे तो कई बार कुछ स्थानों से मुझे इस्तांबुल के उच्चारण-सा आभास होता था। ये बचपन के उन दिनों की बातें हैं जब बूढ़ी अम्मा की याद करता हूँ तो एक अजीब सी सिहरन-सी अनुभव होती है। निरक्षर अम्मा और अद्भुत याददाश्त। जानकारियाँ अनगिनत और उतनी ही कटुता। कट्टरता के साथ धर्म-कर्म-आडम्बरों के निर्वाह में जीवन बिताया। कभी समझ ही नहीं पाया कि उन्हें लगाव किससे है, जबकि मुझे अक्सर पास बिठाकर किस्से सुनाती थीं, पर शायद प्यार किसी से नहीं था। दादा साहब की याद भी अनमने ढंग से करतीं। मैंने उनसे एक बार पूछा था-'अम्मा, आप, अपने भोजन में नमक क्यों नहीं लेती?' अम्मा सिर्फ राजगीरा के परांठे, मीठी लपसी और कोई भी भाजी, बिना नमक-मिर्च की स्वयं बनाकर खातीं थीं। वह भी शुद्ध घी में। थोड़ा सा दूध पीती थीं दिन में एक बार।

मेरे सवाल पर नाराज़ हो गई थीं। फिर भी बताया था कि बरसों हो गये यही खाते हुए। माँ बताती थीं कि दादा साहब की किसी बात पर नाराज़ होकर उन्होंने अन्न व नमक त्याग दिया था। सिर्फ राजगीरा और मैथी, पालक या कोई और भाजी लेती थी। जबकि छोटे बाबा ने अपने वंश-ग्रंथ में कुछ और ही लिखा था। उन्होंने लिखा कि दादा साहब की मृत्यु के बाद अम्मा ने सांसारिक वस्तुओं का त्याग कर दिया था। हमने तो होश सम्हालते ही देखा था ऐसा खाना खाते हुए उन्हें। उनकी बातों से लगता था कि उन्होंने दादा साहब की मृत्यु से लगभग बीस वर्ष पूर्व ही सादा जीवन अपना लिया था। बाबा साहब की यही विरोधाभासी बातें उन्हें रहस्यमय बनाती रहीं। धीरे-धीरे बड़ी-छोटी बातों वाला हर छोटा-बड़ा व्यक्ति मेरे लिए अबूझ पहेली बनता गया। फिर भी, अम्मा और छुटकन मामा मुझे चमत्कारिक व्यक्तित्व से भी लगते थे। मामा बोलते तो उनके पोपले मुँह से निकलने वाली ध्वनियों के साथ अंग-अंग थिरकता था।

बाबूजी का अपने बड़े साहब और छोटे साहब से रिश्ता भी मुझे हमेशा अनसुलझी पहेली-सा लगता था। उनसे सिवा धोखे के कुछ नहीं मिला लेकिन बाबूजी के समर्पण में कोई कमी नहीं आई। बड़े और छोटे बाबा, बड़ी और छोटी हवेली वाली दादी, बूढ़ी अम्मा, श्याम और गोपू का व्यक्तित्व कुछ ऐसा तिलिस्म रचता रहा, जिसे परिभाषित करना संभव नहीं। बड़ी हवेली वालों ने हमारे परिवार के साथ जो किया या जो वे सब कहते रहे, वह सब बहुत ही अमर्यादित और अनैतिक था। कई किस्से हैं जो बाबूजी ने बताए। कुछ हादसे मेरे साथ घटे। दुर्घटनाएं जो नीम-चौगान में घटीं। तब श्याम और माधव ने भी सब देखा था। गोपू की अम्मा ने जो धमकियाँ दी थीं माधव को, वह सब बहुत पुराना अतीत नहीं है। पर कुछ नहीं हुआ। तीन खिड़की वाले कमरे से चल कर नई कॉलोनी वाले घर तक एक खामोशी साथ है और अब इस पुरातन-से घर में पसर कर चुभ रही है। माधव नहीं हैं यहाँ पर, बाबूजी व्यस्त हैं और माँ सदा की तरह चुप, दैनंदिन कामों में खोई हुई। तपन और शुभ्रा, नीरज और गौरव कितना जानते हैं, पता नहीं। लेकिन माँ और बाबूजी का, धोखा खाने के बाद भी दोनों हवेली वालों के प्रति लगाव भरा समर्पण-भाव ही उनका सच है। उनकी खामोशी या ज्यादा न जानने देने वाली प्रवृत्ति उनका स्वभाव बन गयी है। गोपू के व्यंग्यों के बीच भी माधव और श्याम का उसके साथ खेलना, मेरे लिए असहनीय था।

मैं हमेशा यही सोचता रहा कि पिछली बातचीत का सिलसिला आगे बढ़ेगा और बूढ़ी अम्मा ने जो किस्से जहाँ छोड़े थे, वहाँ से बाबूजी उन्हें आगे बढ़ाएँगे। तभी एक खबर ने हम सबको विचलित कर दिया। खबर क्या, आँखों देखी हकीकत थी वह।

कस्तूरी की शादी संपन्न हो गई थी। बारिश का मौसम था। हवा गर्म और उमस भरी उदासी थी उन दिनों। एक दिन। माँ ने कहा कि बूढ़ी अम्मा को देखने की इच्छा हो रही है। फिर हम गए थे छोटे बाबा के घर। मैं और माँ। वही घर, वही तीन खिड़कियों वाला कमरा। झुकती हुई नीम की शाखाएँ वैसी ही थीं। लकड़ी वाली सीढ़ियों से चढ़कर हम ऊपर पहुँचे। पर उस बड़े कमरे में अम्मा नहीं थीं। उनका पूजा घर वाला हिस्सा ध्वस्त हो चुका था। उनके भगवान भी उठ गए थे वहाँ से। कहाँ, पता नहीं चला। उनका बाकी सामान भी कहाँ गया, नहीं मालूम। वंश-ग्रंथ छिपा कर रखा था जिस कमरे में बाबा साहब ने, अब वहाँ बूढ़ी अम्मा थीं। हमने देखा, दो कमरों के बीच की देहरी पर अम्मा बैठी थीं, अकेली। लाचार मल-मूत्र सी लिपटी हुई जर्जर काया। वहाँ मल-मूत्र की बदबू

से बेखबर अम्मा अपने आसपास की गंदगी से गीले फर्श पर हाथों से पोंछा लगा रहीं थीं। माँ को रोना आ रहा था। मुझसे कुछ बोला नहीं गया। मैं चुपचाप माँ के पीछे खड़ा रहा।

'अम्मा, क्या कर रही हैं।' माँ ने कहा।

कुछ क्षण बाद उन्होंने सामने देखा। पहचानने की कोशिश कर रही थीं शायद। पास में सरक आई वह।

'कौन है रे, पिरभू ?'

'हाँ अम्मा' फिर कुछ बोल नहीं पाई वह।

माँ ने उनकी जर्जर देह को कपड़ों से साफ किया। आसपास सफाई की। फिर एक चटाई बिछाकर उन्हें लिटा दिया। वह लगातार रोए जा रही थीं। बार-बार हाथ उठातीं, जैसे आशीर्वाद दे रही हों। अटक-अटक कर कुछ बोलती भी जा रही थीं। व्यथा-कथा और अकेलेपन का दर्द था उन बातों में। उनका हाल-चाल पूछने की किसी को फुरसत नहीं थी। बड़ी हवेली वाले पहले भी नहीं आते थे। नीचे से बाबा साहब आ जाते थे कभी। बाकी कोई नहीं आता।

माँ सांत्वना देने से ज्यादा क्या कहतीं। उनसे और किसी से भी। हम चले आए वहाँ से।

दूसरे दिन खबर आई कि बूढ़ी अम्मा नहीं रहीं। शहर से दूर पुराने ओखलेश्वर घाट पर उनका अंतिम संस्कार कर दिया गया। दादा साहब के बाद हवेली में एक और युग का अंत हुआ। दुखी कौन था और मातमपुर्सी की दिखावटी अदाएँ कौन दिखा रहा था, समझ नहीं आया मुझे।

अम्मा को ले जाने के लिए अर्थी तैयार हो रही थी। बड़े बाबा तब आए थे वहाँ। मैंने पहली बार देखा था उन्हें वहाँ। क्रिया-कर्म के अपने अधिकार और कर्तव्य की पूर्णाहुति के लिए आए थे। अम्मा ने उनके घर में प्राण त्यागे थे, इसलिए छोटे बाबा ने अपने यहाँ धूप-दीप किया। शेष सभी कार्य बड़ी हवेली में ही संपन्न हुए। बड़ी हवेली में हर कार्य में हम सब भी सम्मिलित हुए। धीरे-धीरे सब सामान्य हो गया।

हमारे घर में अक्सर बूढ़ी अम्मा की चर्चा होती रहती थी। तब, मेरी आँखों के सामने उनका मुस्कुराता हुआ और कुछ पूछता हुआ-सा चेहरा घूम जाता। उनके साथ ही

छुटकन मामा का खुलता हुआ मुँह, कुछ कहकर हवा फेंकता और अटकता-सा दिखता। वो बातें याद आतीं। रहस्य-लोक के अनेक अनुभव, मेरे मन में छुपे अधसोये-से प्रश्नों से टकराते थे। हमारे पारिवारिक वजूद को वर्षों से पूर्व निर्धारित और सुनियोजित ढंग से मिटाया जा रहा है। तीन पीढ़ियाँ गुज़र गईं। हमारी पीढ़ी अपने समवयस्कों से अब भी जूझ रही है। तीन पीढ़ियों से खलनायक परम्परा के जाने-पहचाने चेहरे उसे नष्ट कर रहे हैं। और यहाँ कब से खामोशी पसरी हुई है। एक अम्मा थीं जिन्होंने एक सत्य बताया था, लेकिन उन्होंने भी बड़ी सावधानी से दादा साहब की बातों के उन पहलुओं को छिपा लिया था, जिनसे मेरे दादाजी का सम्बन्ध है। मुझे विस्तार से हर बात को समझना था। इसीलिए मैंने कहा था, शांत फिर भी प्रगल्भ स्वर में बाबूजी से।

मुझे याद हैं वे दिन भी, जब हम सब भाई-बहिन इकट्ठा होते थे। खासकर उस दिन जब हम बाबूजी की मृत्यु के बाद एक साथ थे और हवेली वालों की चर्चा चल पड़ी थी। अपनी दादी-नानी और दादाजी के बारे में भी हम बात कर रहे थे। अब इसका तो कुछ नहीं किया जा सकता था कि अपने दादा जी को हमने नहीं देखा। माँ ने भी नहीं देखा था। हालाँकि दादाजी छोटे बाबा की बारात में गये थे। लेकिन माँ तब बहुत छोटी थीं और तब की कोई बात उन्हें याद नहीं थी। यही बातें हम दोहराते थे। तभी माधव ने पहली बार बताया कि वह बाबूजी के साथ इन्दौर गये थे, तब वे उन्हें उस घर भी ले गए थे जहाँ दादाजी ने जन्म लिया था। पर गोद लेने के बारे में उन्हें भी ज्यादा मालूम नहीं था। बातचीत में सभी उग्र स्वर में हवेली वालों के व्यवहार से झलकते अलगाव की हरकतों का हवाला देते, अपने-अपने अन्दाज में। मुझे मालूम था तब भी कि जिन हादसों से मैं या माधव गुज़रे हैं उसका तो कोई अन्दाज़ नहीं है उन्हें। बड़ी हवेली और छोटी हवेली की सीमाओं में घिरे हुए कितने ही गुमशुदा चेहरे हैं जो गर्म रेत की हलचल में समा गये। मेरी बात में इसीलिए घृणा ही टपकती थी। जबकि सम्बन्धों की यातना सभी अनुभव करते थे।

माँ कभी-कभी कहती थीं कि भूल जाओ सब। पर कैसे भूल जाऊँ मैं। यही तो वह वास्तविकता है जो मुझे कुछ बना रही है। भूला नहीं हूँ मैं छोटे बाबा को, जिन्होंने मेरी पाटी-पूजा की। मेरा नामकरण किया। पर फिर क्या हो गया था उन्हें। उनका दूसरा चेहरा तो बनावटी भी है और डरावना भी। भूला नहीं हूँ मैं सुन्दर चाचा को, जिन्होंने छत से आँगन में गिरने पर उठाया था मुझे। उन सबको, यहाँ तक कि गोपू को भी जिसके साथ

मधुवन में, नीम के चौगान और मंदिर के आसपास खूब धमा-चौकड़ी की थी। और कैसे भूल जाऊँ उस किताब को जिसके बहुत से पृष्ठ अब भी पढ़ नहीं पाया मैं। किसे पता है उस किताब की इबारतें। क्यों नहीं बताई किसी ने। फिर वह ताना कि हम कौन हैं, हमारे दादाजी कहीं बाहर से आये हैं और माधव की मासूमियत। उस बात का आघात मुझे अब तक दर्द दे रहा है, पर माधव की मासूम नज़ाकत इसे अनुभव ही नहीं करना चाहती। उनके समर्पण भाव में कोई कमी नहीं। दूसरी ओर बूढ़ी अम्मा थीं जिन्होंने पहली बार सच से रूबरू कराया था कि छोटे बाबा के बब्बा अंग्रेजों के हमदर्द होने के कारण बुन्देलखंड में सुरक्षित अनुभव नहीं कर रहे थे, इसलिए वहाँ से मालवा चले आये। उन्हीं के कारण कितने ही लोग वहाँ से पलायन कर गये। बहुत समय तक बूढ़ी अम्मा की इन्हीं बातों से उनके प्रति वह अलगाव अपने भीतर पैदा नहीं कर सका, जो औरों के प्रति रहा।

मुझे मालूम है कि मेरे कई सवालों के जवाब पूरी तरह शायद कभी न मिलें। फिर भी अपनी पहचान को पाने की मशक्कत में तो कोई बुराई नहीं। एक ऐसी सच्चाई जो हवेली वालों के हर छोटे-बड़े को मालूम है और जिसे अपने-अपने ढंग से सब हमारे विरोध में किस्से गढ़ते रहते हैं। माँ-बाबूजी से हम ज्यादा नहीं जान पायेंगे तो अपनी अगली पीढ़ी को क्या बताएँगे? वे कैसे जानेंगे वह असलियत जो हमारी है। दूसरे लोगों से तो उन्हें वही जानने को मिलेगा जो वे बतलाएँगे और जिसे जानकर मैं निरन्तर एक घुटन-सी महसूस करता हूँ। हम भाई-बहिनों ने इस विषय में कभी खुलकर बात नहीं की। पता नहीं, ऐसा करते हुए हम कितना कुछ खो रहे हैं। जो पा रहे हैं, वह एक छलावा है और यह हमारे बीच ही एक दूरी न बना दे।

यही कुछ सोचता था मैं उन दिनों भी। एक फलसफा भी मैंने बना लिया था तब। यही कि संतानें ईश्वरत्व से अपने अस्तित्व को प्रारंभ कर मनुष्य की परिभाषा गढ़ती हैं। ये संतानें या कहें एक पीढ़ी धीरे-धीरे पुनः उस ईश्वरत्व तक लौटें, यह हमारा दायित्व है। वरना मनुष्य की यात्रा को शैतान की सत्ता तक पहुँचने में विलम्ब नहीं होगा।

ऐसे ही एक दिन मैं घर से निकलकर जा रहा था कि मिल की उदास और अकेली खड़ी चिमनी की ओर चला गया। आसपास झाड़ियाँ उग आई थी। बारिश के मौसम की विदाई हो चुकी थी। नवरात्रि का पर्व शुरू होने में दो-तीन दिन ही शेष होंगे। मैं चिमनी को ध्यान से देख रहा था और मुझे यह कुतुबमीनार-सी प्रतीत हो रही थी। निरन्तर,

एकटक देखते हुए पल भर को ऐसा लगा जैसे कुछ सरसराहट सी हुई और मुझे यह चिमनी हिलती सी दिखने लगी। अचानक ऐसा लगा जैसे चिमनी से बौछार-सी निकल रही है और उस बौछार से कुछ अग्निकण से फूट रहे हैं हवा में ही। शोर, नारे, भगदड़, गोली, बारुद और एक गूंज जागते रहो, जागते रहो। कुछ पद चापें। फिर सब कुछ शान्त। मैं हड़बड़ाता-सा आगे बढ़ गया। चलते-चलते पता नहीं चला कि मैं छोटे बाबा के घर तक आ गया था। वहाँ से महमूद मास्टर साहब निकल रहे थे। मुझे देखकर वह रुक गए।

'कैसे हो प्रभास? बाबा से मिलने आए हो? जाओ, हॉल में ही बैठे हैं।' उन्होंने कहा।

'ठीक हूँ सर। इधर से जा रहा था। आपको देखकर रुक गया।' मैंने जवाब दिया।

'पढ़ाई कैसी चल रही है?'

ठीक चल रही है सर। मेघराज जी, पुष्प जी और दूसरे कई साथी आपकी बातें करते रहते हैं।

'अच्छा। मेघराज मेरे घर भी आते रहते हैं। मुक्तिबोध और हृदय जी के बारे में पूछते रहते हैं। मेरी उन दोनों से अच्छी दोस्ती थी।'

मैंने अपने आज के अनुभव के बारे में बताया तो वह हँस दिए। बोले कि आओ छत्री चौक के बगीचे में बैठते हैं कुछ देर।

घास पर बैठे थे हम। मास्टर साहब समझाते रहे मुझे देर तक। मैं सुनता रहा। 'प्रभास, जब कोई बहुत पुरानी बातों के बारे में सोचता रहता है लगातार तब ऐसा ही होता है। पुरानी इमारतें भी जो खंडहर हो चुकी हैं, वहाँ मौसम की मार पड़ते ही ऐसा ही कुछ होता है। हवाएँ चलती हैं और जमी हुई धूल के कण घर्षण करते हुए उड़ते हैं। हमारे मन में किसी जगह से जुड़ी हुई याद हो और हम अपने अतीत के बारे में सोचते हुए वहाँ से गुजरें, तब ऐसे ही आभास होते रहते हैं। तुम्हारे साथ शायद ऐसा ही हो रहा है।' अपनी बात खत्म कर वह उठ गए। मैं भी उठ गया। फिर एकाएक पलटे और बोले-'तुम्हारे बाबा साहब तारीफ कर रहे थे तुम्हारी। अच्छा लिखते हो तुम।'

'सर, उन्होंने क्या पढ़ लिया ऐसा मेरा लिखा हुआ?'

'भूल गए। उनके यहाँ शादी थी और तुमने सेहरा लिखा था। वैसे हम आज माँ साहब की मौत के बाद मिले थे। फिर भी उठते-उठते उन्होंने तुम्हारी तारीफ की। शायद अचानक उन्हें यह बात याद आ गई। लिखते रहा करो।'

मास्टर साहब महाराजवाड़ा की ओर चले गए और मैं घर की ओर लौट पड़ा।

बाबूजी बैठक में थे। कुछ लोग बैठे हुए थे। कारोबारी बातें हो रहीं थीं। फैक्ट्री की खाली ज़मीन पर बाबूजी ने छोटे-छोटे गोडाउन बनवाए थे। उनमें अलग-अलग व्यापारी किराएदार थे। उनसे किराया वसूली होती थी। उसी में से बाबूजी अपने वेतन की धनराशि निकालकर शेष राशि सेठ को बम्बई भेज देते थे। एक गोडाउन हमारा भी था। वहाँ करघा उद्योग की तैयारी हो रही थी। व्यापारियों के जाने के बाद बाबूजी भीतर आए। माँ, शायद प्रतीक्षा में ही बैठी थी।

'दो-तीन जगह से जानकारी आई है। अच्छा घर बार है। कुंडली आ जाए तो मिलान करवाकर जवाब देंगे। वे कुंडली माँगेंगे तो भेज देंगे।' बाबूजी ने कहा।

'जगतनारायण जी ने भी तो एक घर बताया था, वहाँ से जवाब नहीं आया।' माँ ने पूछा।

'अभी नहीं।'

माँ-बाबूजी शुभ्रा की शादी के विषय में बात कर रहे थे। उनके चेहरे पर चिन्ता और तनाव झलक रहा था। कुछ नये कामकाज की व्यस्तता, भागदौड़ और शादी की चिन्ता। मैंने कहा कि 'अभी क्या जल्दी है शादी की।'

'बात शुरु की है। कुछ भी फायनल करने तक एक-दो बरस निकल ही जाएँगे। फिर लड़की है, शादी जल्दी करना ही ठीक रहता है।' माँ का तर्क था।

अब मैं क्या कहता। हालाँकि मैं सोचता था कि यह जल्दबाज़ी है। इस मामले में माँ-बाबूजी के विचार समान थे, फिर भी उनकी सोच अलग-अलग थी। माँ सोचती थीं, लड़कियों की शादी बीस बरस की उम्र तक हो जानी चाहिये। पर उन्हें पढ़ना भी चाहिये। बाबूजी का मानना था कि शादी की उम्र अठारह ही ठीक है। पढ़ाई उनकी दृष्टि में गौण थी। एक और बात थी जिसे मैं समझ रहा था। हवेली वालों के यहाँ शादियाँ हो रही थीं और बाबूजी इसमें पीछे रहना नहीं चाहते थे। कस्तूरी की शादी हो चुकी थी। श्याम की शादी भी इसी साल हो जाएगी। पिछले कुछ बरसों में छोटे बाबा के यहाँ यह

चौथी शादी होगी। इसीलिए शुभ्रा के लिए वे भी व्यग्र थीं। मुझे अधिकार नहीं था इस विषय में सलाह देने का। फिर भी कभी-कभी मैं बोल पड़ता और माँ कोई न कोई तर्क देकर मुझे चुप करा देती थीं।

इन दिनों कुछ ऐसा होता जा रहा था कि मैं माँ-बाबूजी के विचारों के विपरीत कोई बात कहता तो माँ कहतीं- 'प्रभास, हर बात का विरोध करना तुम्हारा स्वभाव बनता जा रहा है। आदत बदलो अपनी।'

'माँ, किसी भी बात को आँख मीच कर स्वीकार कर लेना मुझे सही नहीं लगता। न मानना और विरोध करना भी जीवन का एक रुख है।' मैं कहता।

'तो अब किस-किस से लड़ोगे। सब कुछ अपने बस में नहीं होता न।'

'हाँ, नहीं होता। पर हर मुद्दे पर 'हाथी-घोड़ा-पालकी, जय कन्हैयालाल की' की तरह चुप भी नहीं बैठा जा सकता। वरना एक ज़िन्दगी को उपकरण में बदलने में देर नहीं लगेगी।'

'अब, ये कविताएँ मत सुनाओ हमें।'

'माँ, यह कविता नहीं है। मेरी सोच है। मेरा स्वभाव है। सोचने के लिए भी किसी का आश्रय ढूँढना तो गुलामी है। जो मैं होना नहीं चाहता।'

'ये नेता टाइप मास्टरों और दोस्तों से ही सीख रहे हो। सही कहते हैं बाबूजी, जब मन हुआ निकल पड़े देश की चिन्ता को।' माँ का आखिरी तर्क होता।

'अब आप कुछ भी समझो।' कहकर मैं भी बात ख़त्म कर देता था अपनी ओर से।

अकेलापन नहीं, एकान्त बड़ी मुश्किल से मिलता है। मेघराज जी कहते हैं कि मैं अक्सर ट्रैफिक में फंसा हुआ भी मन में कविता सोच लेता हूँ। मुझे हँसी आती कि भीड़ में कोई कैसे एकान्त ढूँढ सकता है। उनकी पत्नी कहतीं कि मामला मनोविज्ञान का है। तुम केस स्टडी करो इनकी।

मुझे, जब कभी एकान्त मिलता है, मैं सोच में डूब जाता हूँ। बाबूजी अलगाव के रिश्तों में भी अपनत्व को खोजते रहे हैं। माँ, हर एक बात पर कहती हैं 'भूल जाओ सब।' मैं यह नहीं कर पाता। उजड़ी हुई फसल में खरपतवार का सहारा लेकर कोई कैसे जी सकता है। पर कुछ लोग हैं जो खेत-खलिहान में नागर सभ्यता का तांडव कर रहे हैं।

शहरी प्रेत उनकी आत्मा में उतर गया है। पाखंड की अग्नि से क्रूरता की आँच निकल रही है। मेरा एकान्त चाहता है कि इन्हीं बातों में समेट लूँ सबको। पर हो नहीं पाता। माँ-बाबूजी की आवाजें बदल देती हैं सब। मैं अपने ही एकान्त में घिर जाता हूँ।

आज फिर एक तनाव को ओढ़े बाबूजी आए थे। माँ ने दरवाजा खोला तो मुझे अहसास हुआ कि कमरे में अँधेरा था। माँ ने ही रोशनी की। बाबूजी कुछ देर खामोश रहे। फिर बोले 'वह कमबख्त फिर मिल गया था वहाँ।'

'कौन कहाँ मिल गया था?'

'मैं छोटे साहब के यहाँ से निकल रहा था। वह हमारी साइकल के पास ही खड़ा था। वही अनर्गल बातें। छोटे साहब और श्याम बरामदे से ही देखते रहे। तभी जगतनारायण आ गए। वहां। उन्हें देखते ही वह भाग गया।'

'पर था कौन, बाबूजी।' मैंने पूछा।

'दयालदास, जिसकी गंजी खोपड़ी पर चप्पलें बरसाई थीं तुमने।'

'मुझे हँसी आ गई। मैंने कहा-'जगत बाबू के हत्थे चढ़ता तो मज़ा रहता।'

'जगतनारायण पुलिस के हवाले करना चाहते थे। मैंने ही रोक दिया कि सरकारी नौकरी है। परिवार है। मुश्किल में आ जाएगा। आखिर रिश्तेदार ही हैं।'

एक बार महाशय घर तक आ गए थे। बाबूजी समझते रहे। जब नहीं माने तो मैंने चप्पल उठाई और उन्हें धक्का देते हुए रेल की पटरी तक ले गया। फिर पटरी-पटरी खोपड़ी पर दोनों हाथों में चप्पल लेकर मारता हुआ चौराहे तक छोड़ आया।

फिर एक दिन। बाबूजी फुरसत में बैठे थे। तपन, नीरज, गौरव और शुभ्रा घर पर नहीं थे। मैं एक किताब को पढ़ने में व्यस्त। माँ अपने बालों में तेल लगाते हुए आकर बैठ गई। बाबूजी ने कहा-'पता नहीं, बड़े साहब और छोटे साहब को हमेशा कुछ खुराफात करने की ही क्यों पड़ी रहती है।'

'क्यों, अब क्या हुआ? क्या किया उन्होंने?' माँ ने पूछा।

मैंने किताब से सिर उठाकर उनकी ओर देखा।

बाबूजी ने कहा- 'वही पुराना राग। हम कहीं कोई सम्बन्ध की बात चलाते हैं, वहाँ उनके पत्र पहुँच जाते हैं।'

'आप उनके पास जाकर बता क्यों आते हो?'

'हम तो यह सोचकर जाते हैं कि बड़े हैं, बताना चाहिये। हालांकि वे कहीं जब कोई सम्बन्ध करना चाहते हैं, तब हमसे मशविरा ही नहीं करते, पर फायनल बातचीत करने हम ही जाते हैं।'

'पर वे मीन-मेख ही तो निकालते हैं।'

'हाँ, सो तो है।'

'खाली दिमाग, शैतान का घर।' मैं बोल दिया।

'तुम चुप भी करोगे।' माँ नाराज होकर बोलीं।

'माँ, मैं तो मुहावरा सुना रहा था, किताब में पढ़कर। एक अच्छी कहानी पढ़ रहा हूँ।'

मुझे आश्चर्य हुआ, बाबूजी ने कुछ नहीं कहा। बल्कि माँ से ही बोले- 'अपने-अपने कर्म हैं। आदमी अपनी आदत नहीं छोड़ता। यही आदतें तो विरासत में पाई हैं उन्होंने।'

मुझे बाबूजी की बात से सहारा मिला। सोचा यही समय है, जहाँ पुरानी बात छूटी थी, वहाँ से फिर शुरू हो जाये शायद। मैंने अवसर का लाभ उठाते हुए तुरन्त कहा-'बूढ़ी अम्मा भी यही कहती थीं।'

'क्या कहती थीं?' बाबूजी ने पूछा।

'यही कि बुन्देलखंड में बब्बा की अपने भाई-बान्धवों से बड़ी खटपट हुई थी। यहां भी छोटे कुंअर और बड़े कुंअर में तना-तनी रहती है। मामले-मुकदमे वहाँ भी चलते थे, यहां भी चलते रहे हैं। बहुत सी बातें उनमें और छुटकन मामा के बीच भी होती रहती थीं। मैं सुनता रहता था।

'ठीक कहती थीं अम्मा। छोटे साहब ने कभी कुछ नहीं बताया अपनी किताब के बारे में। हमें भी कभी पता नहीं चला कि वे कोई किताब लिख रहे हैं। तुम्हें भी कुछ नहीं बताया कि क्या लिख रहे हैं?'

'नहीं, बाबा साहब ने ज्यादा कुछ नहीं बताया। बस यही कहते थे कि उनके बब्बा सब कुछ अपने भाइयों को सौंपकर यहाँ आये। यह भी बताया कि दादा साहब के कुछ मकान इन्दौर में थे, कुछ उज्जैन में और उनके बब्बा का एक मकान महिदपुर में भी था।'

'बिल्कुल ठीक बताया उन्होंने। महिदपुर वाले मकान के बारे में और क्या लिखा है उन्होंने?'

'यही लिखा है कि उसे किसी मित्र की बिटिया को दान में दे दिया।'

'क्यों दे दिया, यह नहीं लिखा?'

'नहीं।'

'तो इस बारे में बूढ़ी अम्मा ने तो बताया होगा?' माँ ने पूछा।

'नहीं उन्होंने इस बारे में कुछ नहीं बताया। हाँ, वह यह कहती थीं कि दादा साहब से अक्सर उनकी बहस होती रहती थी और वह उनके बार-बार इन्दौर जाने से भी नाराज़ रहती थीं।'

'क्यों? यह नहीं बताती थीं।' माँ ने ही पूछा।

'नहीं, ज्यादा नहीं। अक्सर चुप हो जाती थीं। और हाँ माँ, मैंने यह भी सुना है कि उन्होंने अन्न-त्याग नाराज़ होकर किया था।'

'हाँ, वह तो ठीक है, पर बताया किसने? अम्मा ने।'

'कुछ याद नहीं आ रहा। शायद अम्मा ने ही बताया हो।'

'अब किसी ने भी बताया हो। क्या फर्क पड़ता है।' बाबूजी ने कहा।

कुछ देर वह चुप रहे तो माँ ने याद दिलाया कि 'प्रभास ने बताया कि उज्जैन और इन्दौर के मकानों के बारे में भी लिखा है।'

'झूठ लिखा है छोटे साहब ने।'

'तो सच क्या है? वही तो जानना है इसे। पता नहीं और भी क्या-क्या लिखा हो उन्होंने।' माँ ने कहा।

'अब बहुत कुछ तो तुम भी जानती हो। तुमने कुछ नहीं बताया अब तक?'

'नहीं। और बहुत कुछ बातें तो हमें भी नहीं मालूम, पूरी तरह से। फिर, आपसे बिना पूछे भी कैसे बताते।'

'प्रभास, वसीयत के बारे में कुछ लिखा है उन्होंने उस किताब में?'

'वसीयत ? कौन सी वसीयत ? इस बारे में लिखा हो तो वहाँ तक हम शायद पढ़ नहीं पाये।'

'बूढ़ी अम्मा ने भी कुछ नहीं कहा।'

'नहीं, पर किसी बँटवारे के विषय में कुछ कह रही थीं वह छुटकन मामाजी से एक दिन। मैंने सुना था। मामाजी बता रहे थे कि इन्दौर में किसी शादी में दादा साहब को बिठा दिया था। मैं पहुँचा तो दोनों चुप हो गये थे। क्या किस्सा है बाबूजी ?'

'अब ज्यादा तो हमें भी नहीं मालूम। दादा साहब ने स्वयं कुछ नहीं बताया किसी को। पर जानते सब हैं। महीपत सिंह के परिवार का वाकया है। अपने किसी पुत्र के विवाह के अवसर पर उन्होंने दूल्हे के स्थान पर दादा साहब को बिठा दिया था। शायद बड़ी माँ इस बात को जानती थीं, क्योंकि वह इन्दौर में कोड़ियागंज वाले मकान पर ही रहती थीं और बापूजी की नौकरी लगने पर जब वे इन्दौर से यहां आ गये तो वे भी बुन्देलखंड लौट गई थीं। कोड़ियागंज का मकान उनके नाम पर था और उन्होंने ही वह बापूजी के नाम कर दिया था।'

'और बंटवारा?'

'जितना हमें मालूम है, दादा साहब ने कोई वसीयत नहीं की थी। बड़े साहब को पढ़ने के लिये बापूजी के पास लाहौर भेजा था पर उनका मन लाहौर में लगा नहीं। पढ़ाई उन्होंने की नहीं और घूमफिरकर लौट आये। यहां आकर दादा साहब का कारोबार देखने लगे। दादा साहब रिटायर हो गये थे और वह निश्चिन्त थे। उन्होंने कभी कुछ कहा नहीं और बड़े साहब की मनमानियाँ बढ़ती गई। छोटे साहब और हम लोग निजातपुरा वाली हवेली में रहने लगे थे। बड़े साहब राशन पानी भी तौलकर, गिनकर एक-एक चीज बाँटते थे। दादा साहब की मौत के बाद वे खुलकर बेईमानी पर उतर आये थे। तब मुनीमजी, नदी घाटी वाले मामाजी आदि बुज़ुर्गों के दबाव में उन्होंने बँटवारा किया था। बँटवारा कोर्ट में फायनल हुआ था। यहाँ भी उन्होंने बेईमानी की। काफी कुछ संपत्ति,

रकम वगैरह बहुत कम घोषित की और उसका आधा-आधा हिस्सा बांट दिया गया। शेष वह दबा गये। छोटे साहब कोर्ट में भी रोते रहे थे और रकम-कागज़ात मध्यस्थों ने हमारे हाथ पर रखी थी।'

'क्योंकि आपने छोटे बाबा का साथ दिया था।'

'हाँ भाई, हाँ।'

'तो फिर आपने अपने लिए हिस्सा क्यों नहीं माँगा। औरों ने भी कुछ नहीं कहा था क्या?'

'वकील साहब और मुनीम जी ने कहा था। बड़े साहब ने भी कहा था, हमारा साथ दो तो दोनों ग्वाड़ियों के बीच की ज़मीन तुम्हारे नाम कर देंगे। लेकिन हमने छोटे साहब का साथ नहीं छोड़ा।'

'और छोटे बाबा ने आपको क्या दिया?'

'अब अपना-अपना भाग्य है। पता नहीं, कब कहाँ गलत हुआ कि सब बदल गया।' बाबूजी ने कहा। पर मुझे लग रहा था वह मुझे बहला रहे हैं। बाबूजी फिर खामोश हो गये।

बूढ़ी अम्मा भी जब तक थीं, ऐसे ही कुछ बताते-बताते खामोश हो जाती थीं। लेकिन जब बोलतीं तो बहुत सी परतें खुलती थीं। हमारी दादी ने कभी कुछ नहीं बताया। शायद उनके रहते हम भाई-बहिन बहुत छोटे थे। नीरज और गौरव ने तो उन्हें देखा भी नहीं। उन्हें नानाजी की भी ज्यादा याद नहीं होगी। पर, बाबूजी भी जब बोलते हैं रहस्य की चादर सरकने लगती है और सब कुछ साफ दिखाई देता है। बुन्देलखंड, मालवा, पंडित जानकीप्रसाद मुखिया और उनकी जिन्दगी की किताब। कुछ पन्ने खुलते हैं बुन्देलखंड में और खुलते-खुलते मालवा तक कहानी का ताना-बाना सामने आ जाता है और मुखिया परिवार की कहानी, पृष्ठ दर पृष्ठ उजागर होने लगती है।

***

भाग-9

ब्रिटिशकालीन भारतवर्ष। पुराने मानचित्र में इधर-उधर बिखरा हुआ सा। छोटी रियासतें अपने अस्तित्व को बचाते हुए, आपस में युद्धरत रहतीं। दिल्ली के तख्त पर मुगल शासक विराजमान थे। कहने को बादशाह, लेकिन हर ओर अंग्रेजों की चौकसी। मुगल बादशाह अंग्रेजों की आँख की किरकिरी बने रहे, पर उनकी चापलूसी में व्यस्त रहते। पंजाब से लेकर बंगाल तक, रंगून से अवध, दक्षिण में हैदराबाद और बीजापुर तक सभी रियासतें एक दूसरे की खिलाफत करती थीं। कुछ शासक अपनी रंगीनियों में खोये और जयचन्द की विरासत को पाल-पोस रहे थे। पूना में पेशवा, मराठा साम्राज्य की निशानी लेकिन अंग्रेजों की नज़रबन्दी के शिकार बने अपनी आज़ादी के लिए फड़फड़ाते रहते। उधर सौराष्ट्र-काठियावाड़ और राजपुताने में भी राजपूत-मुस्लिम शासकों की कारगुजारियाँ चल रही थीं। ग्वालियर व इन्दौर में पेशवा के सिपहसालार रहे सिंधिया और होल्कर का शासन था। सैलाना, पिपलोदा, रतलाम, अलीराजपुर और जावरा में छोटे-छोटे राजघराने थे। जावरा और भोपाल में मुस्लिम शासकों की हुकूमत थी। बुन्देलखंड में झाँसी राजघराना पेशवा से अलग होने का सपना देख रहा था और अंग्रेज वहाँ अपने पैर पसार रहे थे। ओरछा, छतरपुर, महोबा और गोंडवाना के साथ ही सटे हुए छोटे-छोटे ठिकाने, जालौन, जखौली और कालपी। छोटी जागीरें और पनपती हुई बगावत के दायरे फैलते हुए। अंग्रेजों की खिलाफत में दिल्ली से अवध, कालपी से पूना और बीजापुर से इन्दौर तक चिंगारी सुलग रही थी।

यह 1830 से 1840 और इसके आगे 1857 तक फैला हुआ समय था, जहाँ बगावत की चिंगारी गदर यानी पहले स्वतंत्रता आन्दोलन की प्रस्तावना लिख रही थी। झाँसी और आसपास के ठिकाने भी सजग हो रहे थे, सुलग रहे थे। उसी दौर का वह एक दिन था। जालौन जिले का ठिकाना नुनसाई। जाने-माने रईस पंडित जानकीप्रसाद मुखिया का नुनसाई गाँव। अपने मूल स्थान मौजा रोरा से, जालौन के राजा के निमंत्रण पर जिनके पूर्वज पंडित मर्यादा महाराज यहाँ आ गये थे। यह होगा अठारहवीं सदी के अंतिम दशक का कोई समय। पंडित मर्यादा महाराज के उत्तराधिकारी थे पंडित रामदीन। पंडित जानकीप्रसाद उन्हीं के पुत्र थे जिनके हिस्से में आया नुनसाई ठिकाना। पंडित रामदीन

की वसीयत के अनुसार भैरवदास को गिरवान गाँव, पंडित बनारसीदास को नुनसाई ठिकाने का आधा भाग और पंडित जमनादास को जखौली गाँव मिला।

कुछ जानकार लोगों की बातें और कुछ सुने-सुनाये किस्से, बुन्देलखंड ही नहीं पूरे भारत वर्ष में एक जुनून सवार था। प्रजा थी, लेकिन प्रजावत्सल राजा नहीं थे। कहीं नवाब और कहीं राजा। कहीं राजपूत, कहीं जाट और कहीं ब्राह्मण। जमीदार, जागीरदार और ठाकुर-महाजन, सभी सूदखोर। फसलें लहलहाती थीं। खलिहान भरे पूरे। पूस की रात हो या जेठ की दोपहर। दौड़ते-भागते हथियारबन्द सिपाही और लठैत खेतों को रौंदकर चले जाते। कारिन्दे देसी हों या परदेसी फिरंगी धमकाते हुए आ जाते लगान वसूलने।

फिर भी समय गुजर रहा था। दिन हो या रात। धूप हो या बरसात या कड़कड़ाती, हाड़ कँपाती सर्दी, खून-सने कपड़ों में कराहता कोई न कोई हर चौखट पर दिखाई दे जाता था। कहीं खामोशी पसर रही थी तो कहीं कोहराम मचा रहता। एक गली में बनिया मुस्कुराता हुआ दाखिल होता। कभी किसी मुच्छड़ लठैत के साथ, कभी बन्दूकधारी गोरे के साथ। कहीं पंडित-पुजारी-मौलवी गोरों के साथ पिस्तौल पर हाथ की सफाई दिखाते। रात-बिरात जंगलों में जेवरों, रुपयों और हथियारों की आती-जाती खेप लुट जाती। ठिकाने के कुछ पंडित-ठाकुर-मौलवी गोरों के साथ चर्चा करते 'मालिक बाग़ी सिर उठा रहे हैं।' ऐसा भी हो रहा था कई जगह, किसी मंदिर-मस्जिद के भीतर या दूर किसी खंडहर में गुप्त मंत्रणा चलती, कैसे बाहरी और भीतरी दुश्मनों से निपटना है।

मुगल बादशाह दिल्ली में तड़प रहा था। उसका दरबार दीवाने-आम में सिमट रहा था। मराठे, राजपूत, बनिये, ब्राह्मण और मुसलमान ही नहीं, हर जाति, हर धर्म और हर भाषा-बोली का बच्चा-जवान-बूढ़ा, राजा हो या आम आदमी उस दीवाने-आम में दस्तक देता था। योजनाएँ बन रही थीं। दिल्ली से पूना, पूना से काठियावाड़, अवध से मालवा तक समूह इकट्ठा हो रहे थे एक रणनीति के साथ। कहीं-कहीं अकेले ही, कहीं अपने समूह के साथ, और कहीं हर जगह से संवाद-सूत्र से जुड़ी हुई रणनीतियाँ बन रही थीं। पर यही सच नहीं था। और भी दायरे थे और भी पहलू। शायद हर कहीं।

पर, यहां नुनसाई में एक अलग ही हवा थी। पंडित रामदीन की अगली पीढ़ी में शायद कुछ और ही आहटें हो रही थीं। यह पीढ़ी अब चार घरानों में बँट गई थी। एक, भैरवदास का गिरथान घराना था और दूसरा पंडित जमनादास का जखौली घराना।

तीसरा और चौथा घराना नुनसाई में था। पंडित बनारसीदास और पंडित जानकीप्रसाद का। एक ही गाँव जिसके दो हकदार हो तो स्वाभाविक है कि बरतन खड़केंगे ही। बंटवारे की टीस अब कलह में बदलते-बदलते आमने-सामने की लड़ाई में तब्दील हो गई थी। मकान, रकम, जमीन-जायदाद-जेवरात बराबर-बराबर बट गये थे। मंदिर का बंटवारा झगड़े की जड़ बना। पंडित रामदीन की वसीयत में मंदिर एक ही था। उस पर पंडित जानकीप्रसाद का स्वामित्व बना रहा। यह बात बनारसीदास को खटकती रहती। दोनों घरों के कारिन्दे अक्सर अपने-अपने मालिकों के बचाव में लाठियाँ चमकाते रहते। अंग्रेज अफसरों के कुछ सिपाही और एक-दो अरदली हमेशा जानकीप्रसाद के साथ रहते। बनारसीदास को अपने लठैतों पर भरोसा था। पर, जानकीप्रसाद के अंग्रेजों से ताल्लुकात के कारण वे हमेशा भयभीत रहते थे। अंग्रेजों से ताल्लुकात के कारण जानकीप्रसाद के जीवन में एक नई समस्या ने उन्हें भी भयभीत कर दिया था। जिन्हें वे बागी कहते थे उनसे, उनके सम्बन्धों में तनाव था। बुन्देलखंडी आजादी के लड़ाके हमेशा घात लगाये रहते।

एक दिन। पंडित जानकीप्रसाद झाँसी गये हुए थे, रेसीडेंट विल्सन साहब से भेंट के लिए। साथ में उनके जखौली के कुटुंबी भोला महाराज भी थे। चर्चा चल रही थी। पंडितजी ने कहा-'साहब, बागी फिराक में रहते हैं। पता नहीं कब हमला हो जाए।' पंडितजी और अंग्रेज साहब अंग्रेजी में बात कर रहे थे। भोला महाराज अनमने से बैठे रहे। पर वह यह जानते थे कि पंडितजी के संबंध अंग्रेजों के अतिरिक्त ग्वालियर दरबार और सेठ साहूकारों से भी हैं। पंडितजी समझ रहे थे भोला महाराज की उलझन और अंग्रेज अफसर भी। इसीलिए वे टूटी-फूटी हिन्दी में बोलने लगे। शायद उन्हें यह भरोसा हो गया था कि भोला महाराज पंडित जी के विश्वस्त हैं। उन्होंने कहा- 'आप भी मुझ पर भरोसा कर सकते हैं जेंटलमेन।'

'जी।' भोला महाराज अचकचा गये।

पंडितजी ने अपनी बात जारी रखी। कुछ देर की खामोशी के बाद विल्सन ने कहा- 'पंडित जी, आपको अपना ठिकाना छोड़ देना चाहिये। मैं इन्दौर मालवा के रेसीडेंट डूरंड साहब को खबर करवा दूंगा। आप मालवा चले जाओ।'

भोला महाराज हिचक रहे थे। पर पंडित जी ने समझाया कि 'आपको नहीं जाना होगा।'

विल्सन ने फिर कहा-'जेंटलमेन मैं सिर्फ पंडितजी के जाने की बात कर रहा हूँ।'

पंडित जानकीदास ने पूछा - 'कब तक जाना होगा।'

'मैं आपको खबर भेजूंगा। आपके साथ कुछ ओर लोग भी जायेंगे। आप अपनी तैयारी कर लो तब तक।'

अरदली के साथ दोनों रवाना हुए। रास्ते में घोड़े को थोड़ा खिलाने-पिलाने के लिए विश्राम किया, फिर चल पड़े।

नुनसाई पहुंचते-पहुंचते शाम हो गई थी। भोला महाराज उस रात वहीं रुके। सुबह वे जखौली के लिए निकल पड़े।

सुबह उठकर पंडित को लगा कि आज सुस्ती कुछ ज्यादा ही लग रही है। बाहर निकलकर देखा तो सूरज निकल आया था। उन्हें बड़ा अजीब लगा कि प्रतिदिन सूर्योदय से पूर्व उठते थे। अचानक ये क्या हो गया उन्हें। ऐसा शायद पहली बार हुआ था। सिपाहियों की भी अदला-बदली हो चुकी थी। वे शीघ्र ही नित्यकर्म से निवृत्त होकर स्नान-ध्यान के बाद मन्दिर की ओर चल पड़े। भोला महाराज सुबह-सवेरे ही चले गये थे। जखौली पहुँचकर उन्हें सब इन्तज़ाम करने थे।

पंडित जानकीप्रसाद ने सोच लिया था कि भोला महाराज के विश्वस्तों के साथ ही पंडित जमनादास से भी कहना था कि वे अपने एक पुत्र को नुनसाई का जिम्मा संभालने भेज दें। लल्ला गोपालप्रसाद अभी छोटे हैं। उन्हें उनके मामा के यहाँ भेजना है। इसके लिए उन्होंने जखौली से ही संदेश-वाहक भेज दिया। गाँव इटौरा के लिए। शाम तक पंडित नुनसाई लौट गये।

पंडित रात में बिस्तर पर लेटे सोच रहे थे कि क्या बात हुई कि आज वह देर से उठे। राधा देवी भी चिन्तित थीं। उन्होंने सोचा कि शायद यात्रा की थकान हो, पर ऐसी यात्राएँ तो वह करते ही रहते हैं। फिर सोचा, निश्चित ही विल्सन साहब से मिली आश्वस्ति ही वह कारण थी कि अच्छी नींद आई। ऐसी कि सुबह देर तक सोते रहे। ऐसी नींद तो सुनते हैं कि झाँसी महाराज को आती है अफीम के सेवन से।

पंडित सोच रहे थे कि झाँसी की हालत कुछ ठीक नहीं है। बहुत संभव है विल्सन साहब को कोई बड़ा निर्णय लेना पड़े। बागियों का उपद्रव भी बढ़ रहा है वहाँ। पूना से भी कोई

अच्छे समाचार नहीं मिल रहे। आजकल मोरोपंत जी वहाँ पहुँच गये हैं। नाना साहब छोटे हैं। पेशवा क्या राजपाट संभालेंगे। वह समझ नहीं पा रहे थे कि पेशवाई पर दुखी हों या खुश। पर भोला महाराज खुश नहीं हैं। झाँसी और पूना में अंग्रेजों की दखलंदाजी से वह नाराज़ नज़र आये। नुनसाई लौटकर उन्होंने पंडित से कहा था - 'ये अंग्रेजों का रवैया मुझे अच्छा नहीं लगता। सेठों-साहूकारों और सिंधिया सरकार की फिरंगियों से साठ-गांठ भी मुझे नहीं सुहाती है पंडित।'

'तुम क्यों दिमाग खपाते हो। अंग्रेज़ ताकतवर हैं, उनसे लड़ाई में कुछ नहीं मिलेगा। साथ रहो, फायदे में रहोगे। मौका मत छोड़ो।'

'पंडित तुम कुछ भी कहो, मुझे यह साथ नहीं सुहाएगा।'

कह तो दिया भोला महाराज ने, पर वे जान रहे थे कि पंडित यहां की लड़ाई से बचकर निकल रहे हैं। उन्हें लग रहा था यह पलायन है। पर यह भी सच है कि वह यहाँ रहे तो पता नहीं क्या हो। फिर भी उन्होंने कहा था-'पंडित, तुम मालवा जाने का सोच रहे हो, यह ठीक नहीं है। यही समय है कि हम सब तय कर लें और अंग्रेजों की नीयत को समझकर उनका साथ दें जिन्हें वे बाग़ी कहते हैं।'

'भोला, अब बस भी करो। हम मन बना चुके हैं नुनसाई छोड़ने का। इसीलिए लल्ला और उनकी माँ को इटौरा भेजना तय किया है। परमेश्वरी दद्दा को संदेसा भिजवा दिया है कि चतुरनारायण को भेज दें यहाँ। अब मालवा में कहाँ ठिकाना बनता है, यह वहीं जाकर पता चलेगा। विल्सन साहब ने सर रिचर्ड जनरल साहब और डॉ. ब्यूमाट साहब का नाम व पता भी दिया है। रेसीडेन्ट डूरंड साहब के लिए तो बोला ही है। देखते हैं क्या होता है। पर समझ लो अब बुन्देलखंड से दाना-पानी उठ रहा है।'

'तो यहाँ के मकान, खेती-बाड़ी और मंदिर। इस सबके बारे में क्या सोचा है?'

'जखौली वालों से कह दिया है। वे ही देखभाल करेंगे। कल जखौली जाकर फिर बात करना है।'

पंडित जानकी प्रसाद विल्सन साहब के आश्वासन, जखौली वालों से बातचीत और भोला महाराज से हुए वाद-विवाद पर ही बिस्तर पर लेटे हुए सोच रहे थे तभी उन्हें नन्हें गोपालप्रसाद के रोने की आवाज़ सुनाई दी। रसोई की ओर से कुछ गिरने की आवाज़ से

वह चौकन्ने हुए और खटिया छोड़कर उठे। पहले रसोईघर की ओर गये, लेकिन वहाँ कुछ भी ऐसा नहीं लगा कि कुछ गिरा-पड़ा हो। वहाँ से निकलकर उन्होंने बाहर की ओर देखा। दरवाज़े की कुंडी गिराकर दरवाज़े की संघ से झाँका तो रोशनी सी दिखाई दी। उन्होंने चौकीदार को आवाज़ दी तो कोई जवाब नहीं मिला, न कोई आवाज़ हुई। चिंतित पंडित दरवाज़ा खोलकर बाहर निकले। लालटेन की रोशनी में देखा, चौकीदार बरामदे में बेसुध सो रहा है। दूर मशालों की रोशनी में भागते हुए कुछ लोग नज़र आये। चौकीदार को हिलाकर उठाया। वह हड़बड़ाकर उठा तो पंडित चिल्लाए 'कैसे बेसुध सोते हो तुम।'

वह सिर झुकाए खड़ा रहा। पास ही पत्थर से दबा एक कागज़ रखा हुआ था, उठाकर देखा तो उसमें एक मोहर सी लगी हुई थी और उस पर लिखा, 'हर-हर महादेव। फिरंगियों से दोस्ती और स्वदेश से गद्दारी की एक ही सजा है। सावधान। पंडित सिर झुकाए अन्दर आ गये। गोपालप्रसाद शायद रोते-रोते सो गये हों, उन्होंने सोचा और राधा के पलंग तक पहुंचे। वह भी जागी हुई लेटी थीं। गोपालप्रसाद को चुप कराकर लेटी होंगी शायद। पंडित को देखा तो उठकर बैठ गई। पूछा-'क्या हुआ?'

पंडित बोले- 'बाहर कुछ आवाजें थीं। गोपाल भी रो रहे थे। नहीं रहा गया सो उठकर आ गये। बाहर कुछ लोग थे जो मशाल लिए हुए थे। भाग गये और यह परचा छोड़ गये।'

'क्या लिखा है इसमें?'

'चेतावनी है। धमकी दी है। शायद बागियों ने फेंका होगा।'

'चौकीदार क्या कर रहा था फिर?'

'सो रहा था घोड़े बेचकर। मक्कार।' फिर बोले कि 'सो जाओ तुम, सुबह विल्सन साहब को संदेसा भिजवाते हैं।'

पंडित अपने कमरे में चले गये। लेकिन आँखों में नींद नहीं थी।

सुबह, मुँह-अंधेरे ही उठ गये थे पंडित। कब-कैसे नींद आ गई, पता नहीं चला। कोई डरावना सपना देखकर जागे थे। समय चिन्ता में बीत रहा था। सपने की बात किसी को बताई नहीं। राधा को भी नहीं। सोचा, व्यर्थ चिन्ता करेंगी। विल्सन साहब को भी

अरदली से संदेसा भिजवा दिया था। चिट्ठी में यह भी लिख दिया था कि पिछली रात कोई सिपाही नहीं था निगरानी पर। फिर निश्चिन्त होकर अपने काम में व्यस्त हो गये।

दिन बीतते गये इसी तरह, चिन्ता, तनाव और प्रतिदिन मिलती लड़ाई, बगावत और खून-खराबे की खबरों के साथ। जखौली वाले भी इस बीच आकर बात कर गये। खेती-बाड़ी, मंदिर के रखरखाव और निगरानी की ओर से पंडित निश्चिन्त थे। सोच रहे थे कि कभी फुरसत निकालकर आएँगे और देखते रहेंगे। अपना मकान है ही। फिर एक दिन पंडित चतुरनारायण दुबे आ गये राधा और अपने भांजे को लिवाने। दुआ-सलाम के बाद पंडित ने सारा कार्यक्रम उन्हें समझाया फिर सब रकम, जेवरात, नगदी और अन्य कीमती सामान उन्हें सौंप दिया, यह कहकर कि जब राधा को मालवा बुलाएँगे तब माँग लेंगे।

'तो क्या स्थायी रूप से मालवा में बसने का सोच रहे हैं पंडितजी?' दुबे जी ने पूछा।

'नहीं, ऐसा कुछ विचार नहीं किया है। परिस्थितियों में सुधार होने पर आ भी सकते हैं। अभी कुछ भी पक्का नहीं है। फिर अभी गोपाल भी छोटे हैं। जब बड़े होंगे, पढ़ना-लिखना शुरू होगा, तब ही कुछ तय होगा।'

'तब तक के लिए यहाँ की क्या व्यवस्था होगी?'

'यह सब जखौली वालों की निगरानी में छोड़े जा रहे हैं। कोई न कोई आकर रहेगा यहाँ।'

तीन दिन गुज़र गये। चौथे दिन राधा अपने पुत्र को लेकर चतुरनारायण के साथ अपने मायके चली गई। एक दिन बाद ही जखौली से पंडित जमनादास के बड़े बेटे बेनीप्रसाद भी आ गये थे और पंडित से सब कुछ समझ रहे थे। विल्सन साहब को संदेशा भिजवाने के बाद सिपाहियों की व्यवस्था में बदलाव कर दिया गया था। एक चौकीदार रात की गश्त के लिए बढ़ा दिया था। कोटवारों की संख्या भी बढ़ गई थी। पंडित निश्चिन्त थे अब। यात्रा का प्रबन्ध हो गया था। हालात फिर भी ठीक नहीं थे। इंदौर से तनाव की खबरें आ रही थीं। झाँसी में दो जगह डकैती हो चुकी थी। किले और छावनी से हथियार चोरी हो रहे थे। इसी बीच विल्सन साहब का अरदली प्रस्थान करने का संदेशा दे गया था।

पंडित विदा हो रहे थे। राधा को विदा करते समय जितना दुख नहीं हुआ था, उससे अधिक अब हो रहा था। वतन छोड़ने का दुख अधिक था। विदाई के लिए जमनादास भी आ गए थे। पुरोहित रामप्रसाद ने पंडित का तिलक किया। पंडित ने मंदिर में माथा टेका और चल पड़े।

'देखो, अब कब आना होता है?' गहरी साँस लेकर बोले थे पंडित।

पंडित जानकीप्रसाद ने बुंदेलखंड छोड़ा, वह शरद पूर्णिमा की रात के बाद पहली सुबह थी। कुछ सशस्त्र सिपाही, चार अरदली और दो निजी विश्वस्त नौकरों के साथ जा रहे थे वह। घोड़े पर बैठकर मालवा की ओर जाते पंडित के चेहरे पर गहरी उदासी थी। दिन भर सफर होता और रात में विश्राम। विल्सन साहब के निर्देश थे कि रात में यात्रा न करें। हवा, हर ओर गरम है। रियासतों के मुख्यालयों पर तनाव ज्यादा है। सिंधिया पर भरोसा है, शेष भरोसेमंद नहीं हैं। नगरों में अंग्रेजों की ही नहीं, राजाओं की भी खिलाफत होती रहती है। होल्कर हर बात नहीं मानते हैं, फिर भी प्रजा और सैनिकों में विद्रोह बढ़ रहा है। पंडित करेरा, शिवपुरी और गुना के रास्ते जा रहे थे। कुछ लोगों ने सागर, बीना, भोपाल का रास्ता चुना था। तो कुछ लोग झाँसी से बीना होते हुए मुंगावली के रास्ते जा रहे थे। तीनों दिशाओं से होते हुए सबको देवास में इकट्ठा होना था।

आशंकाओं और भयग्रस्त तनाव के बीच यात्राएँ चल रही थीं। कुछ बुंदेले सिपाही भी साथ थे जो चिंताओं को दूर करने की कोशिश करते चल रहे थे। पता नहीं, कितने दिन और। पंडित ने सोचा और गुनगुनाने लगे हनुमान चालीसा। फिर भी, पीछे छूट रहे खेत और गाँव-गली को भूल नहीं पा रहे थे। राधा और गोपाल की याद में रुआंसे हो रहे थे। विल्सन साहब की हिदायतें और आश्वासन के सहारे यात्रा चलती रही। चलते-चलते दस-बीस-तीस दिन बीत गए। पंडित साथ चल रहे मित्रों से कहते, 'लगता है बरस बीत गया है चलते-चलते। अब और कितना चलना है भाई।' कोई भी क्या कहता। कैसे कहता। रास्ते में छुटपुट रुकावटें आई, मुठभेड़ भी हुई पर किसी तरह देवास पहुँच गये। वहाँ से डूरंड के सिपाहियों की ज़िम्मेदारी थी। विल्सन के सिपाही लौट गये झाँसी। आगे की यात्रा बिना किसी रुकावट पूरी हुई।

बुन्देलखंड से आये इन लोगों की व्यवस्था कोड़ियागंज, छावनी और पारसी मोहल्ला में की गई थी। पारसी मोहल्ला में कुछ लोग पहले से ठहरे हुए थे। उन्होंने अब तक

अपनी निजी व्यवस्था कर ली थी। उनमें से एक परिवार झाँसी से आए महीपत सिंह पंवार का था। उनका एक पुत्र धनपतसिंह डॉक्टरी की पढ़ाई कर चुका था। यह परिवार पंडित जानकीप्रसाद से परिचित था। इसलिए महीपत सिंह ने आग्रह किया कि पंडित उनके साथ ही ठहरें। लेकिन पंडित, धर्मदास और जगजीवन के साथ कोड़ियागंज में ही ठहरे। लेकिन महीपत सिंह से मेल मुलाकात का सिलसिला चल पड़ा था। धनपत सिंह से छोटा गणपत सिंह लल्ला गोपालप्रसाद का हमउम्र था।

इन्दौर में उन दिनों मौसम ठंडा था। यों भी मालवा की रातें हर मौसम में ठंडी रहती हैं, सुना था पंडित ने। लेकिन राजनीतिक हवा गर्म थी। सिंधिया जिस प्रकार अंग्रेजों के वफादार थे, होल्कर नहीं थे। नगर में भी बगावती माहौल बन रहा था जिसमें बुन्देलखंड से आए हुए शरणार्थियों का योगदान था। पंडित महीपत सिंह को लेकर डूरंड से मिलते रहते। अभी औपचारिक दुआ-सलाम से आगे बात बनी नहीं थी। महीपत सिंह के परामर्श पर ही पंडित ने धर्मदास और जगजीवन के साथ रहते हुए बुन्देलखंड समाज से दूरी बना रखी थी। वे गिने-चुने लोगों से ही मिलते। जगजीवन इससे प्रसन्न नहीं थे। पर, पंडित का साथ नहीं छोड़ना चाहते थे।

कुछ समय बाद, डूरंड झाँसी का दौरा कर वापस लौटे थे। एक दिन मुलाकात के लिए समय लेकर महीपत सिंह और जानकीप्रसाद डूरंड से मिले। इस बार डूरंड ने खुलकर बात की। उन्होंने कहा - 'पँवार हमने पंडित जी को मालवा सूबे का डाक विभाग सौंपने का मन बनाया है। फिर जानकीप्रसाद को देखकर बोले - 'फिलहाल आपका हेडक्वार्टर इन्दौर रहेगा पंडित जी। इन्दौर, उज्जैन और महिदपुर जिले आपके कंट्रोल में रहेंगे।'

'मेहरबानी हुजूर।' पंडित ने उठकर कृतज्ञता व्यक्त की।

पंडित प्रसन्न होकर लौट आये।

पोथी-पतरा निकालकर पंडित ने शुभ मुहूर्त निकाला और छावनी क्षेत्र में विधिवत अपने कार्यालय में काम शुरू किया। वह इन्दौर रहते हुए ही कार्य देख रहे थे । समय-समय पर उज्जैन, महिदपुर और आसपास के कस्बों का दौरा करते। उज्जैन सिंधिया रियासत का प्रमुख नगर था। किसी समय राजधानी था ग्वालियर राज्य की। महिदपुर सिंधिया रियासत का ही हिस्सा था। पंडित धीरे-धीरे होल्कर से भी नज़दीकियाँ बढ़ा रहे थे। सिंधिया उन पर पहले से ही मेहरबान थे।

पूना और झाँसी से बगावत की खबरें आ रही थीं। जखौली-नुनसाई से महोबा तक और कानपुर-कालपी से विद्रोह के समाचार आ रहे थे। तब ही नुनसाई से आए एक विश्वस्त ने पंडित से भेंट की। परस्पर कुशल क्षेम के बाद पंडित ने पूछा-'इटौरा की क्या ख़बर है। परमेश्वरी दद्दा और चतुरनारायण, गोपाल लल्ला और उनकी माँ, कैसे है सब?'

'सब कुशल-मंगल है पंडित जी। आपकी सासू माँ ने एक विद्वान शास्त्री जी को घर पर बुलाया था। लल्ला को विधिवत कर्मकांड की शिक्षा दिलवाना चाहती हैं। वे चाहती हैं कि लल्ला शिक्षित होकर पुरोहित का कार्य करें।' यह सुनकर पंडित को अच्छा नहीं लगा। एक दिन उन्होंने महीपत बाबू से भी परामर्श लिया। तय हुआ कि लल्ला को यहाँ बुलवा लिया जाए। इटौरा संदेसा भेज दिया गया। पर यह भी ध्यान रखा पंडित ने कि परमेश्वरी दद्दा, चतुरनारायण और उनकी माताजी को बुरा न लगे । इसलिए संदेसा यह दिया गया कि यहाँ, उज्जैन-इन्दौर में विद्वान पंडितों की कमी नहीं है। लल्ला की संपूर्ण शिक्षा की विधिवत व्यवस्था हो जाएगी।

महीपत सिंह जैसे मित्रों के अलावा, पंडित के साथ आये दोनों साथी उनके बाल सखा थे। पंडित धर्मदास मिश्र वैद्य थे। जगजीवन चौबे, पूजा-पाठ करने वाले पंडित थे। कर्मकांड के विद्वान और पाक-कला में प्रवीण भी थे। तीनों का भोजन साथ ही बनता। अक्सर देर रात तक बातचीत में बुन्देलखंड की स्मृतियों में खोये रहते।

कभी-कभी पंडित जब उदास होते तो दोनों लोक गीत गाकर मन बहलाने का प्रयास करते। कजरी, बिरहा और फाग गीत गाते थे जगजीवन।

'पंडित, तुम ज्यादा सोचा मत करो। डूरंड भी विल्सन साहब की तरह ही सख्त हैं। हाँ, होल्कर उदार हैं, पर अंग्रेज अपना काम करेंगे।'

'धर्मदास, कहना सरल है। बागियों की पहुँच भी दिल्ली दरबार तक है। पूना के पेशवा भी सहायक हैं। होल्कर भी सख्ती नहीं करेंगे।'

'पंडित, होल्कर भी तब तक उदार हैं जब तक उनकी खिलाफत तक बात न पहुँचे। वह बागियों का नेतृत्व नहीं करेंगे।'

जगजीवन खामोश थे। बागियों की बातें उठने पर वह अक्सर चुप रहते। बागियों के प्रति अपने मित्रों के इस रवैये से वह कभी खुश नहीं रहे। उन्होंने बात को बदलने के लिए पूछा-'धर्मदास, भौजी और लल्ला की कोई खबर मिली।'

'हाँ, संदेसा पहुंच गया था। समाचार मिला है कि पंडित चतुरनारायण दोनों को लेकर चल दिये हैं। आ जाएँगे एक दिन।' पंडित ने जवाब दिया।

'फिर आगे की क्या योजना है?' धर्मदास ने पूछा।

'यहाँ पढ़ने-लिखने की व्यवस्था हो जाएगी। महीपत पहले से यहाँ हैं। धनपत भी डाक्टर हैं। गणपत भी लल्ला की उम्र के हैं। उनकी व्यवस्थित परवरिश हो ही रही है यहाँ। इन्दौर में योग्य शिक्षक होंगे ही। हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत और उर्दू की शिक्षा पर यहाँ विशेष ध्यान दिया जाता है। सरकारी और दरबारी कामकाज में सभी भाषाओं का ज्ञान जरूरी है। सीख ही लेंगे लल्ला भी।' पंडित कह रहे थे।

धर्मदास, पंडित की हर बात का समर्थन करते। जगजीवन एक-दो बार अपनी अनिच्छा व्यक्त कर चुके थे। उनका मन इस बात से व्यथित हो रहा था कि लल्ला अंग्रेजी और उर्दू शिक्षा अर्जित करेंगे। धर्मदास व्यवहार कुशल थे। समझौता करना उनके स्वभाव में था।

कोड़ियागंज और पारसी मोहल्ले में संकरी सड़कों पर सुबह से ज़िन्दगी रफ्तार में आ जाती थी। छोटे-छोटे मकानों की कतार के बीच एक हवेली नज़र आती। छावनी इलाके में बेहतर रख-रखाव था। सड़कें बहुत चौड़ी नहीं तो बहुत संकरी भी नहीं थीं। पंडित को रहने के लिए कोड़ियागंज ही अच्छा लग रहा था। हवेली से बाहर निकलने पर बाजू में ही एक विशाल वृक्ष था। ओटले पर, शाम होते ही मोहल्ले के बुजुर्ग बतियाने के लिए मिलते। बातचीत करते हुए कोई भूले से भी रियासत और अंग्रेजों के विरूद्ध बात नहीं करता। पंडित और धर्मदास भी आकर बैठते थे यहां। महीपत सिंह आते तो उनके साथ कहीं घूमने निकल जाते। जगजीवन तब हवेली में ही रहते। कभी-कभी मान्धाता से आये एक-दो व्यक्ति उनसे मिलने आते थे। पंडित को उन्होंने इसकी भनक नहीं लगने दी थी।

एक शाम, पंडित चतुरनारायण, अपनी बहन राधा रानी और भांजे गोपालप्रसाद को लेकर पहुँच गये। पंडित प्रसन्न थे। एक-दो दिन ठहरकर चतुरनारायण वापस लौट गये।

गणपत सिंह के साथ गोपाल लल्ला की भी पढ़ाई-लिखाई की व्यवस्था हो गई थी। नये लोग, नया शहर और नया माहौल। गोपाल प्रसन्न थे।

दिन बीत रहे थे। गोपाल का मन मालवा में रम गया था। बालपन की उम्र ही ऐसी होती है और बाल-स्वभाव इतना सरल कि जल्दी ही नये माहौल में ढल जाता है। सीखने की ललक और शीघ्र ही समझ जाना किसी विषय को, गोपाल में यह गुण था और पंडित इससे बहुत प्रसन्न थे। गोपाल इस उम्र में भी कुछ अधिक परिपक्व प्रतीत होते थे। देखने में सुन्दर, कद भी अच्छा। इसके विपरीत गणपत सिंह सुस्त और कमजोर थे। गहरा साँवला रंग, कद छोटा और दूसरों की दृष्टि और गोपाल की तुलना में कुरुप ही थे। महीपत सिंह, गोपाल से मिलकर अत्यंत प्रसन्न थे। अक्सर गणपत और गोपाल को साथ लेकर डूरंड से मिलने जाते थे। अंग्रेज अफसर भी गोपाल से प्रभावित थे। राधा रानी को यह मेल-मिलाप नहीं भाता था। कोई नहीं जान पाया था कि अलग-अलग लोगों के मन-मस्तिष्क में कौन-सी योजना आकार ले रही थी। पंडित क्या सोच रहे थे? महीपत के मन में क्या था और राधा रानी क्या सोच रही थीं, पता नहीं चलता था।

उस रोज़, राधा रानी कुछ ज्यादा ही उदास थीं। यों रोज ही बुंदेलखंड की कोई न कोई बात छेड़ देतीं-'यहाँ कुछ भी तो वैसा नहीं है, जैसा हमारे यहाँ होता है। खान-पान, बोलचाल, कपड़ा-लत्ता, रीति-रिवाज कुछ भी वहाँ जैसा नहीं है। कुछ समझ नहीं आता। उस पर ये गोरे फिरंगी। नाक में दम किये रहते हैं।'

'भौजी, अभी समय कितना हुआ है यहाँ रहते। सब ठीक होगा।' धर्मदास कहते। जगजीवन फीकी हँसी हँसते बस।

पर राधा रानी कहतीं-'कुछ कम बखत नहीं, पूरे चार बरस हो रहे हैं यहाँ आये।'

'हाँ, सो तो है। धर्मदास कुछ गाना-बजाना हो जाए। तुम्हारी भौजी को भी अच्छा लगेगा।' पंडित कहते।

धर्मदास और जगजीवन लोक-गीत सुनाते।

एक दिन राधा रानी फिर बोलीं-'अब तो लल्ला की शादी कर दो। उम्र भी हो गई है।'

तभी महीपत सिंह आये। उन्होंने कहा-'क्या उमर है गोपालप्रसाद की।'

'चौदह बरस के हो रहे हैं।' पंडित ने कहा।

'गणपत भी चौदह बरस के हो रहे हैं। बात तो बिल्कुल सही है। अब ब्याह कर ही देना चाहिये दोनों का। हम भी लड़की देख चुके हैं। '

'भैया धर्मदास इटौरा संदेसा भिजवाओ। परमेश्वरी दद्दा अच्छा सा घर द्वार देख लें और पक्का कर लें रिश्ता।' पंडित ने कहा। '

राधा रानी खुशी-खुशी भीतर चली गई। पर महीपत बोले-'भाई जानकीप्रसाद यह क्या? लड़की नहीं देखोगे?'

'क्या करना है देखकर। कुंडली मिलना चाहिए और घर बार पसन्द आना चाहिए, बस। हम कहाँ गये थे राधा रानी को देखने? आप गये थे क्या?'

'हमारे समय की बात और थी। और फिर हमसे यहीं तो चूक हुई थी। क्या करें? रूप-रंग भी तो होना ज़रूरी है।'

'बात तो ठीक है, पर हमारे यहाँ रीति यही है फिर सब कुछ ऊपर वाले पर निर्भर है। वहाँ जो लिखा गया है, तय हुआ है। ईश्वरेच्छा के आगे हम कौन होते हैं।' पंडित ने कहा।

पर महीपत सिंह कुछ और सोच रहे थे।

कुछ दिन और बीते। तभी एक दिन भोला महाराज नुनसाई से इन्दौर पहुँचे। पंडित महीपत के घर गये हुए थे। गोपालप्रसाद भी साथ थे। इधर भोला महाराज परमेश्वरी दद्दा का संदेसा लाए थे। 'इटौरा गाँव के पास लोना का सम्पन्न परिवार है। खेती बाड़ी है। उमारानी कन्या अत्यंत सुशील और गुणी है। लल्ला की उम्र की हैं। भौजी आप और पंडित हाँ कहें तो बात आगे बढ़ाएँ।'

'भोला भैया कुंडली मिल जाए तो हमारी हाँ ही है।'

भोला पंडित की प्रतीक्षा कर रहे थे। उधर पंडित असमंजस में थे। महीपत चाहते थे कि वर के स्थान पर गणपत की जगह गोपालप्रसाद बैठ जाएँ। लड़की वालों ने गोपाल को देखा है और वह उन्हें हमारा पुत्र मानकर ही पसन्द कर चुके हैं। अब सब तुम्हारे हाथ में है जानकीप्रसाद। हाँ कह दो लड़की मंडप में प्रतीक्षा कर रही है। पंडित समझ रहे थे कि यह लड़की वालों का प्रसंग महीपत का बनाया हुआ है। यह महीपत का ही मन है कि गणपत के स्थान पर गोपाल लल्ला को बिठा दिया जाए। लड़की वालों ने गणपत और गोपाल लल्ला, दोनों में से किसी को भी नहीं देखा है। पंडित सोचते ही रहे और महीपत

गोपाल को लेकर विवाह-मंडप में पहुँच गये। महीपत की मित्रता के दबाव में पंडित लाचार थे। गणपत का विवाह सम्पन्न हुआ, यह एक दिखावा था। वस्तुतः विवाह गोपालप्रसाद का हुआ था। गोपाल लल्ला को कोई फर्क नहीं पड़ा। आश्चर्य था यह पंडित के लिए भी। वह घर लौट आये। भोला महाराज से इटौरा का संदेश पाकर पंडित तय नहीं कर पा रहे थे कि क्या जवाब दें।

शेष सभी खुश थे। राधा, धर्मदास और जगजीवन। पंडित ने महीपत के यहाँ का समाचार किसी को नहीं दिया। गोपालप्रसाद भी कुछ नहीं बोले कि वहाँ क्या घटा। राधा खुश थीं, बोलीं-'भोला भैया, चट मँगनी पट ब्याह। राधा रानी की बहू उमारानी। रिश्ता अच्छा है।'

भोला महाराज दूसरे दिन ही लौट गये। पंडित भी महिदपुर गये थे उसी दिन। वहाँ नया मकान बनवा रहे थे वह। महिदपुर से लौटकर वह डूरंड के कार्यालय गये। डूरंड से मिलकर ही वह इटौरा-नुनसाई जाना चाहते थे।

डूरंड मुस्कुराए-'इतनी कम उम्र में शादी।'

'सर, हम लोग यही उम्र सही मानते हैं।'

डूरंड से मिलकर पंडित ने महीपत सिंह को भी सूचना दी। महीपत भी क्या कहते।

दूसरे दिन ही पंडित अपने परिवार और मित्रों के साथ नुनसाई के लिए रवाना हुए। चार अरदली और कुछ सिपाही भी साथ थे। नुनसाई के घर में जमनादास और बेनीप्रसाद ने सारी व्यवस्था कर ली थी। ईसवी सन् 1852 चल रहा था। शादी का दिन परमेश्वरी दद्दा ने तय कर रखा था। मुहूर्त माघ शुक्ल द्वितीया तदनुसार 22 जनवरी 1852 का निकला था। इटौरा, जखौली और गिरथान से सभी बंधु-बांधव भी लोना गाँव पहुँच रहे थे। एक सप्ताह माँगलिक कार्यक्रम विधि-विधान से संपन्न हुए। दूल्हा-दुल्हन, बंधु-बांधव सहित विदा हुए। चार दिन नुनसाई में भी उत्सव होता रहा। पंडित महीपत के घर हुए घटनाक्रम को भूल रहे थे। गोपालप्रसाद का मन बँटा हुआ था।

पंडित नुनसाई से रवाना होने से पहले झाँसी गये। विल्सन से भेंट की। पता चला कि किसी बड़ी बगावत की आशंका है। एक लड़की, नई रानी बनकर झाँसी राजमहल में

आई है। रानी लक्ष्मीबाई। उनके पिता मोरोपंत, तात्या गुरू और पूना में पेशवा के पुत्र नाना साहब बागियों का साथ देंगे। इस आशंका से भी अंग्रेज भयभीत हैं।

'मालवा की कुछ खबर, सर।'

'मालवा में भी वारदातें बढ़ रही हैं। इन्दौर, नीमच और शिवपुरी के हालात भी ठीक नहीं है। अब आपको लौटना चाहिए। सेन्ट्रल प्रॉविंस में भी कुछ ठीक नहीं चल रहा है।'

पंडित नुनसाई लौट आये। पता चला कि इटौरा में पंडित की सासू माँ बीमार हैं। राधारानी, गोपालप्रसाद और बहू को इटौरा जाने के लिए कहकर पंडित इन्दौर रवाना हो गये। धर्मदास और जगजीवन भी उनके साथ थे।

इन्दौर पहुँचकर पंडित अपने कामकाज में व्यस्त हो गये। महीपत सिंह से भी भेंट नहीं हुई थी। उधर, इटौरा में पंडित की सासू माँ का देहान्त हो गया। पंडित जी नहीं जा सके फिर। तेरह दिन का सारा विधि-विधान पूरा होने के बाद भोला महाराज और गोवर्धन इन्दौर आये थे। बहुत दिनों के बाद पाँच बुन्देलखंडी मित्र साथ थे। पंडित और धर्मदास ने जानने की बहुत कोशिश की कि वह दोनों किसलिए मालवा आये हैं, लेकिन दोनों चतुराई से बात को किसी दूसरी दिशा में ले जाते थे। सिर्फ जगजीवन जानते थे असलियत, पर हमेशा की तरह चुप रहते।

महिदपुर में दो मंजिला मकान बन गया था। पाँचों मित्र और महीपत सिंह एक दिन जाकर देख आये थे। अंग्रेज अफसरों के कुछ कार्यालय वहाँ कार्यरत थे। भोला महाराज और गोवर्धन कुछ दिन रूककर माँधाता के लिए रवाना हो गये। वे माँधाता गये हैं, यह बात सिर्फ जगजीवन जानते थे। पंडित भी अपने कार्यालय में व्यस्त रहने लगे। कुछ समय पश्चात गोपालप्रसाद भी अकेले लौट आये। राधा रानी नहीं आईं। उन्होंने संदेसा दिया था कि बहू उमा रानी के गौना की रस्म कुछ समय बाद करवाई जाएगी, तब आने की सोचेंगे। गोपालप्रसाद भी अपनी पढ़ाई में व्यस्त हो गये थे। अक्सर महीपत सिंह के यहाँ चले जाते। गोपाल का मन फिर लगने लगा। पंडित सोचते रहते, समय कितनी तेजी से बदल रहा है। लल्ला जब पहली बार आये थे, तब आठ-दस बरस के रहे होंगे और अब कैसे गठीले जवान हो गये हैं।

शाम का समय था। पंडित कुछ व्यग्र टहल रहे थे। तभी भोला महाराज और गोवर्धन पंडित आ गये। दोनों कुछ बरसों से मालवा में ही घूम रहे थे और एक दिन अचानक

पहुँच गये। पंडित सोच रहे थे कि पता नहीं अब क्या समाचार देंगे। दोनों आकर चुप बैठे हुए थे। पंडित ने ही बात शुरु की।

'बताओ महाराज, क्या ख़बर है उधर की।'

'खास खबर तो बग़ावत की ही है पंडित। खबर है कि मेरठ छावनी में हिन्दू-मुसलमान सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया है। अंग्रेज़ ऐसे कारतूस बाँट रहे थे जिनमें गाय और सुअर की चर्बी मिलाई जाती है। मंगल पांडे नाम के एक सिपाही ने सभी सिपाहियों को अंग्रेजों के विरूद्ध संगठित होकर विरोध के लिए ललकारा है। सभी सिपाही, क्या हिन्दू, क्या मुसलमान सभी छावनी से बाहर निकल आये। नई कारतूस लेने कोई तैयार नहीं है। मेरठ की खबर सब ओर फैल गई है। समूचे सी.पी. और बरार में विरोध हो रहा है। मालवा और बुन्देलखंड तक बात पहुंची है।'

'भोला महाराज विरोध यहाँ भी है। अंग्रेज़ अफसर ने होल्कर महाराज से कहा था कि सआदत खाँ को गोली मार दें। महाराज के सिपाहियों ने ही महाराज के आदेश की अवज्ञा की है। महाराज की सेना पर सआदत खाँ और भागीरथ की बातों का असर होता है। दोनों अंग्रेजों के विरुद्ध हैं और प्रजा पर भी इनका प्रभाव है। दोनों अच्छे दोस्त हैं।' जगजीवन ने जानकारी दी।

पंडित विस्मय से देख रहे थे।

'जानकी पंडित, डूरंड के कुछ विश्वस्त अन्दरूनी तोड-फोड़ में लगे हैं। महाराज भी दोनों को अलग करना चाहते हैं।'

'पंडित, यही समय है सही निर्णय लेने का। अब भी फिरंगियों का साथ दोगे या उनका जिन्हें ये अंग्रेज़ बागी कहते हैं। यह बागी नहीं हैं, क्रान्तिकारी हैं। परतंत्रता नहीं चाहते।' गोवर्धन ने कहा!

पंडित अब भी चुप थे। असमंजस में थे। जानते थे कि अंग्रेजों का साथ छोड़ने का मतलब है अपना, गोपाल लल्ला और परिवार का साथ छोड़ना। उनके लिए गोपाल लल्ला का भविष्य मायने रखता है। वह बगावत नहीं सुलह के पक्ष में थे।

'किस सोच में डूबे हो, पंडित ?' गोवर्धन ने पूछा।

'कुछ नहीं, बस यही कि एक बरस में हम रिटायर हो जाएँगे। उससे पहले लल्ला कहीं कुछ करने लगें तो अच्छा होगा।'

'तो अब आगे पढ़ाने का विचार नहीं है?'

'वह तो है। यही तो सोचते रहते हैं कि आगे क्या। सोच रहे हैं कि महीपत सिंह से भी परामर्श लें। डूरंड साहब ने कहा था कि वे सर रिचर्ड और डॉ. व्यूमाँट से बात करेंगे। नुनसाई की ज़मीन-जायदाद की चिन्ता नहीं है। जमना भैया हैं ही जखौली में। देख-रेख होती रहती है। विल्सन भी हैं, हमेशा सहायता को तत्पर रहते हैं। इसीलिए हम तुम दोनों से भी कहते हैं कि अपना रास्ता बदलो।'

धर्मदास भी पंडित के पक्ष में थे। बोले 'भोला भाई, देख रहे हो न यहाँ का वातावरण। हमें तो कोई परेशानी नहीं है। होल्कर अक्सर डूरंड से विपरीत चलते हैं फिर भी खुश हैं। पर उन्होंने भी बागियों का नेतृत्व करने से मना किया है। मालवा सिंधिया की रियासत है। वे भी अंग्रेजों के साथ हैं।'

'एक अकेले सिंधिया क्या कर लेंगे, धर्मदास। दिल्ली-दरबार विद्रोह में साथ दे रहे हैं। उधर रानी झाँसी कहती हैं कि लड़ाई आर पार की होगी। समझदारी से काम लो भाई।' भोला महाराज ने कहा।

'पंडित कुछ तो बोलो?' गोवर्धन कुछ उग्र हो रहे थे।

'भाई, अब यह हमारा आखिरी साल है। बहुत जल्दी ही शायद उज्जैन जाना होगा। अब अंतिम समय वहीं व्यतीत होगा। वहां सब कुछ शान्त है। अब एक ही इच्छा है कि पोते-पोतियों का सुख मिल जाए। लल्ला व्यवस्थित हो जाएँ।'

भोला महाराज ने थके स्वर में कहा-'गोवर्धन, इन लोगों से माथा-पच्ची करने में कोई लाभ नहीं है। चलो आराम करते हैं। सुबह होते ही निकल जाएँगे हम।'

जगजीवन भी पास आकर बैठ गये। पूछा-'अब कहाँ जाएँगे।'

'कुछ तय नहीं किया है। सुबह सबसे पहले भागीरथ जी से भेंट करेंगे, फिर आगे की देखेंगे।'

पंडित गोपालप्रसाद की प्रतीक्षा कर रहे थे। गोपालप्रसाद का समय आजकल महीपत सिंह के निवास पर ही व्यतीत होता था।

सुबह पंडित स्नान-ध्यान से निवृत होकर बाहर आये ही थे कि देखा भोला महाराज और गोवर्धन पंडित जाने के लिए तैयार बैठे हैं। उन्हें विदा किया और भीतर पहुंचे तो देखा, गोपालप्रसाद भी बाहर जाने के लिए तैयार हैं। पंडित ने उन्हें कुछ देर रुकने को कहा और पूजा-पाठ में व्यस्त हो गये। भोला महाराज और गोवर्धन धर्मदास के साथ बाहर निकले। वहाँ जगजीवन किसी आगन्तुक से बात कर रहे थे। उसने बताया कि 'वह डूरंड के दफ्तर से आ रहा है। नीमच में हालात बेकाबू हो रहे हैं। नगर में भी तनाव है।'

आगन्तुक के पास एक पत्र था जो वह पंडित को देना चाहता था। धर्मदास ने वह पत्र लिया और भीतर आ गये। भोला और गोवर्धन जा चुके थे। गोपालप्रसाद निकलने के लिए उठे और बोले-'बापूजी, हम ओंकारेश्वर जा रहे हैं। कुछ दिन वहाँ ठहर कर माँधाता महाराज से मिलने जाएँगे। जल्दी ही लौट आएँगे।'

पंडित सिर हिलाकर चुप बैठे रहे। गोपालप्रसाद चले गये।

पंडित उदास हो रहे थे। धर्मदास और जगजीवन भी खामोश थे। पंडित के हाथ में पत्र था। वह बार-बार पढ़ते और मोड़कर रख देते। क्या था उस पत्र में? धर्मदास सोच रहे थे और जगजीवन दूर देख रहे थे। कहां होंगे भोला भाई और गोवर्धन। आगे क्या होना है, पता नहीं। पंडित चिंतित भी हैं और निश्चिन्त भी। और कितना सोचेंगे वह। जगजीवन हँस दिये।

***

भाग-10

इन दिनों पंडित जानकीप्रसाद विचित्र मनःस्थिति में जी रहे थे। उस शाम उन्हें जो पत्र मिला था, उसमें ऐसा कुछ नहीं था कि चिन्तित हुआ जाए। खासकर तब, जब वह अंग्रेजों के कृपा पात्र थे। उस पत्र में सिर्फ यह सूचना थी कि डूरंड सूबे के सभी अधिकारियों से मिलना चाहते हैं। नियत दिन, पंडित समय से पूर्व ही पहुँच गए थे। डूरंड ने बैठक में इन्दौर, नीमच, मेरठ, कालपी, झाँसी, कानपुर, ललितपुर और दिल्ली की स्थितियों के बारे में बताया। रानी लक्ष्मीबाई, तात्या और नाना साहब की बगावती योजनाओं पर बात की। उन्होंने कहा कि 'नगर में प्रजा का असन्तोष न बढ़े, इस पर ध्यान दिया जाए। इसकी ज़िम्मेदारी हर अधिकारी की है।' उनके कुछ सहायक प्रत्येक अधिकारी पर पैनी दृष्टि रखे हुए थे। वे जानते थे कि हिमायतियों में भी कुछ लोग संदिग्ध हैं। अंग्रेजों की रीति-नीति के प्रति सहमत लोग बैठक में खामोश बैठे थे। जो सहमत नहीं थे, वे कानाफूसी कर रहे थे। खुलकर विरोध करने से वे बागी मान लिए जाते।

मंगल पाँडे को फाँसी दिये जाने की खबर ने मालवा को भी आंदोलित कर दिया था। होल्कर सतर्क थे। अंग्रेजों के गुप्तचर चारों ओर थे। महल तक उनकी पहुँच थी। इन्हीं लोगों ने सआदत खाँ की सूचना महाराज को दी थी। सआदत और भागीरथ के खुफिया ठिकानों की जानकारी किसी को नहीं थी। इन दोनों के भी कुछ साथी महल में थे। इन्हीं से उन्हें महल और रेसीडेंसी की खबरें मिलती रहती थीं। इन्हीं कुछ साथियों की मदद से वे महाराज को एक हद तक अपनी ओर कर पाए थे। उधर महाराज सआदत और भागीरथ में फूट डालने की हर संभव कोशिश कर रहे थे।

गोपालप्रसाद को ओंकारेश्वर गये हुए एक सप्ताह बीत चुका था। जानकी पंडित चिंतित थे। ओंकारेश्वर के जंगलों में डाकू लुटेरे घूमते रहते हैं, यह जानकारी उन्हें थी। वह सोच रहे थे कि संभव है, बागियों के ठिकाने भी वहाँ हों। हो सकता है कि लुटेरे बागियों की सहायता भी करते हों। लूटपाट और डकैती की वारदातों से डूरंड भी परेशान थे। वह भी सआदत और भागीरथ में अलगाव चाहते थे।

डूरंड के कार्यालय में हुई बैठक के बाद ही जानकी पंडित को उज्जैन में कार्यभार संभालने का आदेश मिला। वह जाने से पहले एक बार डूरंड से मिलना चाहते थे। महीपत सिंह से भी उन्होंने बात की थी। एक दिन वह उनके घर पहुँचे। गणपत सिंह ने पंडित के आने की सूचना महीपत सिंह को दी। धनपत भी थे वहीं। पंडित पहुँचकर ठिठके तो महीपत ने उठकर हाथ थाम लिया और बैठने को जगह दी। पंडित ने बात शुरू की।

'महीपत भाई, हमें दो-चार दिन में उज्जैन के लिए रवाना होना है। सेवा-निवृत्ति अब महाकाल की नगरी में ही होना है।'

'यह तो खुशी की बात है। इतने बुझे हुए से क्यों बोल रहे हो। क्या खुश नहीं हो?'

'नहीं, ऐसी बात नहीं है। हम गोपाल लल्ला के लिए चिंतित हैं।'

'क्यों, क्या कर दिया गोपाल ने?'

'किया कुछ नहीं। कुछ करने लगे, हम यही चाहते हैं। इसलिए जाने से पहले डूरंड साहब से मिलना चाहते हैं। देखें वह क्या सुझाते हैं।'

'ठीक सोच रहे हैं आप। गणपत के विषय में भी हमने उनसे बात की है।' धनपत ने कहा।

'जानकीप्रसाद चिन्ता मत करो। महादेव सब ठीक करेंगे।' महीपत ने दिलासा दी।

'यहाँ की परिस्थितियाँ बदलती जा रही हैं। इन दिनों आशंका बनी रहती है। लल्ला भी ओंकारेश्वर से लौटे नहीं अब तक।'

'अच्छा ही होगा सब। डूरंड साहब अवश्य ही कुछ करेंगे। हम कल ही मिलते हैं उनसे। तुम निश्चिन्त होकर घर जाओ।'

वह उठ ही रहे थे कि बाहर कुछ आवाज़ सुनाई दी। धनपत सिंह खिड़की तक गए। और बाहर झाँककर देखा। कुछ दूरी पर दो आदमी खड़े हुए गा रहे थे।

'कौन है बाहर, धनपत?' महीपत ने पूछा।

'एक अधेड़-सा फकीर लगता है। साथ में एक युवक भी है। कुछ गा रहे हैं दोनों। पर क्या, कुछ साफ सुनाई नहीं दे रहा।'

धनपत सिंह फिर आकर बैठ गए।

'महीपत भाई, जब तक लल्ला लौट नहीं आते। चिंता लगी रहेगी।'

'कल ही किसी को माँधाता राजा साहब के यहाँ भेज देते हैं। गोपाल उनसे मिले ही होंगे। सब खबर मिल जाएगी।'

'हाँ यही ठीक है। तो हम चलते हैं अब।'

'निश्चिन्त होकर। घबराने से कुछ हासिल नहीं होगा। अब जाओ, विश्राम करो। सुबह बात करेंगे। डूरंड साहब से भी भेंट करेंगे।'

महीपत सिंह आराम कुर्सी से उठ ही रहे थे कि बाहर से ज़ोर-ज़ोर से गाने की आवाज़ सुनाई दी। वह ठिठक गए। पंडित भी उठकर खिड़की के पास पहुँच गए। फकीर गा रहा था बेसुरा। नवयुवक दोहरा रहा था, सुर में। तीनों ध्यान से सुनने लगे। दोनों गा रहे थे-

पैदा हुआ, हाँ मैं पैदा हुआ। आदमज़ाद में पैदा हुआ।

माई ने मेरी एक सपना देखा, हाँ जी हाँ सपना देखा।

पैदा हुआ, हाँ मैं पैदा हुआ, जखौली की खोली में पैदा हुआ।

बड़ा हुआ, हाँ जी मैं बड़ा हुआ, पढ़ना-लिखना शुरु हुआ।

गुरुजी के घर पढ़ना-लिखना शुरु हुआ, बड़ा हुआ, हाँ जी मैं बड़ा हुआ।

अब मैं लिखता हूँ, हाँ जी बस लिखता हूँ, जवानी को पढ़ता हूँ, लिखता हूँ, पढ़ता हूँ।

देश को, दुनिया को गढ़ता हूँ, बापूजी आए, मेरे बापूजी आए।

घर-गिरस्थी की चाबी लाए, बात सुनाई,

हत्थे बाँधी एक लुगाई, एक लुगाई, बस एक लुगाई।

शुरु हुआ, फिर शुरु हुआ, जिंदगानी का लफड़ा शुरु हुआ।

लिखना-पढ़ना छूटा, औरों से रिश्ता टूटा, फिर तो मैं भी टूटा।

बना परचूनी, बना दिहाड़ी की दो अन्नी,

दो अन्नी से बढ़कर बना चवन्नी का कारकून,

बापूजी को था कुछ और ही जुनून।

कहते हैं बापू, पूछती हैं माई, मेरे पास नहीं कुछ सफाई,

कुछ कर न सका, कुछ बन न सका।

हथियार नहीं, औजार नहीं, पास भी बस एक कलम, वह भी टूट गई।

ज़िन्दगी की दौड़ में वह भी पीछे छूट गई।

गाते-गाते दोनों आगे बढ़ गए। पंडित, महीपत और धनपत एक-दूसरे देखते रहे। पंडित सोच रहे थे, वह आदमी उन्हीं की कहानी कह रहा था शायद। आदमी से आदमी अलग होता जा रहा है। कौन, कहीं और क्या कर रहा है, कोई नहीं जान पाता। पंडित शायद अपने समय को पढ़ नहीं पा रहे थे। या पढ़कर भी समझना नहीं चाहते थे। घर पहुँचे तो धर्मदास ने पूछा- 'कहाँ गए थे?'

'महीपत सिंह से मिलकर आ रहे हैं। कल डूरंड साहब से मिलना है। फिर उज्जैन के लिए रवाना होंगे।'

सुबह आँख खुलते ही पंडित बीती बातों को सोचते हुए तैयार हो रहे थे। समय से पूर्व ही महीपत के यहाँ पहुँच गए और वहीं से डूरंड के कार्यालय पहुँचे। पंडित ने ही बात शुरू की।

'सर बागियों की वारदातें बढ़ रही हैं। गोपालप्रसाद को अपनी निगरानी में ही कहीं भेज दें।'

'पंडित, अभी गोपालप्रसाद का पढ़ाई करना ही मुनासिब होगा। महीपत बाबू ने भी अपने बेटे के लिए बोला था। डॉक्टर, आपकी क्या राय है?'

'सर, दोनों को डॉक्टरी पढ़ने के लिए कहीं भेजना मुनासिब होगा।' धनपत ने कहा।

'तो ठीक है। आगरा मेडीकल स्कूल में दोनों का दाखिला करवा देते हैं। वहाँ पहुँचकर दोनों मिस्टर रिचर्ड मीड और डॉक्टर व्यूमाँट से मिल लें। वैसे हैं कहाँ दोनों?'

'गणपत तो यहीं पर हैं। गोपाल ओंकारेश्वर गए हुए हैं। बुलवा लेंगे।' पंडित ने बताया फिर तीनों ने डूरंड को धन्यवाद ज्ञापित किया और विदा ली।

जानकी पंडित घर पहुँचे। धर्मदास को सारे समाचार सुनाए। फिर इटौरा, नुनसाई और जखौली संदेसा भिजवा दिया कि वह उज्जैन जा रहे हैं। महीपत सिंह ने उन्हें आश्वासन

दिया कि गोपाल जैसे ही ओंकारेश्वर से लौटते हैं, उन्हें वह उज्जैन भेजेंगे। चंदन सेठ की हवेली में जानकी पंडित के रहने की व्यवस्था होते ही वह उज्जैन पहुँच गए।

ओंकारेश्वर के जंगल में गोपालप्रसाद घूम रहे थे। एक मित्र साथ में था। एक दिन उन्हें गोली चलने की आवाज़ सुनाई दी। वह चौंके और घूम-फिर कर इधर-उधर देखा। पर, कोई दिखाई नहीं दिया। दोनों तेजी से एक ओर चल पड़े। तभी सामने से आकर एक घुड़सवार ने रास्ता रोक लिया। एक गोली फिर चली। घुड़सवार ने गोपाल को धक्का दिया और गोली पास से निकल गई। घुड़सवार ने घोड़े से उतरकर गोली चलने की दिशा में देखने की कोशिश की। अँधेरे में कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। गोपाल ने उठकर घुड़सवार की ओर देखा। लेकिन उसका मुंह गमछे से ढंका हुआ था।

'आप कौन हैं और यहाँ क्या रहे थे?' गोपाल ने पूछा।

'नौजवान, यही सवाल हम तुमसे करना चाहते हैं कि तुम इस जंगल में क्यों घूम रहे हो। पता नहीं तुम्हें, यहाँ डाकू घूमते रहते हैं।'

'तो कहीं आप....?'

'नहीं, हम डाकू नहीं हैं। डरो मत।'

गोपाल को आवाज़ पहचानी सी लग रही थी। लेकिन चेहरा न देख पाने के कारण वह पहचान नहीं पा रहे थे। लेकिन घुड़सवार उन्हें देखते ही पहचान गया था। पर उसने कुछ जाहिर नहीं होने दिया।

'चलो हमारे साथ। यहां रूकना ठीक नहीं है।' घुड़सवार ने कहा।

वह घोड़े की लगाम थामे पैदल ही चल पड़ा। गोपाल अपने मित्र के साथ उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। कुछ दूर पहुँचने पर, एक खंडहर में वह रुक गया। खंडहर में घुड़सवार के कुछ सशस्त्र साथी उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। इन सब लोगों को एक साथ देखकर गोपाल का मित्र डर गया था। वह एक कोने में दुबककर बैठा हुआ था। गोपाल उससे कुछ दूर खड़े रहे। घुड़सवार के साथियों ने दोनों की तलाशी लेने की कोशिश की। घुड़सवार ने उन्हें रोक दिया। तभी मशाल की रोशनी में एक साथी चौंक गया।

'पंडितजी, यह तो गोपालप्रसाद हैं। जानकी पंडित के पुत्र। यहां आपके साथ कैसे?'

तब तक घुड़सवार ने चेहरे से गमछा हटा लिया था। रोशनी में चेहरा देखकर गोपाल चौंकते हुए बोले 'भागीरथ काका आप?'

'हाँ, हम ही हैं। हम तुम्हें पहचान गए थे। इसीलिए यहाँ ले आए।'

'और ये लोग कौन हैं?'

'डरो मत लल्ला। ये हमारे ही साथी हैं। आज़ादी के लिए संघर्षरत फौज के सिपाही।'

'काका, आप तो बादशाह से मिलने दिल्ली गये थे।'

'ठीक कह रहे हो। हम लौट आये हैं मिलकर। अवसर की प्रतीक्षा है। पर तुम्हारा यहाँ घूमना ठीक नहीं है। हमारे साथ चलो, हम तुम्हें माँधाता राजा साहब के यहां पहुंचा देंगे।'

तभी बाहर से अचानक एक व्यक्ति ने प्रवेश किया और गोपाल पर तलवार से वार किया। भागीरथ ने उसका प्रयास विफल कर दिया। भागीरथ के साथियों ने उसे पकड़ लिया।

'कौन हो तुम!' भागीरथ ने पूछा।

'पंडितजी, यह डूरंड की फौज का सिपाही लग रहा है। अंधेरे का लाभ उठाकर हमारे बीच आ गया है शायद।'

'हाथ-पैर बाँधकर इसे पड़ा रहने दो यहाँ और आगे बढ़ो।'

भागीरथ, गोपाल को साथ लेकर चल पड़े माँधाता की ओर। गोपाल का मित्र इस बीच कहाँ गया, पता नहीं चला।

पंडित जानकीप्रसाद की बेचैनी बढ़ती जा रही थी। वह चिंतित थे। सुन रहे थे कि ओंकारेश्वर के जंगल में लूट की वारदातें बढ़ रही हैं। तब ही उन्हें इन्दौर से यह खबर भी मिली कि नवलखा में सआदत खाँ घूम रहे थे। अकेले ही। अवसर पाकर डूरंड ने उन पर पीछे से तीन फायर किये। खाँ साहब जीवित नहीं बच पाये। फिरंगियों ने नगर में प्रचार किया कि वह डाकुओं से मिले हुए थे और एक मुठभेड़ में मारे गये। नगर में तनाव है और खाँ साहब के साथी अकबर खान ने होल्कर को चेतावनी दी है। उसका मानना है कि होल्कर ने ही खाँ साहब को मरवाया है। अकबर और उनके साथी डूरंड पर भी

हमला करने की योजना बना रहे हैं और माँधाता की ओर गये हैं। डूरंड उज्जैन भाग आया है।

रात ढल रही थी। डूरंड कुछ सिपाहियों के साथ शहर कोतवाल के यहाँ पहुँचा था। कहाँ रहेगा वह ? शहर से दूर हवेलियों में या शिप्रा तट की छतरियों में। कोतवाल ने बताया कि 'सर, ये सारी जगहें सुरक्षित नहीं रहीं अब।'

'सेठ गंगाधर की हवेली?' डूरंड ने पूछा।

'सर, सेठ भी यहाँ से भाग गया है।'

'पर किसलिए?'

'सर, आसपास की खबरों से परेशान था वह। सोचा होगा कि कहीं उसके यहाँ भी लूट की वारदात न हो जाए।'

'कहाँ गया है? कुछ पता चला।'

'खबरियों से मालूम हुआ है कि नीमच की ओर गया है।'

'अब क्या करें हम?'

'आप यहाँ ठहर सकते हैं। यहाँ कोई खतरा नहीं है। बस एक बात खटक रही है।'

'क्या?'

'कुछ दिन पहले भागीरथ पंडित और अकबर खान यहां आए थे। सेठ गंगाधर के यहाँ ठहरे थे। सेठ तब से ही गायब है।'

डूरंड अब नई सोच में डूबे थे। यहाँ रूकना ठीक नहीं रहेगा।

लेकिन इन्दौर पहुँचकर भी डूरंड की चिंताएँ कम नहीं हुई थीं। आखिर सेठ गंगाधर और भागीरथ में क्या बातें हुई होंगी? अब, अकबर भी भागीरथ के साथ है। भागीरथ की अपनी फौज है। होल्कर के सिपाही भी उसके साथ हैं। सेठ गंगाधर के रिश्ते पंडित से भी हैं। होल्कर और सिंधिया तक उसकी पहुँच है। हम भी उस पर भरोसा करते रहे हैं अब तक। सेठ गंगाधर एक चालाक खिलाड़ी हैं। डूरंड यही सोच रहे थे।

राजा माँधाता के यहाँ अज्ञातवास बिताकर गोपालप्रसाद लौट आए थे। महीपत से पिता के समाचार जानकर वह चिंतित और दुखी हो गए। इसीलिए ओंकारेश्वर की घटना के विषय में यहाँ किसी को कुछ नहीं बताया और उज्जैन रवाना हो गए। मेडीकल स्कूल में दाखिले की खबर से प्रसन्न वह उज्जैन पहुँचते, उससे पहले ही ओंकारेश्वर-हमलों की खबर वहाँ पहुँच चुकी थी। उनके मित्र ने वहाँ पहुँचकर धर्मदास और जगजीवन को पूरा वृतांत सुना दिया था। यह भी बताया था कि गोपाल माँधाता में हैं सकुशल। जानकी पंडित को यह समाचार नहीं दिया था तब। अब, बातों-बातों में धर्मदास ने जंगल वाली घटना सुनाई। गोपाल ने बताया कि पंडित भागीरथ ने उनकी रक्षा की।

'भागीरथ वहाँ कैसे पहुँचे? वह तो दिल्ली गए हैं।' जानकी पंडित ने आश्चर्य व्यक्त किया।

'वह दिल्ली से लौट आए हैं बापूजी। ओंकारेश्वर के जंगलों में ही उनका डेरा है। होल्कर के कुछ सिपाही भी उनके साथ हैं।'

'तुम पर हमला किसने किया था लल्ला?'

'उसका पता नहीं चल पाया। पर हमलावर को भागीरथ काका के सिपाहियों ने पकड़ लिया था। इन्दौर का ही कोई गुप्तचर था। वे लोग सोच रहे थे कि डूरंड का सिपाही है। पर डूरंड का सिपाही हम पर हमला क्यों करता?'

'अब, यह सब मत सोचो। देवी माँ और भोलेनाथ की कृपा है, जो तुम बच गए।'

'काका ने ही मुझे राजा माँधाता के यहाँ छोड़ा था। वहाँ से तुरंत लौट गए थे वह। वे नहीं चाहते थे कि उनके कारण राजा साहब पर कोई मुसीबत आए।'

कुछ दिन बाद ही गोपालप्रसाद ने आगरा के लिए प्रस्थान किया। महीपत के पुत्र गणपत सिंह भी साथ में थे। आगरा पहुंचकर सदाशिव राव से भेंट हुई। वह भी मालवा से ही थे।

उज्जैन में पंडित अक्सर धर्मदास और जगजीवन से पुराने दिनों की बातें याद करते हुए भावुक हो जाते थे। विल्सन और डूरंड के प्रति अपनी कृतज्ञता बार-बार जतलाते थे। महीपत सिंह और धनपत सिंह के प्रति भी गर्व-मिश्रित प्रसन्नता का अनुभव करते थे। राधा रानी की याद में उदास हो जाते। झाँसी के समाचारों से भी व्याकुलता बढ़ रही थी। खबर थी कि रानी लक्ष्मीबाई ग्वालियर पहुँच गई हैं। जयाजी राव सिंधिया के कई दरबारी और सैनिक रानी से मिल गए थे। पर, झाँसी बदहाल था। वह विल्सन को

धन्यवाद देते थे कि समय रहते उन्होंने मालवा भिजवा दिया। प्राचीन नगरी और सप्तपुरियों में से एक अवन्तिकापुरी आने का सौभाग्य मिला। अपने भाग्य को बार-बार सराहते थे पंडित।

जयाजीराव के पिता दौलत राव के महाराज बनने से पूर्व उज्जैन ही ग्वालियर राज्य की राजधानी था। दौलतराव इसे ग्वालियर ले गए। महारानी बायजाबाई को उज्जैन से लगाव था। उन्होंने यहाँ हवेलियाँ और महल बनवाए। गोपाल मंदिर का निर्माण करवाया। छत्री चौक बना। बस्तियां बनीं, बाजार बने। इसी राजघराने की कृपा है कि सरोवर से लगी सारी ज़मीन उनके परिवार की है। खेती हो रही है। धर्मदास देखभाल करते हैं।

उज्जैन आकर पंडित की दिनचर्या बदल गई थी। सुबह नदी की ओर निकल जाते थे। स्नान-ध्यान, पूजा-पाठ और मंदिर-दर्शन के बाद घर आते। कुछ समय बाद कार्यालय। अवकाश में धार्मिक पर्यटन। बरस बीते, लल्ला के विवाह के बाद राधा रानी उज्जैन नहीं आईं। संदेश भिजवाया है कि बहू का गौना होना है। और बहू का गौना तब ही करवाएँगे, जब लल्ला आगरा से लौट आयेंगे।

झाँसी से भी निरन्तर जो खबरें मिलतीं, पंडित उदास हो जाते। बड़ी खबर थी कि रानी लक्ष्मीबाई ने वीर गति प्राप्त की।

एक दिन, पंडित आँगन में लेटे हुए थे। धर्मदास कुछ देर खामोश देखते रहे। फिर उन्होंने पूछा-'पंडित क्या देख रहे हो?'

'तारे गिन रहा हूँ। और क्या करूँ अब?'

'अमावस की रात में तारे?' जगजीवन हँसे।

'वही तो।' पंडित झुंझला गये थे।

'कुछ ठीक नहीं लग रहा। है ना। न यहाँ, न वहाँ। कहीं कुछ ठीक नहीं है। मौसम भी ठंडा है अभी।' धर्मदास बोले।

'अभी बैसाख का महीना है। यहाँ ठंडक तो रहेगी अभी। मालवा में मौसम की चाल कुछ अलग ही रहती है।' जगजीवन ने कहा।

'हां भाई जगजीवन, वही तो सोच रहे थे हम आकाश को देखकर। बारिश के दिनों में देखना आकाश की ओर। तब कहोगे तुम सतरंगी बादलों का इंद्रधनुष। तुम हमारी मनोदशा नहीं समझ रहे हो।'

'अरे जानकी, तुम तो बुरा मान गये।' तब ही धर्मदास गुनगुनाने लगे-'अति सूधो सनेह को मारग है जहँ नेकु सयानय बाँक नहीं......'

इसी तरह बतियाते हुए तीनों समय बिता रहे थे। पंडित जब कार्यालय में होते और धर्मदास सरोवर के समीप खेत की ओर चले जाते थे, तब जगजीवन कहाँ रहते हैं, दोनों जान नहीं पाए। जगजीवन कभी नदी घाटी की बस्ती तो कभी घाट पर बनी छतरी पर होते थे कुछ लोगों के साथ। वहाँ मंत्रणा चल रही होती थी उन लोगों में।

पंडित वैराग्य भाव में डूबने लगे थे अब। नौकरी अब कुछ दिनों की है। सेठ गंगाधर लौट आए थे। अक्सर मिलने चले आते। धर्मदास पुरानी यादों को दोहराते रहते। पंडित कभी-कभी महाकाल मंदिर के समीप व्यासजी महाराज के यहाँ सत्संग में शामिल होते। ज्योतिष, कर्मकांड और रीति-रिवाजों पर बतियाते रहते दोनों। व्यासजी महाराज के पुत्र भी ज्योतिष विद्या में पारंगत थे। कभी-कभी वह भी चर्चा में भाग लेते थे। साथ ही महाकाल की संध्या आरती में शामिल होते। मंदिर बाहरी आक्रमणकारियों ने कई बार ध्वस्त किया था। जयपुर के महाराजा जयसिंह और मराठा सरदारों ने जूना महाकाल और महाकाल मंदिर का पुनर्निर्माण करवाया था। फिर बायजा बाई के प्रयत्नों से मंदिर की सुन्दरता और भी निखर गई थी। इन्हीं मंदिरों में पंडित अपना समय व्यतीत कर रहे थे। सेठ गंगाधर आते, मन टटोलते पंडित का, पर पंडित कुछ ज्यादा ही सतर्क हो गये थे। बहुत दिनों से नदी घाटी की बस्ती जाना भी नहीं हुआ था। उन्हें धर्मदास के साथ ही समय व्यतीत करना अच्छा लगता था। व्यासजी महाराज का सत्संग भी उन्हें अत्यन्त प्रिय था।

पंडित एक शाम ऐसे ही धर्मदास और जगजीवन के साथ बैठे बातें कर रहे थे। सेठ गंगाधर और जगजीवन की बातों से वह असहज हो जाते। उन्हें ये जानकारी मिली थी कि सेठ गंगाधर अंग्रेजों के विरूद्ध चल रही बगावती गतिविधियों में बिचौलिया बने हुए हैं। यही अन्देशा उन्हें नदी घाटी की बस्ती के कुछ लोगों के विषय में भी था। पर वह लाचार थे। सोचते, जगजीवन यहाँ आने से पहले तो ऐसे नहीं थे। जगजीवन भी समझ

रहे थे कि पंडित की भावनाएँ अब उनके प्रति मित्रवत नहीं रहीं। हालांकि दोनों के बीच अब तक खुलकर बात नहीं हुई थी इस विषय में। धर्मदास अक्सर दोनों को अलग-अलग समझाते थे। उन्हें विश्वास था कि पंडित किसी भी गतिविधि की जानकारी अंग्रेज़ अफसरों तक पहुँचाने का जोखिम नहीं उठाएँगे।

बाहर दालान में बैठे हुए तीनों मित्र भीतर जाने को उठे ही थे कि महीपत सिंह और धनपत सिंह पहुँचे। बाहर छिड़काव हो जाने से हवा महक रही थी। महीपत ने कहा-'जानकीप्रसाद खुशखबरी है।'

तीनों मित्रों ने महीपत की ओर सवालिया नज़र से देखा।

'भाई गोपालप्रसाद अव्वल आए हैं। गणपत भी उत्तीर्ण हो गए हैं। डॉ. कुक ने वजीफा स्वीकृत करवाया है गोपालप्रसाद के लिए। इन दोनों के साथ इधर का ही एक लड़का है। इन तीनों को उच्च शिक्षा के लिए ग्रांट मेडीकल कॉलेज, बम्बई में दाखिला मिला है।

तीनों मित्र प्रसन्न हुए। पंडित ने कहा-'महीपत बाबू, हम भी कल सेवानिवृत हो रहे हैं।'

'फिर आगे की क्या योजना है?'

'कुछ नहीं। अब तो बस ईश्वर की सेवा ही करना है। अनन्तपेठ में कुटिया बनवाई है अब वहीं पर निवास रहेगा।'

महीपत विदा हुए। वे तीनों भी विश्राम के लिए भीतर चले गये। दूसरे दिन इटौरा से संदेसा मिला कि राधा रानी की मृत्यु हो गई है। पंडित यह जानकर विरक्त से हो गए थे। कुटिया में पहुँचकर उन्होंने सन्यासी जीवन अपना लिया था। पूजा-पाठ, यज्ञ-हवन, गीता, भागवत और दुर्गा सप्तशती का पाठ प्रतिदिन नियम से करते। अपने हाथ से बनाया हुआ भोजन ही ग्रहण करते। प्रतीक्षा थी बस गोपालप्रसाद की। धर्मदास ने भी सरोवर के पास ही अपना निवास बना लिया था। वहाँ रहकर खेत की निगरानी करते। प्रतिदिन पंडित की कुटिया पर आते रहते। जगजीवन भी अब नदी घाटी बस्ती में रहने चले गए थे।

मौसम बदल रहा था। पर ठंड का असर अभी था, लेकिन गरम कपड़ों की जरूरत नहीं थी अब। उधर नुनसाई-जखौली में फसल कटने की तैयारियाँ चल रही होगी। धर्मदास आए तो उनसे पूछा-'गाँव से कोई खबर, धर्मदास?'

'गाँव से तो अभी कोई समाचार नहीं मिला, पंडित। हाँ, महीपत बाबू आएँगे किसी दिन। संदेसा मिला है।'

'चलो, अच्छा है। शायद लल्ला का कुछ संदेसा ला रहे होंगे।'

'हो सकता है। दो-तीन दिन पहले ही बम्बई से वापस आये हैं महीपत बाबू।'

'बस, अब तो लल्ला के लौटने की प्रतीक्षा है।'

'पंडित, इतना क्यों सोच रहे हो। अभी एक बरस और है। लौट आएँगे। उन्हें इन्दौर में आकर सूचना देनी होगी, फिर उज्जैन आएँगे।'

समय बीत रहा था और पंडित बढ़ती हुई बेचैनी में जी रहे थे।

***

भाग-11

बम्बई। उन्नीसवीं शताब्दी का एक शहर। मछुआरों की बस्ती, बोरीबंदर से बोरीवली तक एक नई पहचान पा रही थी। शहर भागते-दौड़ते महानगर के रूप में नई और विदेशी, पुरानी और पारंपरिक स्थापत्यकला से सँवर रहा था, जिसका कोई इतिहास नहीं था। लेकिन आसपास इतिहास बिखरा पड़ा है। मेवाड़-मारवाड़ और काठियावाड़ के राजघरानों की तरह ही मराठा राजघरानों का स्थापत्य रायगढ़, सतारा और पूना में आज भी दिखाई देता है। पेशवा के सरदारों ने बुंदेलखंड, ग्वालियर और मालवा तक मराठा राज्य कायम किए। बम्बई के आसपास बचे हुए अवशेष, बोलते-पुकारते से खंडहर, संवाद के लिए आतुर किले, महल, प्राचीरे और गुंबद ठहरने के लिए विवश करते हैं। सहयाद्रि की पहाड़ियाँ, गोदावरी के तट, त्र्यंबकेश्वर मंदिर और दूर-दूर तक फैला हुआ समुद्र। उठती-गिरती लहरें चट्टानों से टकराती हैं और किनारे पर बालू रेत के विस्तृत मैदानों पर कितने ही पद-चिन्ह बनकर मिट जाते हैं। आने वालों को बेसुध करने के लिए बहुत कुछ है यहाँ।

ग्रांट मेडीकल कॉलेज के तीन विद्यार्थी, गणपत सिंह, सदाशिव और गोपालप्रसाद मुखिया अवकाश के क्षणों में यहाँ बैठते हैं। समुद्र की लहरों के सम्मोहन में डूबे ये तीनों युवक दूर तक देखते। मछुआरों की छोटी-छोटी नावें को जाते हुए देखकर वे यादों में खो जाते। उन्हें याद आते शिप्रा के घाट, नर्मदा का चौड़ा पाट और स्नान करते हुए पंडे-पुजारी। नर्मदा, चम्बल, शिप्रा और बेतवा की समुद्र से बेमानी तुलना करके हंसते। देर तक यादों में डूबे रहना और लहरों के सफर को देखते रहना उन्हें अद्भुत आनंद देता। कोई बंदिश नहीं इस पर। मछुआरों के गीत सुनते तो कजरी, होरी ओर बिरहा-गीतों की याद आती।

इसी समुद्र के किनारे-किनारे और फिर दूर-दूर तक फैल रही थी बम्बई। ब्रिटिश स्थापत्य की इमारतें, पुर्तगाली, पारसी और गुजराती पहचान से बस रही बस्तियाँ और बाज़ार वहाँ थे। पुर्तगाली और अंग्रेज आये थे व्यापारी बनकर और मालिक बन गए। पारसियों और गुजरातियों ने शहर बसाया। पूना में लाचार पेशवा हैं। लेकिन बम्बई से पूना, झाँसी और मालवा तक लोग संगठित हो रहे हैं स्वतंत्रता के लिए। अंग्रेज और उनके चापलूस

उन्हें बागी कहते हैं। लक्ष्मीबाई की शहादत ने एक नया जोश भी दिया है। नये-नये दस्ते, जवानों के समूह और क्रांतिकारियों के संगठन हथियार बना रहे हैं। हथियार लूट रहे हैं।

बंबई और आसपास, इन दिनों दयानंद सरस्वती का नाम था। स्वामीजी स्त्रियों के सम्मान और उनकी शिक्षा के लिए कार्य कर रहे थे। जगह-जगह उनके प्रवचन होते। क्या बूढ़े क्या जवान, शहर और गाँव सब जगह वह लोकप्रिय थे। गोपालप्रसाद भी उनसे प्रभावित हुए। उनसे वह अक्सर भेंट करते थे। अपने मित्रों के साथ उनके प्रवचन सुनते और उनके विचारों को आत्मसात करने का अपने आप से वादा करते। लेकिन सत्संग से बाहर आते ही समाज-सुधार का नशा उतरने लगता। अंग्रेज़ प्रोफेसर्स की कक्षाएँ, अंग्रेजों से दोस्ती और नये विचारों का बंधन साथ हो जाता। फिर घर की याद आती और सारे विचार-उपदेश हवा हो जाते। एक अजीब कशमकश बनी रहती।

सदाशिव और गणपत की दुनिया अलग थी। गणपत अपनी किताबों में डूबे रहते। सदाशिव उन जलसों में भी शामिल होते जहाँ राजनीतिक दिलचस्पी वाले ही जुड़ते थे। स्वामी दयानंद, किताबें, अंग्रेज और आज़ादी को लेकर तीनों में अक्सर बहस होती रहती। राजा राममोहन राय, स्वामी आत्मानंद और पांडुरंग के नाम भी बम्बई के जलसों में गूंजते रहते थे। तीनों की बहस में गोपाल स्वामी दयानंद की तारीफ करते, तो सदाशिव आत्मानंद और पांडुरंग का पक्ष रखते। गणपत अक्सर खामोश रहते थे। पर एक दिन जब गणपत सिंह बोले तो शेष दोनों के पास कोई जवाब नहीं था।

'भाई तारीफ करना एक बात है और उस पर अमल करना दूसरी। इन महापुरूषों ने जो कहा, वैसा ही जीवन जिया है। हम क्या कर रहे हैं?' गणपत ने कहा।

'तुम हमसे क्या करवाना चाहते हो।'

'राजा राममोहन की बात ज्यादा पुरानी नहीं है कि उन्होंने इसी सरकार से सती प्रथा बंद करायी। हमने क्या किया? जात-पात, बाल-विवाह और अछूत समस्या आज भी है। स्त्रियों पर अत्याचार आज भी हो रहे हैं। विधवाओं की ज़िन्दगी क्या है, कैसी है, हम नहीं जानते क्या? झाँसी-रानी विधवा हुई, पर लड़ती रहीं। औरों ने क्या किया, यह छोड़ो। यह कहो कि हम क्या कर रहे हैं?'

'बात तो सही है इनकी, गोपाल। गलत नहीं कह रहे ये।'

'क्या सही है? हम क्या गलत कर रहे है?'

'भूल गए। तुमने किस उम्र में ब्याह किया था। बाल-विवाह था वह भी। गाँव में आज भी अछूतों की बस्ती गाँव के बाहर होती है। क्यों नहीं रोकते यह सब।'

'गणपत, हम इसीलिए स्वामी आत्मानंद की बात मानते हैं। वह कहते हैं कि बिना आज़ादी किसी भी प्रकार उन्नति संभव नहीं है। सही कहते हैं वह।' सदाशिव ने कहा।

'यह भी मत भूलो कि आज अखबार निकल रहे हैं, रेल चल रही है, मोटरें चल रही हैं। यह सब अंग्रेजों के कारण हुआ है। वे न होते तो हम आज यहाँ नहीं होते।' यह गोपाल का तर्क था। बहस का कोई अंत नहीं था।

परीक्षाफल आ गया था। तीनों मित्र पास हो गए थे। तीनों ने एक दूसरे को बधाई दी। दूसरे दिन दोनों डॉक्टर के कक्ष में बैठे थे। डॉक्टर हंटर ने एक और जानकारी दी। 'गोपाल, उज्जैन से खबर आई है कि आपके फादर रिटायर हो गए हैं। और एक सेड न्यूज है। आपकी माँ की डेथ हो गई है।'

'सर, आपके पास कहाँ से खबर आई यह?'

'इन्दौर से महीपत सिंह आए हैं।' उन्होंने ही खबर दी है।

'सर, मैं तुरन्त जाना चाहता हूँ।'

'महीपत सिंह जी आते ही होंगे। फिर प्रोग्राम बना लेना।'

गोपालप्रसाद माँ की मृत्यु के समाचार से विचलित हुए। वह अपने कमरे में गुमसुम बैठे थे। महीपत सिंह आकर मिले उनसे। उन्होंने ही बताया कि राधा रानी की मृत्यु गाँव में ही हुई है। अंतिम समय पंडित भी नहीं थे उनके पास। गाँव से मामा लोग अस्थियाँ लेकर उज्जैन पहुँचेंगे। बाकी सभी कार्यक्रम उज्जैन में ही होंगे। डॉक्टर हंटर ने कहा है कल ही सर्टीफिकेट और रिजल्ट शीट मिल जाएगी। फिर हम उज्जैन रवाना होंगे।

तीनों मित्र 1 अगस्त 1864 को महीपत सिंह के साथ उज्जैन के लिए रवाना हुए। उज्जैन पहुँचकर माँ के सभी कार्यक्रम संपन्न किये। उनके पहुँचने के साथ ही जंगल में लगी आग की तरह खबर फैल गई थी कि गोपालप्रसाद डॉक्टर बनकर लौट आए हैं। इंदौर में महीपत सिंह के घर में भी सब खुश थे कि गणपत सिंह डॉक्टर हो गए हैं। अब पिता के साथ ही पुत्र भी डॉक्टर थे। गोपालप्रसाद और गणपत सिंह ने इंदौर में डॉक्टर व्यूमाँट के

कार्यालय में पहुँचकर उनसे अपने सर्टिफिकेट्स के साथ भेंट की। उन्होंने दोनों को रेसीडेंसी अस्पताल में नियुक्ति दे दी थी। पदभार संभालने के बाद दोनों डूरंड से मिले और उनका आभार व्यक्त किया। फिर गोपाल उज्जैन आ गए।

डॉक्टर गोपाल के उज्जैन पहुँचते ही उनसे मिलने बहुत लोग पहुँचे थे। सेठ गंगाधर भी। रतलाम, जावरा, अमलेटा, राजगढ़, खिलचीपुर और सैलाना के राजघराने के लोग, ठिकानेदार और आसपास के जागीरदार मिलने आए।

'डॉक्टर साहब उज्जैन मालवा का महत्वपूर्ण शहर है। ग्वालियर राज्य की राजधानी भी रहा है। लेकिन यहाँ कोई अस्पताल नहीं है। अब आप सरकार से अगर आग्रह करेंगे तो शायद यहाँ भी अस्पताल खुल जाए।' सेठ गंगाधर ने कहा।

और भी लोगों ने इसी प्रकार की बातें कीं। डॉक्टर गोपाल ने आश्वासन दिया कि वह बात करेंगे। उन्होंने सभी लोगों से आग्रह किया कि वे इन्दौर आकर रेसीडेंसी में भी अपना प्रस्ताव रखें।

इस मुलाकात के बाद ये सभी लोग डॉक्टर गोपाल के निजी मित्र हो गए थे। इन रईसों की अक्सर दावतें होती रहती थीं। अंग्रेज अफसरों के साथ ही गोपाल भी इन दावतों में सम्मिलित होते रहते थे। एक नया समूह बन रहा था। मिस्टर डूरंड इन दावतों में होने वाली बातों से अत्यंत प्रसन्न थे। नये समीकरण बन रहे थे। हालाँकि वह सेठ गंगाधर के प्रति सतर्क रहने की चेतावनी भी देते रहते थे।

राजवाड़ा, मल्हारगंज और नवलखा के जंगलों में डूरंड की सेना हमेशा गश्त कर रही थी। रानी लक्ष्मीबाई की शहादत के बाद दिल्ली के बादशाह भी बंदी बना लिए गये थे। रानी के वफादार गौस खान मारे जा चुके थे। झाँसी अंग्रेजों के नियंत्रण में था पर बदहाल। अंग्रेज फूट डालो और राज करो की नीति का पालन करते हुए हिन्दूओं को मुसलमानों से अलग-थलग करने की कोशिश करते रहते। अकबर खान और भागीरथ पर यह बदनीयत काम नहीं कर पा रही थी। फिर भी, जयचन्दों की कमी नहीं थी। पूरे देश में, कहीं भी और मालवा में भी। बादशाह को रंगून जेल भेजने और शाहजादों को खुले आम मार देने की घटना से लोग व्यथित थे। दिल्ली, मेरठ, कानपुर, इलाहाबाद, कालपी, झाँसी, पूना और इन्दौर होते हुए फिरंगियों के प्रति नफरत की आँच उज्जैन पहुँची थी। डूरंड की नज़र यहाँ लगी हुई थी।

डॉ. गोपालप्रसाद ने कोड़ियागंज में एक मकान खरीद लिया था। उनका जीवन रईसों और ठिकानेदारों की सोहबत में रजवाड़ों की विलासिता के रंग में रच बस गया था। उधर इटौरा में परमेश्वरी दद्दा की मृत्यु के बाद जब राधा रानी भी चल बसी और लोना में उमा रानी के पिता भी नहीं रहे तब उमा रानी अपने भाई के साथ इन्दौर आ गई थीं।

फिक्रमंद पंडित जानकीप्रसाद को नींद नहीं आती। सोते-जागते एक ही सपना देखते रहते कि वह नुनसाई के खेत-खलिहान में हैं। एक बालक उनकी गोद में खेल रहा है। तभी बाहर के शोर से उनकी नींद टूटती है। 'सबको भेजो सात समंदर पार।' पंडित उठकर टहलने लगते हैं।

एक दिन धर्मदास सूचना देते हैं-'पंडित, गोपाल लल्ला ने वही मकान खरीद लिया है जहाँ हम लोग रहा करते थे। बहू रानी लोना से आ गई हैं। प्यारेलालजी छोड़कर गये हैं। वह कुछ दिनों में शायद फिर आयें। पंडित प्रसन्न हुए, पर चुप रहे।

'पंडित, फसल कटाई के दिन हैं। शायद इसीलिए प्यारेलाल जी गये होंगे। अपने खेत पर भी कटाई होनी है। सेठ गंगाधर से कहें मजदूरों के लिए या नदी घाटी की बस्ती से पुराने मजदूरों को ही बुला लें।'

'अब जो भी करना है तुम्हीं करो। खेतों के अब तुम ही मालिक हो। लल्ला होते तो वही कुछ करते।' पंडित ने कहा। पर धर्मदास कुछ नहीं बोले।

गोपालप्रसाद रेसीडेंसी अस्पताल से सीधे कोड़ियागंज अपने घर नहीं पहुँचते। पहले कुछ समय महीपत के घर पर रूकते। महीपत ने भी कोड़ियागंज में नया घर ले लिया और अब सब उसी में रह रहे थे।

धर्मदास की बातें सुनकर पंडित को तसल्ली हुई। इत्मीनान से वह कुछ सामान सहेजने लगे। जिन धार्मिक पुस्तकों का वह नियमित पाठ करते थे, कुछ समय से उन्हें हाथ से लिखकर अलग रखते जाते थे। अब उन्हीं पुस्तकों की हस्तलिखित प्रतियों को भी करीने से बाँधकर एक झोले में रख लिया था। गीता, भागवत और दुर्गा सप्तशती। पुराण बाँचने वाले पंडित शालिग्राम और रेवाराम उनके अभिन्न हो गये थे आजकल उनके साथ संध्या भजन-कीर्तन होता रहता। इसी में उनका मन लगा रहता। फिर भी गोपाल के न आने से खिन्न थे वह। शरीर से दुर्बल अवश्य हो गये थे, लेकिन दिल, दिमाग और वाणी जोश से भरी हुई थी।

एक दिन महीपत सिंह उनकी कुटिया पर आये। उनके साथ डॉ. धनपत, उनकी बहन और भांजी भी साथ थे। परिवार तीर्थ यात्रा से लौटा था और अब शिप्रा स्नान और देव-दर्शन की अभिलाषा थी। उज्जैन आकर वह भी पूरी हो रही थी। पंडित महिदपुर की ज़मीन और मकान को निकालने का मन बना चुके थे। यही सोच कर उन्होंने सब कागज़ तैयार कर रखे थे। मकान और ज़मीन का सौदा वह अलग-अलग करना चाह रहे थे। फिर सोचा मालवा और बुन्देलखंड में जो कुछ है वह तो गोपाल लल्ला का ही है। उन्हें कोई कन्या नहीं थी। महीपत की लड़की को वह पुत्रीवत ही मानते थे। अतः महिदपुर का मकान उन्होंने महीपत की बेटी के नाम कर दिया था। ज़मीन के कागज़, महीपत की ही सलाह पर अपने पास रखे कि डॉ. गोपाल जो चाहेंगे, वैसा करेंगे।

महीपत ने पंडित को दिलासा दी कि वापस लौटकर लल्ला को शीघ्र ही उज्जैन भेजेंगे। पंडित संतुष्ट थे। उम्र के अंतिम पड़ाव पर उन्हें कुछ दान करने की खुशी भी थी। सन्यासी जीवन जीते हुए भी अब तक जीवन के सुख-दुख के सोच-विचार से मुक्त नहीं हो पाए थे। जहाँ राधा के न होने की असलियत अवसाद से घेर लेती थी, वहीं लल्ला के पिता न बन पाने का दुख भी उदास कर देता था। निरन्तर सोचते रहते थे कि वंश-वृद्धि का सुख पाने से पहले ही कहीं जाने का दिन न आ जाए। कभी यह सोचते कि उमा रानी की कोई संतान जीवित नहीं रही, तो इस पर किसी का कोई वश नहीं, पर, इसे भाग्य के भरोसे छोड़ देना भी उन्हें सहन नहीं था। उन्हें अपने कुटुंब का उत्तराधिकारी चाहिये था। और उन्होंने एक दिन इस पर अंतिम निर्णय ले ही लिया। बस उन्हें प्रतीक्षा थी, लल्ला और बहू उमा रानी के आने की।

शहर में क्या हो रहा है, मालवा सूबे की स्थितियाँ कैसे और क्यों बदल गई, देश की क्या दशा-दिशा है, इस सबसे उदासीन पंडित जानकीप्रसाद की दुनिया बस कुटिया थी। फिर भी वह सोचते रहे कि उन्होंने जीवन भर कभी गलत काम नहीं किया।

भोला महाराज ने एक बार कहा था-'पंडित, तुम एक बिगड़े हुए बच्चे हो और शिकायत भी किससे कर रहे हो, वह भी वतन-परस्तों की, फिरंगियों से। वे हमारे अभिभावक नहीं है पंडित। आतताई हैं, हमलावर हैं। उपनिवेशवादी और ज़ालिम तानाशाह हैं वे। समझो इस बात को।

पंडित को कोई जवाब नहीं सूझता और वह कहते-'अब तुमसे बहस कौन करे भोला महाराज। तुम और गोवर्धन बागियों के साथ हो।' और पंडित हँसकर कोई और विषय पर शुरू हो जाते थे, इकतरफा बयान देते हुए। दोनों मित्र समझ रहे थे कि पंडित को दासता से बाहर लाना मुश्किल है। उनके अपने स्वार्थ हैं। फिरंगियों के अपने। सचमुच पंडित जीवन भर अपना स्वार्थ साधते रहे और आज आखिरी समय भी सिर्फ यही सोच रहे हैं कि 'हाय। वंश-वृद्धि का क्या होगा।'

इन दिनों कोई शाम ऐसी नहीं जाती थी जब वह 'वंश कैसे चलेगा हमारा' कहकर बात को अपनी ओर न कर लेते हों। यही होता था प्रतिदिन। कभी सेठ गंगाधर आ जाते। धर्मदास और जगजीवन भी रहते थे। एक रोज़ पंडित हरिओमजी व्यास और महीपत सिंह भी बैठे हुए थे। सेठ गंगाधर ने महीपत जी से पूछा 'ठाकुर साहब, सुना है बम्बई और बुन्देलखंड के बाद मालवा सूबे में रेलगाड़ी आने वाली है। ये अंग्रेज लोग बड़े चमत्कारी हैं।'

'सेठजी इसमें चमत्कारी बात कुछ नहीं है। यह सब मेहनत का परिणाम है। मेहनत और लगन। एक जुनून-सा है उनमें कि इस मुल्क की तकदीर बदलनी है।'

'अरे भाई यह कौन बड़े पंडित-ज्ञानी आए हैं यहाँ। भाग्य का लेखा भी कोई बदल पाया है। ज़रा कुंडली तो पढ़कर बताओ हमें इन फिरंगियों की। तकदीर बदलेंगे ये?' पंडित व्यास महाराज चिढ़कर बोले।

धर्मदास ने भी उनकी बात का समर्थन किया। बोले-'सही कह रहे हैं पंडित जी। और हमने तो सुना है ये रेल के डिब्बों में यहाँ के आदमियों को भर-भर कर कहीं दूर भेज रहे हैं। मजदूरी कराएंगे। इसीलिए बुन्देलखंड में इनका विरोध हो रहा था।'

'अब ये सब तो हम नहीं जानते भाई।' महीपत ने बात खत्म की अपनी ओर से। पर बात तो चल पड़ी थी। सेठ भी कम नहीं थे। कोई मौका नहीं छोड़ते थे उन्हें अपने सवालों से उलझाने का।

'सुना है, सड़कों पर भी मोटर गाड़ियाँ दौड़ रही हैं। कलकत्ता, दिल्ली, बम्बई, लाहौर और मद्रास तक सड़कें बन गई हैं। अरे हाँ, खूब याद आया। सेठजी आप भी नीमच मोटर से ही गए थे न। यहाँ भी चल रहीं हैं मोटर। हम भी मोटर से ही आये हैं। पर भाई

बैलगाड़ी और घोड़ागाड़ी की बात ही अलग है। उन्हें बन्द नहीं किया है। अच्छा है।' अब जानकी पंडित ने भी मौन तोड़ा।

'ग्वालियर से एक सरदार साहब आये थे। बता रहे थे कि बम्बई और मेवाड़ के कुछ लोग श्रीमंत से भेंट करने पहुंचे थे। वह मालवा में कपास से कपड़ा बनाने के कारखाने शुरु करना चाहते हैं। श्रीमंत स्वयं एक कारखाना खोलने के इच्छुक हैं। उज्जैन में उनकी बहुत जमीन है। श्रीमंत एक रेलगाड़ी भी चलाना चाहते हैं। पर अब बीमार रहने लगे हैं।' सेठ गंगाधर ने बताया।

'उज्जैन के लिए कुछ करना तो बनता है। उनके राज्य की राजधानी रहा है।' धर्मदास ने भी अपनी राय प्रकट की।

'सही कह रहे हो धर्मदास जी। डॉ. व्यूमाँट ने श्रीमंत के इलाज के लिए गोपालप्रसाद को भेजा था। कुछ तो लाभ हुआ है उन्हें। बहुत प्रसन्न हैं वह गोपाल से ।' महीपत सिंह की बात सुनकर पंडित को तसल्ली हुई।

सेठ सोच रहे थे कि इन लोगों से सिर खपाने से कुछ नहीं होगा। जगजीवन भी आज यहाँ नहीं थे कि कुछ तो बात सम्हालते। उन्होंने चुप रहना ही उचित समझा। महीपत सिंह भी यह बोलते हुए उठ गये-'अमलेटा ठाकुर साहब आए हुए हैं, उनसे भी मिलना है। सुबह इन्दौर के लिए साथ ही रवाना होंगे। सेठ साहब, आप भी चल रहे हैं?'

'नहीं आप ही जाएँ। हम तनिक नदी की ओर जाएँगे। आपका ठिकाना चौक की तरफ है। अच्छा, नमस्कार।'

दोनों अपनी-अपनी दिशा की ओर चले गए। पंडित लेट गए। धर्मदास भी सरोवर की ओर रवाना हो गए। पंडित अकेले थे। अपनी यादों में खोए हुए।

गोपालप्रसाद का काम-काज अच्छा चल रहा था। एक दिन अवसर पाकर उन्होंने डॉ. व्यमांट से चर्चा की। उज्जैन में एक नया अस्पताल बने, यह वह भी चाहते थे। व्यूमांट वहाँ मुख्य चिकित्सा अधिकारी थे और गोपालप्रसाद उनके अधीनस्थ सर्जन। कई घायल सिपाहियों के सफल ऑपरेशन के साथ ही उन्होंने होलकर और सिंधिया राज परिवार के सदस्यों का भी समय-समय पर इलाज किया। वे लोग उनकी योग्यता के प्रशंसक थे। डॉ. व्यूमाँट भी प्रसन्न थे एक योग्य सर्जन का साथ पाकर। डूरंड ने व्यूमांट

से उज्जैन में एक अस्पताल प्रारंभ करने की योजना पर बात की। सिंधिया भी चाहते थे और उज्जैन के साथ आसपास के कई जमींदार, जागीरदार और ठिकानेदार इस सम्बन्ध में उनसे अनुरोध कर चुके थे। डॉ. गोपालप्रसाद भी यह माँग अनेक बार कर चुके थे। सिंधिया महाराजा इस अस्पताल के नये भवन-निर्माण के लिए धनराशि देने की घोषणा कर चुके थे। आखिरकार एक दिन उज्जैन में अस्पताल कायम करने के लिए डॉ. गोपालप्रसाद को वहाँ भेजने का निर्णय लिया गया।

गोपालप्रसाद ने अपने उज्जैन जाने के विषय में सबसे पहले महीपत सिंह के परिवार को जानकारी दी। उन्हें अचंभा हुआ कि इस समाचार से वहाँ किसी को कोई प्रसन्नता नहीं हुई। वहाँ से निकलकर वह अपने निवास पर पहुँचे और प्रतीक्षारत पत्नी को भी सूचना दी। इससे अधिक और कोई बात उनसे न सुनकर उमा रानी ने पूछा-'तो फिर अब आप उज्जैन ही रहेंगे।'

'हम ही क्यों हम दोनों ही चलेंगे। वहाँ रहेंगे तो बापूजी की भी देखभाल हो सकेगी। अस्पताल का काम शुरू करने के लिए वहाँ एक हवेली किराये पर ली है। वहाँ पहुँच कर नये अस्पताल भवन का काम शुरू करेंगे।'

'फिर यहाँ का यह मकान और काम?'

'मकान रहेगा। हमारा आना-जाना चलता ही रहेगा। इन्दौर कहाँ छूटना है।'

उमा रानी ने फिर कुछ नहीं पूछा। वह क्या सोच रही थीं खुश थीं या नहीं, पता नहीं। पर इतना अवश्य कहा कि 'फिर ठीक है एक-दो रोज़ में प्यारे भैया आ रहे हैं। यहाँ रहेंगे तो देखभाल होती रहेगी।'

डॉ. गोपाल कुछ नहीं बोले। जब तक इन्दौर रहे, तो कभी कभी महीपत के घर जाते रहे। बार-बार महीपत के घर डॉक्टर क्यों जाते हैं? उमा रानी के मन में यह सवाल अवश्य आता था, पर वह कभी कुछ बोलीं नहीं। डॉ. गोपाल इस बीच उज्जैन जाकर चन्दनदास की हवेली को देख आए थे। आवश्यक सामान की व्यवस्था वहाँ की जा रही थी। नीचे की मंजिल में अस्पताल और ऊपर की मंज़िल में रहने की व्यवस्था थी।

नगर में पिछले कई दिनों से किसी न किसी बात पर वर्दीधारियों का उत्पात होता रहता था । डूरंड की सख्ती इतनी बढ़ गई थी कि दैनिक ज़रूरतों के लिए भी प्रजा परेशान थी।

लेकिन होल्कर की कृपा दृष्टि से अधिक अंग्रेजों की क्रूर निगाहें मिल रहीं थी जो पेट की भूख मिटाने की जगह शरीर पर ज़ख्म दे रही थीं। पर एक दिन ऐसे माहौल में भी गोपालप्रसाद को अपनी खुशियों के लिए रेसीडेंसी से अंतिम आदेश की प्रतीक्षा थी और वह उन्हें मिल गया।

डॉ. गोपालप्रसाद अपना कार्यभार डॉ. गणपत सिंह को सौंपकर उज्जैन रवाना हो गये।

डॉ. गोपाल ने चन्दनदास की हवेली में नया अस्पताल शुरू किया। बुन्देलखंड से शरणार्थी की तरह आए मुखिया परिवार का नया युग प्रारंभ हो रहा था। जानकी पंडित का अध्याय पुराना हो गया था। उसके समापन की आखिरी घड़ियां थीं। प्रतीक्षा थी नये अध्याय की। पृष्ठ कोरे थे जिन पर नई इबारत, नई लिखावट होनी थी। नया बसने को आतुर था। पुराना भी इंतजार में था विदाई के।

***

भाग-12

कुछ यादें हर समय बेचैन बनाए रखती हैं। भूल पाना संभव नहीं होता है और एक अजीब-सा एहसास बना रहता है। पश्चाताप में ही समय कटता है। पंडित जानकीप्रसाद की मनोदशा कुछ ऐसी ही थी उन दिनों। यों कमी किसी चीज़ की नहीं थी। सब था। खेती-बाड़ी, ढोर-ढंगर, मकान और ज़मीन। राजघरानों से संबंध और अंग्रेज हुक्मरान भी मेहरबान। यही चाहते भी थे वह। अपनों से दूरियाँ स्वयं बनाई थीं उन्होंने। भोला महाराज और गोवर्धन की सलाह नहीं मानी और बहुतों को ठेस पहुँचाते हुए मालवा में बसने का निर्णय लिया। बुंदेलखंड में आज भी लोग यही मानते हैं कि पंडित ने पलायन ही नहीं, विश्वासघात भी किया है। अब यहाँ अकेले हैं। धर्मदास की नज़र में वह ज्ञानी हैं, विद्वान, संत-महात्मा हैं। लेकिन गुरूजी, जगजीवन और सेठ गंगाधर वास्तविकता जानते हैं।

शाम होते ही, संध्या पूजन। बिस्तर पर लेटते ही राधा रानी की यादों में खो जाते। आँखें बंद करते ही ऐसा लगता कि किसी बिना नींव की इमारत में हैं। हवा, धूप और पानी से दूर कहीं गहरे में देह उतर रही है। आँख खुलती और चौंक जाते। फिर आँखे मलते हुए बुदबुदाते- 'अब पछताए क्या होत, जब चिड़ियाँ चुग गई खेत।'

धर्मदास सुबह-शाम आ जाते हैं। कुटिया को व्यवस्थित करते हैं प्रतिदिन ।

'पंडित, गोपाल लल्ला ने चंदन सेठ की हवेली किराये पर लेकर अस्पताल शुरू कर दिया है।' धर्मदास ने बताया एक शाम उन्हें।

'अच्छा, और क्या खबर है धर्मदास?'

'नदी-घाटी वाली बस्ती से आगे नया अस्पताल-भवन बन रहा है। खेत के पास ही नयी हवेली का काम शुरू हो गया है। निजातपुरा, सरोवर और खेत की सारी ज़मीन पर परिवार के नाम चिन्ह पत्थर लग गए हैं। बुंदेलखंड से आए हुए परिवारों के लिए भी ग्वाड़ियों बनना शुरू हो गई हैं।'

पंडित प्रसन्न हुए। तभी घोड़े पर सवार डॉक्टर गोपाल वहाँ पहुँचे। पंडित उन्हें देखकर उठे। दोनों हाथ उठाए प्रार्थना करने लगे- 'कामये दु:ख तप्तानां प्राणिनाम आर्तिनाशनम् ।'

'हे प्रभु, मैं आपसे केवल यही चाहता हूँ कि जो भी दुःख से पीड़ित प्राणी हैं, वे दुःख से मुक्त हो जाएँ।'

'बापूजी, मकान और ग्वाड़ियों के विषय में धर्मदास काका ने आपको बताया होगा।'

'हाँ, बता रहे थे कि तुम कुछ नये निर्माण कर रहे हो। अच्छा है।' जानकी पंडित प्रसन्न थे कि एक बुंदेलखंड परिसर तैयार हो रहा है।

सर-सूबा का दर्जा प्राप्त शहर इन दिनों विकास के मार्ग पर था। सिंधिया राज्य की पूर्व राजधानी होने से राजघराना भी ध्यान देता था। अंग्रेज़ सरकार भी पूरा साथ दे रही थी। पौराणिक और ऐतिहासिक नगर के रूप में ख्याति तो थी ही। प्राचीन भारतवर्ष के सोलह जनपदों में से एक अवन्ति जनपद का भी प्रमुख नगर था उज्जैन। यहाँ रहते हुए मुखिया परिवार की अपनी एक पहचान बन रही थी। डॉ. गोपाल उज्जैन की तरक्की में साथ दे रहे थे और अपने परिवार की समृद्धि-संपन्नता का तो विशेष ध्यान था उन्हें। बुंदेलखंड, उनकी जन्म भूमि अब स्मृतियों में थी। कर्म-भूमि उज्जैन से उनका लगाव बढ़ रहा था। ननिहाल से भी लगाव था। जब याद आती, वहाँ हो आते थे। फिरंगियों से त्रस्त बहुत से परिवार इस ओर आ रहे थे। नाग सरोवर के पास नई बस्ती आबाद हो रही थी। नदी मार्ग, मंदिर मार्ग और गोपाल मंदिर-महाकाल मार्ग के दोनों ओर बस्तियाँ बन रही थीं। डॉ. गोपाल साथ दे रहे थे।

डॉक्टर गोपाल नगर-भ्रमण पर निकलते, तब उनके साथ चार अरदली होते थे। साथी होते थे, मुंशी सदासुखलाल, पंडित अनोखेलाल वैद्य और जोसेफ फिलौज। सर फिलौज नगर के प्रशासनिक मुखिया थे। इन्हीं मित्रों के साथ एक दिन वह भैरवगढ़ की ओर जा रहे थे। कुर्ता-धोती और अँगरखा पहने, सिर पर शाही पगड़ी बाँधे, ललाट पर चंदन का तिलक लगाए वह भैरवगढ़ पहुंचे। वहाँ उपस्थित लोगों ने उन्हें अभिवादन किया। ठीक वैसा ही जैसा वे राजाओं और अंग्रेज अधिकारियों का करते थे।

'डॉक्टर, अब तो आपकी हवेली बन गई है। अस्पताल भवन में ही रहेंगे या हवेली में शिफ्ट होंगे?'

नया अस्पताल भवन नदी-मार्ग पर बन गया था। छोटा अस्पताल चंदन सेठ की हवेली में था अब। और वह नये भवन में रहते थे। उनकी निजी हवेली निजातपुरा में बन गई थी।

'बस कुछ दिनों में ही शिफ्ट होंगे। जहाँ रहते हैं, वहाँ मेडिकल वार्ड बनवा देंगे।' उन्होंने जवाब दिया।

'अनोखे पंडित, निकालिए वह क्या कहते हैं उसे हाँ मुहूर्त निकालिए जल्दी।' फिलौज ने कहा।

'मुंशी जी वहां कुछ काम करवा रहे हैं अभी। फिर जब कहेंगे, मुहूर्त निकल जाएगा।'

'बस सात दिन और।' मुंशी सदासुखलाल ने कहा।

'गोपाल जी, एक मंदिर का निर्माण भी करवाएँ वहाँ।' पंडितजी ने कहा।

'जी, मंदिर का विचार है। बापूजी को स्वप्न में नाग देवता ने दर्शन दिए हैं। वह बता रहे थे कि स्वप्न में शिवलिंग और जलधार भी दिखाई दी थी। इसलिए यह सोचा है कि शिव मंदिर और कुँए का निर्माण करवाएँगे। पास ही एक द्वार रहेगा।'

'बिल्कुल सही सोच रहे हैं आप।' मुंशी जी ने भी अपनी राय दी। सर फिलौज आश्चर्य से सुन रहे थे और मुस्कुरा रहे थे।

अवकाश का एक दिन। डॉक्टर गोपाल शिप्रा तट पर टहल रहे थे। भ्रमण के शौकीन कई लोग वहाँ थे। वे लोग जानकी पंडित के विषय में बात कर रहे थे। उनकी बातों को सुन कर ही डॉक्टर गोपाल पंडित की कुटिया पहुँचे। वह पूजा पाठ से निवृत होकर बैठे हुए थे। गुमसुम, उदास से।

'क्या सोच रहे हैं बापूजी ।'

'कुछ नहीं।' पंडित उठे और एक बक्से से झोला निकालकर लाए।

'यह क्या है।'

पंडित चुप रहे। झोले में से कुछ पुस्तकें निकालीं। एक पुड़िया निकाली और गोपाल को सौंप दी।

'यह शालिग्राम की बटिया है। अपनी पूजा में रखना। प्रतिदिन नहलाकर कंकु-हल्दी लगाना और पुष्प अर्पित करना इन्हें। ये पुस्तकें रखो।'

'पुस्तकें?'

'हाँ, भागवत जी, गीता जी और दुर्गा सप्तशती की हस्तलिखित प्रतियाँ हैं। मूलग्रंथों से हमने स्वयं नकल की हैं। प्रतिदिन जाप किया करो। भला होगा।'

डॉक्टर गोपाल ने बटिया और पुस्तकों को मस्तक से स्पर्श कराया और रख लिया। पंडित अभी भी कुछ टटोल रहे थे झोले में। एक गोल-गोल रोल किया हुआ कागज़ निकाला उन्होंने और उसे खोल कर देखने लगे।

'अब यह क्या है?'

'यह तुम्हारी जन्म कुंडली है। पंडित शालिग्राम ने विस्तार से बनाई है। फलित और गणित भी है। दशा-महादशा हैं। तुम्हारे शतायु होने की भविष्यवाणी है। बड़े विद्वान हैं शालिग्राम तुम्हारे मित्र अनोखेलाल के पिता हैं।'

'जी, वह तो हम जानते हैं। पर इसमें क्या देख रहे हैं आप।

'जो हमने पढ़ा और समझा है, वही बताना है तुम्हें। अमल करना तुम्हारा काम है।'

'जी, बताइए।'

'पंडित शालिग्राम ने सिर्फ शतायु होने की भविष्यवाणी की है इस कुंडली में। हम जो कह रहे हैं वह हमारी भविष्यवाणी ही नहीं है, इस जन्म कुंडली में लिखा। सत्य भी है। वंश-वृद्धि के लिये भी यह आवश्यक हैं।' यह कहते हुए पंडित ने जन्मकुंडली गोपाल को सौंप दी। कुछ क्षण दोनों के बीच मौन ठहर गया था। फिर पंडित उठे और बोले- 'लल्ला हम अब विश्राम करेंगे।' गोपालप्रसाद लौट आए।

गोपालप्रसाद अपनी हवेली में रहने चले गये थे। हवेली के आसपास ही नहीं, नगर भी साफ-सुथरा और खुले रास्तों से निखरने लगा था। अलग-अलग दिशाओं में बने हुए द्वारों का जीर्णोद्वार हो गया था। दिल्ली दरवाज़ा, इंदौर द्वार, देवास द्वार, गणगौर दरवाजा, सत्ती दरवाजा, कालियादह दरवाजा और अंकपात द्वार रात बारह बजे बंद हो जाते थे। दरबार ने नगर में स्थित सोलह सागरों की साफ-सफाई करवाई। पुष्कर सागर, गोवर्धन सागर, क्षीर सागर, विष्णु सागर, पुरुषोत्तम सागर, रत्नाकार सागर, रूद्र सागर, यमुना सरोवर, नील गंगा की तलाई और गंधर्व सागर। रूद्र सागर दो भागों में है और उसी प्रकार मत्स्य सागर भी सड़क के दोनों ओर है। एक तालाब दिल्ली दरवाजा के आगे और एक ग्राम लेकोड़ा में हैं। कुएँ और बावड़ी हैं। ऊंचे खम्बे हैं सड़कों के किनारे।

कंदील जलाई जाती है इन खम्बों पर। इन्ही सब स्थानों पर डॉक्टर गोपाल भ्रमण पर निकलते। सर फिलौज भी साथ होते। भ्रमण के साथ ही निरीक्षण होता था।

डॉक्टर गोपाल की इन दिनों कार्य की व्यस्तता बढ़ गई थी। अस्पताल की व्यवस्था के साथ ही, महामारी से ग्रस्त रोगियों की देखभाल के लिये हट्स का निर्माण भी हुआ था। निजी सम्पत्ति में भी वृद्धि हो रही थी। जहाज गली में भी एक हवेली खरीदी थी डॉक्टर गोपाल ने।

इन्हीं दिनों अंग्रेजों का एक मुखबिर कोतवाल से हुई मुठभेड़ में घायल हुआ था। डॉक्टर गोपाल ने उपचार किया था, पर उसे बचा नहीं सके। मुकदमा चला, डॉक्टर के भी बयान हुए। डॉक्टर गोपाल ने कोतवाल के विरूद्ध बयान दिया था। बहुत प्रलोभन दिये गए उन्हें। पर उन्होंने बयान नहीं बदला। कोतवाल भी अंग्रेज़ सरकार का और डॉक्टर भी अंग्रेजों के कृपा-पात्र। लोगों ने बहुत प्रयत्न किये कि कोतवाल के विरूद्ध गवाही देने से डॉक्टर गोपाल का कुछ अनिष्ट हो। पर, ऐसा नहीं हुआ। कोतवाल को सजा हुई। बम्बई से आए अफसरों ने भी सजा कायम रखी। अंग्रेजों की कृपा दृष्टि डॉक्टर गोपाल पर बनी रही। वह भी अंग्रेजों की प्रशंसा करते हुए नहीं थकते थे। स्वाभाविक था कि मन ही मन दुर्भावना रखने वालों की कमी नहीं थी। लेकिन राजघराने और अंग्रेज अफसर डॉक्टर गोपाल को पसंद करते थे। उन्हें शायद ऐसे ही लोग चाहिए थे।

पंडित जानकीप्रसाद अब अपनी कुटिया में ही लेटे रहते थे। रूग्ण काया, ठीक से चल नहीं पाते। पर विदेशी दवाओं से परहेज था। भोला महाराज को पता चला कि पंडित बीमार हैं तो चले आए मिलने। गोपालप्रसाद बैठे हुए थे। भोला महाराज ने पूछा कैसे हो पंडित।'

'दवा नहीं ले रहे। तो ठीक कैसे हों।' गोपाल ने कहा।

'तुम्हारी दी हुई दवा भी नहीं लेते।'

'नहीं। जबकि हर दवा विदेशी नहीं है।'

'क्यों पंडित, विदेशी फिरंगियों से दोस्ती, लेकिन दवा से नहीं। यह क्या बात हुई।' भोला महाराज हँस कर छेड़ते हैं। पंडित कुछ नहीं कहते, पर गोपाल प्रतिवाद करते हैं।

'काकाजी, ऐसी बात नहीं है। अंग्रेजों का विश्वास नहीं करने का कोई कारण नहीं है। ग्वालियर महाराज अकारण समर्थन नहीं करते हैं।'

'लल्ला होश में आओ। सब स्वार्थी हैं। व्यापारी बनकर आए थे फिरंगी और राजा बन बैठे हैं। बादशाह को ही रंगून जेल में डाल दिया था। हम सिर्फ कंगाल हो रहे हैं । पहले मुगलों ने लूटा, अब अंग्रेज हमें लूट रहे हैं और हमारे लोग भी मारे जा रहे हैं। देश में भुखमरी है और हमारा ही धन बाहर जा रहा है। अब भी समय है, चेत जाओ।' भोला तमतमा जाते हैं।

'काकाजी, यह तो देखो कि कितने काम हो रहे हैं। मोटर चली, रेलगाड़ी चली, छापा खाना खुल गए और मशीन से कपड़ा बनने लगा है अब। डाकखाने, स्कूल-कॉलेज और विश्वविद्यालय खुल गए हैं। यह तरक्की कैसे हुई?'

'तुम कहना क्या चाहते हो? यदि अंग्रेज नहीं आते तो यह सब नहीं होता। अवश्य होता। समय सदा एक-सा नहीं रहता। फिर, पहले भी क्या नहीं था यहाँ। उज्जैन, तक्षशिला और नालंदा शिक्षा का केन्द्र था। काशी-बनारस और प्रयाग समृद्ध था। लोग सुखी थे। लोग बीमार तब भी होते थे और इलाज भी होता था। हमारी पुरातन पद्धति में सब कुछ था। हमें बहलाओ मत तुम।'

'वह सब तो अब भी चल रहा है। पर, आज के अस्पतालों की ज़रूरत से आप मुँह नहीं मोड़ सकते। आज जो कुछ है यह अंग्रेज सरकार और श्रीमंत के कारण ही है। आप लोग साथ दें तो और भी होगा। रेल्वे, नगरपालिका और जेल में भी अस्पताल खोलने की बात चल रही है।'

'वह सब छोड़ो और एक बात सुन लो। यह सोचने की भूल मत करना कि उज्जैन एक खामोश शहर है। अब तक फिरंगी इसे ऐसा ही मानते रहे हैं । धार्मिक, शांत और बूढ़ों-पुरानों का मौन तीर्थ। पर, ऐसा नहीं है। यह प्रलय काल की शांति का समय है। भीतर से सुलग रहा है यह शहर। आज नहीं तो कल सोया हुआ ज्वालामुखी फूटेगा।' बातें इसी तरह तनातनी में चलती रहतीं। लेकिन तभी सेठ गंगाधर और धर्मदास वहाँ आ गए। धर्मदास ने कुछ क्षण असहाय से लेटे जानकी पंडित की ओर देखा, फिर वहीं खाट पर बैठ गए। भोला महाराज की ओर देखकर मुस्कुराए। बोले-'भोला महाराज को अवकाश

मिल गया। आपके सखा गोवर्धन भैया नहीं आए। आपकी आज्ञा हो तो हम पंडित को भोजन करा दें।'

भोला महाराज सोच रहे थे कि अक्ल पर पत्थर पड़ गए हैं सबके। अब इन्हें कौन और क्या समझाए। जयचंदों की पूरी फौज जमा है देश में। दीवार पर सिर पटकने से कुछ नहीं मिलना। वह जाने के लिए उठ गए। 'चलता हूँ पंडित। अभी शहर में रहूँगा कुछ दिन। फिर आऊँगा मिलने।' वह चले गए। कुछ देर खामोशी रही वहाँ।

'धर्मदास, हमारा भोजन बना रखा है। तुम अपना और लल्ला का भोजन बना लो।'

'पंडित, हम भोजन ले चुके हैं। तुम खाओ।'

'बापूजी, उमा रानी प्रतीक्षा कर रही होंगी। आप खा लें, तब तक हम बैठे हैं।'

जानकी पंडित ने भोजन किया। हाथ-मुँह धोकर बैठे और बात शुरू की।

'लल्ला, हमने तुम्हें जो कहा था, उस पर कुछ विचार किया।'

'किस बात पर विचार करना था पंडित?' धर्मदास ने पूछा।

'हमने लल्ला की जन्म कुंडली पर विचार किया था। शालिग्राम पंडित ने भी फलित और गणित कर कुछ बातें बताई थीं।'

'क्या बातें?'

'उन्होंने बताया कि लल्ला की जन्म कुंडली में दो और विवाह के योग हैं। हम वही पूछ रहे हैं कि विवाह के विषय में क्या सोचा है?'

'तो उन्होंने यह भी बताया कि क्या अभी तत्काल योग बन रहे है ?'

'नहीं, ऐसा तो नहीं कहा था।'

'तो कुछ दिन प्रतीक्षा करो न। जल्दबाजी किसलिए। अब तुम जाओ लल्ला। बहूरानी रास्ता देखती होंगी।'

गोपाल चले गए। धर्मदास ने जूठे बरतन साफ किये। पंडित का बिस्तर झटकारा। चादर बदली। पंडित लेट गए। धर्मदास भजन गुनगुनाते रहे।

भोला महाराज नदी-घाटी वाली बस्ती में ठहरे हुए थे। इस बस्ती में अधिकांश मकान बुंदेलखंड से आए हुए लोगों के ही थे। गजाधर दुबे, राम अवतार चौधरी और चतुर्भुज तिवारी के अलावा ठाकुर गणपत सिंह और ठाकुर बल्देव सिंह के मकान थे। भोला गजाधर के मेहमान थे। नदी घाट पर बनी एक छतरी पर उन्हें गोवर्धन पंडित से मिलना था। बुंदेलखंड से आए एक विश्वस्त साथी ने उन्हें एक पत्र दिया था। वह पत्र एक आदेश था जिसमें भूमिगत रहते हुए यहां काम करने के लिए कहा गया था। उसी ने छतरी पर मिलने के निर्देश दिए थे। यही निर्देश गोवर्धन को दिये गए थे।

बुंदेलखंड से निकलकर भोला महाराज और गोवर्धन इंदौर आए थे। वहाँ भागीरथ और अकबर खान सक्रिय हैं। यह उन्हें मालूम था। भागीरथ से चर्चा के बाद गोवर्धन माँधाता राजा साहब से मिलने चले गए। भोला महाराज उज्जैन आ गए। वह उज्जैन को टटोल रहे थे। जितना सोचते, चिंता बढ़ती जाती थी। वह जानकी पंडित से मिलकर आने के बाद कुछ ज्यादह परेशान रहे। वह अनुभव कर रहे थे कि गोपाल और जानकी पंडित ही नहीं, यहाँ उन जैसा सोचने वाले और भी हैं। कुछ तो करना होगा।

रात घिर रही थी। गजाधर और भोला कमरे में टहल रहे थे। 'मालवा में रातें हर मौसम में ठंडी रहती हैं, भोला भाई।' गजाधर ने कहा। भोला एक चादर ओढ़कर सोने का प्रयत्न करने लगे। नींद में एक सपना करवट बदल रहा था।

एक बड़ा-सा कमरा है। कमरे से बाहर दूर तक फैली हुई ऊबड़-खाबड़ ज़मीन के बीच कूड़ा करकट का ढेर है। आसपास कुछ जानवर सूंघते हुए और कुछ आदमी टटोलते हुए घूम रहे हैं। अधनंगे शरीर, पिचका हुआ पेट और लाचार चेहरा है सबका। उधर, खाली कमरे में एक पुराना सिंहासन है। कुछ लोग वहाँ आ जाते हैं। नंगे शरीर, मस्तक पर त्रिपुंड, लंबी दाढ़ी, पर मूंछ गायब। सिर पर साफा-पगड़ी, धोती, पायजामा, लुंगी और पतलून पहने कुछ और लोग हैं। सिंहासन के चारों ओर सब चक्कर काट रहे हैं। परस्पर टकराते, गिरते-उठते, रेंगते हुए सिंहासन को हथियाना चाहते हैं वे। सिंहासन के ऊपर एक झाड़ फानूस लटका है जिस पर बैठा एक गोरा आदमी हँस रहा है। तभी एक चीख सुनाई देती है और रोशनी कम होने लगती है। गोरा आदमी अब फर्श पर है। वह चाबुक फटकारता है। सब लोग भागते हैं और कूड़े के ढेर में टटोलते लोगों के साथ धराशायी हो जाते हैं। गोरा आदमी कोड़ा फटकारता हँसे जा रहा है। अचानक घुप्प अँधेरा हो जाता है और गोरा आदमी एक दिशा में चलने लगता है। गिरते-पड़ते लोग

उसके पीछे चल पड़ते हैं। चीखने-चिल्लाने की आवाज़ों के साथ ही घोड़ों के हिनहिनाने का शोर होता है और एक गोली चलती है। भोला महाराज चौंक कर जागते हैं। सपने को समझने की कोशिश करते हैं।

कमरे में घुप्प अँधेरा है। अमावस की रात है। भोला महाराज अनमने से बैठे हुए हैं। सोचते हैं, जो देखा वह सपना ही था या सचमुच कुछ हुआ है अभी। फिर लेटते हैं, पर नींद नहीं आती।

गजाधर की भी नींद खुल गई थी। वह उधर ही आ गए। देखा, भोला कुछ लिख रहे हैं।

'क्या लिख रहे हो, महाराज?'

'इन दिनों जो कुछ देखा-सुना, वही लिख रहे थे। परिस्थितियाँ कहीं भी अनुकूल नहीं हैं। रानी का बलिदान और सआदत खाँ की शहादत से भी कुछ नहीं बदला है। अब भी एक सपना है सब कुछ।'

गजाधर चिमनी जलाकर ज्यादा रोशनी करते हैं, फिर वहीं एक मचिया पर बैठ जाते हैं।

'आपकी आवाज़ सुनकर हमारी नींद खुल गई। कुछ हुआ था क्या?

'कुछ नहीं। शायद कोई सपना देखा था। सपने में अँधेरा था और जागे तो कमरे में भी अँधेरा। हमने सोचा कि ऐसे ही अँधेरे में हमारा देश सोता हुआ जाग रहा है या जागते हुए ही सो रहा है शायद।'

'निराश मत हो भोला भाई। एक सपना था। बार-बार देखे हुए सपनों से किसी परिणाम तक मत पहुँचो। जानकी पंडित, डॉक्टर गोपाल और धर्मदास जो सोचते हैं वही सब कुछ और लोग भी सोचते होंगे। पर यही लोग तो समूचा भारत नहीं हैं। सिंधिया या कोई और राजघराना फिरंगियों के साथ है। पर, पेशवा भी तो हैं। तात्या थे। और भी होंगे उन जैसे उत्तर से दक्षिण, पूरब से पश्चिम यह देश बहुत बड़ा है। एक न एक दिन सब साथ चलेंगे। अब, सोने की कोशिश करो। सुबह होने में देर है। गोवर्धन आ जाएँ, तब आगे का कुछ सोचेंगे।'

'हाँ, सुबह नदी-घाट पर भी जाना है। खबर वहीं मिलेगी।'

'और गोवर्धन के साथ गुरूजी भी होंगे वहाँ। है न, भोला भाई।'

'अरे, आपको पूरी जानकारी है।'

'हाँ।' गजाधर अपने कमरे की ओर चले गए। भोला भी लेट गए।

नदी घाटी की बस्ती। एक छोटा-सा मोहल्ला। पास ही अमराई। अमराई से लगी ज़मीन पर एक सार्वजनिक कुआँ। गुलाब, गेंदा और मोगरे की फुलवारी। नीम, पीपल, बरगद और इमली के वृक्ष। बेर और जामुन के पेड़। एक वृक्ष पर मोटी रस्सी से बना हुआ झूला लटका था। सावन के महीने में पूरी बस्ती में उत्सव का माहौल रहता था। पर यह सावन नहीं था। फिर भी झूलने वालों की कमी नहीं थी। दो-चार घरों से, सुबह-शाम लोक गीत और भजन, ढोलक की थाप के साथ सुनाई देते। कुछ युवक कसरत करते रहते। भोला महाराज का कुछ समय इन युवकों के साथ भी गुज़रता था। इस समय भी वह उन्हीं के साथ बैठे हुए थे।

पंडित चतुर्भुज तिवारी अपने घर के बाहर खाट पर बैठे हुए थे। पास ही मचिया पर ठाकुर गणपतसिंह और बल्देवसिंह बैठे थे। तीनों की आँखे भोला और इन युवकों पर थी। कान इनकी बातों पर। भोला कुछ-कुछ समझ रहे थे। इसलिए वह वहाँ से उठ गए। घर पहुँचकर देखा, गजाधर के पास ही गोवर्धन बैठे हुए हैं। वह प्रसन्न हुए।

'गजाधर भाई, कसरत कर रहे युवकों के बाजू में तीन व्यक्ति कौन बैठे हैं। उनके आंख-कान हम पर ही लगे थे।'

'तीनों बुंदेलखंड से ही आए हैं।' गजाधर ने परिचय दिया उनका।

'तीनों की पंडित जानकीप्रसाद से पुरानी मित्रता है।' गोवर्धन ने कहा।

'हाँ, डॉक्टर गोपालप्रसाद से भी इन लोगों के अच्छे संबंध हैं। यों कहें कि उनके दरबारी ही हैं तीनों। सुना है कि पंडित ने ही तिवारीजी को डाकखाने में नौकरी दिलवाई है।' गजाधर ने बताया। उन्होंने यह भी बताया कि 'ठाकुर गणपत और ठाकुर बल्देव का महीपत सिंह के यहां भी आना-जाना लगा रहता है।'

'बुंदेलखंड में कहाँ से हैं?'

'यह तो पता नहीं। चार लड़के और चार लड़कियाँ हैं। एक लड़का नौकरी पर है वहीं। तीन यहाँ रहते हैं।'

'लड़के-लड़कियों के विवाह तो हो गए होंगे।'

'बड़ा लड़का, जो नौकरी पर है वह विवाहित है। एक लड़की भी ब्याह गई है। बाकी सब कुँवारे हैं।'

'महाराज, तुम क्यों इतनी खोजबीन कर रहे हो? किसी बेटा-बेटी को ब्याहना है क्या तिवारीजी के यहाँ।' गोवर्धन ने हँसकर पूछा।

'ठिठोली मत करो पंडित। मालूम है न, हमारे-तुम्हारे सब बच्चे ब्याह गए हैं।'

'तिवारी-पुराण छोड़ो अब भोला भाई। पंडितजी आप बताएँ, अगला कार्यकम क्या है।' गजाधर ने पूछा।

'शाम को ही नदी घाट पर बैठक होगी। गुरूजी, सेठ गंगाधर और मुंशी मनसुखलाल के साथ वहाँ पहुँचेंगे। वही बताएँगे कि आगे की योजना क्या है।'

'गुरूजी कब पहुँचे यहाँ?' भोला ने पूछा।

'वह और मैं, साथ ही आए थे। वह सेठ के यहाँ चले गए। हम यहाँ आ गए।'

'चलिए, पहले भोजन कर लिया जाए। फिर विश्राम। शाम को चलना ही है।'

भोजन के बाद तीनों विश्राम के लिए लेटे ही थे कि दरवाजे पर दस्तक हुई। गजाधर ने दरवाज़ा खोला। सामने पंडित चतुर्भुज तिवारी खड़े थे।

'तिवारी जी आप और इस समय?'

'गजाधर बाबू, आपके यहाँ बुंदेलखंड से आए कोई अतिथि ठहरे हैं। यह जानकर मिलने चले आए।'

'आइए।'

भोला महाराज और गोवर्धन पंडित उठकर बैठ गए। गजाधर ने परिचय कराया।

'आप लोग भी बुंदेलखंड से हैं तो उत्सुकतावश मिलने चले आए। तीन लड़के और तीन लड़कियाँ ब्याहना है। सोचा, आप से कोई जानकारी मिल जाए।' तिवारी जी ने कहा।

'तिवारी जी, हम लोग इस विषय में कोई मदद नहीं कर पाएँगे।' गोवर्धन ने कहा।

'क्यों भला?'

'वह इसलिए कि हम लोग यायावर हैं। आज यहाँ, कल वहाँ। रिश्ते-नाते की दुनिया से कुछ दूरी ही बना ली है हमने।' भोला ने जवाब दिया।

'आप इस विषय में पंडित जानकीप्रसाद और डॉक्टर गोपाल से मिलें। वह अवश्य सहायता करेंगे। उन्हें तो आप जानते ही होंगे। वह भी बुंदेलखंड से ही आए हैं यहाँ।' गजाधर ने कहा।

'जी, जानते हैं। आपने अच्छी याद दिलाई। मिलेंगे उनसे एक दिन। अच्छा तो अब आज्ञा दें। आपसे मिलकर प्रसन्नता हुई।'

तिवारीजी चले गए अपने घर की ओर। भोला महाराज सोच रहे थे उनके बारे में। लेटे हुए ही उन्होंने अपने मन की बात कही - 'तिवारीजी ही तो कान नहीं भर रहे जानकी पंडित और गोपाल लल्ला के।'

'संभव है। उनसे सावधान रहना होगा।' गोवर्धन ने कहा।

'लेकिन यह तो तुम भी जानते हो भोला भाई कि जानकी पंडित की सोच आज भी वही है, जो बुंदेलखंड में थी। डॉक्टर गोपाल को उन्हीं की परवरिश मिली फिर राजे-रजवाड़ों का साथ मिला और अंग्रेजों की कृपा-दृष्टि। ऐसे में उनके प्रति कृतघ्न कैसे होते।' गजाधर ने कहा।

'भले ही अपने लोगों के लिए कृतज्ञ न हों।'

'गुरूजी शायद समझा सकें।'

भोला महाराज सोच रहे थे कि उन्हें गजाधर जैसा विश्वसनीय मित्र मालवा आकर ही मिला है। वह यहाँ आकर खुश थे।

शाम का समय था। नदी किनारे तीनों बैठे हुए थे। गजाधर, भोला और गोवर्धन। अँधेरा होते ही गुरूजी प्रकट हुए। ऊपर छतरी पर बैठक शुरू हुई।

'नया समाचार यह है कि होल्कर, पँवार और सिंधिया की फौज में भी विद्रोह हो रहा है।'

'पर गुरूजी, होल्कर तो अंग्रेजों के मित्र नहीं है।' गजाधर ने कहा।

'वह तो ठीक है। पर होल्कर ने सिंधिया से मित्रता की है, यह जानकर उनके फौजी नाराज़ हैं। दोनों के संबंध दौलतराव सिंधिया के समय से ठीक नहीं थे।'

'अब आगे, हमारी क्या योजना है?' भोला ने पूछा।

'यहाँ जितना संभव था, हो चुका है। यहाँ गजाधर बाबू देखेंगे। आप और गोवर्धन जी बुंदेलखंड लौट जाओ। पर, एक ठिकाने पर नहीं रहना है।'

'यहाँ मुखिया परिवार से कोई आशा नहीं है गुरूजी।' भोला ने कहा।

'कोई बात नहीं। संबंध बनाए रखो, पर विश्वास मत करो।'

'जाने से पहले, एक बार मुखिया परिवार और अन्य लोगों से मिलना ठीक रहेगा क्या?' गोवर्धन ने पूछा।

'मिलने में कोई बुराई नहीं है, पंडित जी। वर्षों पुराना संबंध है उनसे। बहुत संपत्ति जोड़ ली है बाप-बेटे ने। नुनसाई में जमीन-जायदाद है ही। यहां भी हवेलियाँ हैं। खेत हैं। सुना है डॉक्टर नई हवेली में रह रहे हैं। धर्मदास और जगजीवन पुराने घर में ही हैं। पंडित जानकी प्रसाद कुटिया नहीं छोड़ रहे। पर अत्यंत रुग्ण हो गये हैं। उनसे मिलते हुए ही जाना। उधर ग्वालियर में जयाजीराव सिंधिया की दशा भी ठीक नहीं है। बहुत कुछ होने को है। सारी दुनिया में उथल-पुथल हो रही है। गजाधर और भोला महाराज लौट आये अपने निवास पर। गुरूजी और गोवर्धन छतरी पर ही रूके हुए थे।

गोवर्धन पंडित पहली बार आये थे यहाँ और अधिक कुछ नहीं जानते थे मालवा के बारे में। बोली अलग, आबोहवा अलग और लोगों के स्वभाव भी अलग। गुरूजी विद्वान हैं। उन्हें देश के भूगोल, इतिहास, भाषा और संस्कारों का ज्ञान है। इसीलिए वह जल्दी ही यहाँ के वर्तमान के विषय में जान पाये। यहाँ के लोग संतोषी है, सहनशील हैं और अपनी जड़ों को छोड़ना नहीं जानते। इन लोगों में गुरूजी घुल मिल गये पर अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए अधिक प्रयत्न करना पड़ रहा है। गोवर्धन को साथ में रूकने के लिए उन्होंने इसीलिए कहा, क्योंकि वह जान गये थे कि उसका स्वभाव कुछ यहाँ के लोगों की तरह ही है। उसे यह कहा कि यहाँ आते रहना। भोला महाराज कुछ उग्र स्वभाव के हैं, इसीलिए उन्हें लगा कि उसे लौट जाना चाहिए। जगह-जगह घूमकर वह एक वातावरण बना रहे थे और एक दल तैयार कर रहे थे। जाने से पहले गोवर्धन से उन्होंने कुछ और बातें भी कीं।

गुरूजी ने कहा- 'गोवर्धन हमें एक बात की चिन्ता खाये जा रही है। उस विषय में हम पंडित जानकीप्रसाद से भी मिलना चाहते थे। पर, फिर सोचा कि पंडित भरोसा करने योग्य नहीं हैं। हमें कुछ बातें सेठ गंगाधर और उनके कुछ मित्रों से मालूम हुई हैं।'

'गुरूजी, ऐसी कौन बात है। बताइये न।'

'सुना है कि पंडित चाहते हैं, गोपाल एक और विवाह करें जिससे उनकी वंश-वृद्धि हो। पर गोपाल एक बालक को 'गोद लेने' का मन बना चुके हैं।'

'गुरूजी, यह जानकारी मुझे भी है। पर गोपाल लल्ला तो उन्हें वचन दे चुके हैं। वह दोबारा विवाह के लिए तैयार हैं।'

'हां, तुम सही कह रहे हो। पर पंडित ने यह भी कहा है कि तुम दो विवाह और करोगे लल्ला। सेठ कह रहे थे कि पंडित ने भविष्यवाणी की है कि दो विवाह ही होंगे। शायद इसीलिए उमा एक अग्यासी पुत्र चाहती हैं।'

'दत्तक-पुत्र में तो कोई विरोध ही नहीं होना चाहिये। पर गुरूजी हमारे यहाँ बाल-विवाह और सती प्रथा जैसी बुराइयों भी हैं। शताब्दियाँ हो गई, पर बुराई मिटी नहीं। कुछ प्रयत्न करना ही होंगे अब।'

'आपके डॉक्टर गोपाल अँग्रेजों से क्यों नहीं कहते कुछ करने को।'

'गुरूजी, कोई कहे इसकी प्रतीक्षा अँग्रेज़ नहीं करते। पर, हमारे बड़े-बूढ़े इसे धार्मिक प्रथा कहकर बचाए रखना चाहते हैं। इसीलिए अंग्रेज़ हस्तक्षेप नहीं करते।'

'गोवर्धन भाई, हमें स्वतंत्रता चाहिए। सिर्फ अँग्रेज़ों से ही नहीं, इन कुप्रथाओं से भी देश को मुक्ति चाहिए। लेकिन इसके लिए देशवासियों को सही ढंग से शिक्षित करना होगा। बहुत काम हैं। जल्दबाजी से नहीं, धीरे-धीरे ही सब होगा। सबको विश्वास में लेना होगा। बुंदेलखंड में लोग बहुत गुस्सैल हैं और यहाँ सहनशील हैं। धर्म -भीरू दोनों हैं। पाखंड हर जगह है। लड़ाई लंबी चलेगी।'

गोवर्धन प्रसन्न थे। उन्हें गुरूजी जैसा विद्वान मार्गदर्शक मिला। भोला और गजाधर जैसे मित्रों का साथ मिला।

सुहानी शबे-मालवा में दोनों अपने-अपने निवास की ओर चल पड़े।

उज्जैन की सुबह। चहचहाते पक्षी, गुनगुनाते श्रद्धालू और मंदिरों में हो रहे पूजा-पाठ-संकीर्तनों की मंगल-ध्वनियों से जागता सवेरा। नदी जाते लोगों की चहल पहल से जागता हल्की गुलाबी ठंड से भरा सवेरा। अमरावती, पद्मावती, विशाला, अवंतिका और उज्जयिनी आदि अनेक नामों से जाना जाता यह तीर्थ नगर। सप्त पुरियों में एक चूडामणि, प्रतिकल्पा और सोलह जनपदों में सबसे महत्वपूर्ण अवन्ति जनपद का नगर उज्जैन। पूजा-पाठ से निवृत्त होकर गुरूजी बैठे हुए गुनगुना रहे थे -

'स्वल्वीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गाँ गतानां

शेषैः पुण्यैर्हतमिव दिवः कान्तिमत् खण्डमेकम् ।'

स्वर्ग का एक टुकड़ा काटकर उतार लाया गया है और वह उज्जयिनी है।

मंदिरों से आती हुई ध्वनियों में गुरूजी खो रहे थे – ओम नमः शिवाय, ओम नमः शिवाय, हर हर भोले नम: शिवाय...।

इस रम्य नगरी की कितनी ही कथाएँ हैं। पुराकथाएँ हैं। कितनी ही हैं जिन्हें याद करते हुए गुरूजी को कहीं और ही ले जाती हैं। वह बोल उठते हैं- कालाय तस्मै नम:, यस्य वशात् सर्वं स्मृति मार्गम अगात्।

तभी दरवाजे पर दस्तक होती है। उनकी सांस्कृतिक सपनों की तंद्रा टूटती है। वह उठते हुए पूछते हैं-'कौन है?'

'खोलिए तो।' गुरुजी आवाज़ पहचानकर दरवाज़ा खोलते हैं। सामने खड़े थे सेठ गंगाधर और उनके मुनीम मुंशी मनसुखलाल। गुरूजी उन्हें बैठने के लिए कहते हैं।

'कहिए सेठ गंगाधर क्या समाचार लाए हैं।' गुरूजी ने पूछा।

'समाचार हम नहीं, हमारे मुंशी जी लाए हैं।'

'मुंशी जी, आप ही कहें।'

'गुरूजी, आपके निर्देशानुसार हम झाँसी गए थे। वहाँ से जखोली, जालौन और दतिया होकर भी आए हैं। वहाँ अब कम ही लोग रह गए हैं। पर रानी लक्ष्मीबाई की प्रेरणा से जिन विधवाओं ने फिरंगियों से खिलाफत की थी, उसका असर वहाँ के जन-जीवन पर गहरा है।'

'मुंशी जी, ऐसा नहीं है कि वहाँ कम लोग ही रह गए हैं। हुआ यूँ है कि वहां के लोग उन स्थानों पर जाते रहते हैं, जहाँ वातावरण बनाना है। फिर, आप वहाँ पहली बार गए थे इसलिए भी आपकी भेंट कम लोगों से हो पाई हो। बार-बार जाते रहिए, जिससे आंदोलन में आपकी पहचान बन सके।'

'गुरूजी, एक महत्वपूर्व समाचार यह है कि आज शाम दो आगन्तुक आपसे मिलना चाहते हैं।' सेठ गंगाधर ने कहा।

'कहाँ?'

'नदी-घाट की छतरी पर।'

'कौन लोग हैं ?'

'परिचय वही देंगे आपको। एक विश्वस्त हरकारा यह समाचार लाया है और वह बता रहा था कि दोनों आपके पूर्व-परिचित हैं, इसलिए उनका संकेत उज्जैन के गुप्त स्थान विषयक ही है।'

'ठीक है। फिर शाम को साथ ही चलते हैं।'

सेठ गंगाधर और मुंशीजी बाजार की ओर जाने के लिए बाहर निकले। गुरूजी भोजन की तैयारी में जुट गए।

शाम, हमेशा कि तरह कलरव में डूबी हुई थी। घोसलों की ओर लौटते हुए पक्षियों की चहचहाहट, संगीतमय भजनों की ध्वनियों से मिलकर अद्भुत सृजन कर रही थी। गुरूजी भी गुनगुना रहे थे – 'अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकू सयानप बाँक नहीं,... तुम कौन सी पाटी पढ़े हो लला, मन लेहू पे देहू छटाँक नहीं।'

गुरूजी के चेहरे पर हल्की हँसी तैरती है। कुछ क्षण के लिए उनके हाथ रूक जाते हैं और घर की याद में खो जाते हैं। ग्राम जखौली। पंडित जमनादास मुखिया के मकान के ठीक पीछे उनका घर। घर के आँगन में बेनीप्रसाद मुखिया के साथ खेल-खेल में बिताया बचपन याद आ रहा है। खेत-खलिहान, अमराई और घर के सामने छोटी-सी बगिया। पंडित जानकीप्रसाद ने उसे नाम दिया था 'उपवन'। नुनसाई से जब भी वह जखौली आते, तब उपवन में बैठते। सावन में कजरी गाते। बरसात हो रही हो, तब गुनगुनाते थे-

घन घमण्ड घन गरजत घोरा,

प्रियाहीन डरपत मन मोरा।

गुरूजी वर्तमान में लौटकर सोच रहे थे, कितना कुछ बदल गया है। याद आ रहे थे वे दिन, जब जानकी पंडित यहाँ आए। पर किया क्या? इंदौर और महिदपुर में मकान। खेत। उज्जैन में हवेलियाँ। जमीन और खेती। पंडित ने शुरूआत की और डॉक्टर गोपाल ने विस्तार किया। निजातपुरा में बुंदेलखण्डी उपनिवेश खड़ा हो गया है। रोरा, एट, जखौली, जालौन, झाँसी और नुनसाई से मुखिया, दुबे, कटारे, चौबे, तिवारी और बिलगैयाँ आए। सुतार, बसोर और नाऊ बब्बा आए। चौधरी-चौधराईन, सेठ-सेठानी और ठाकुर-ठकुराईन आए और बस गए मुखिया के राज में। मालवा की छाती पर जिझौतियों और कन्नौजियों की जागीर बन गई। नदी घाट से जयसिंहपुरा और अनंत पेठ से माल रोड तक बुंदेलखण्डी बस्तियाँ हैं आज। पर यहाँ आकर भी जी हुजूरी की आदत नहीं बदली। बनी रहेगी मरते दम तक। मुखिया परिवार के पास अपना बनाने की चतुराई और अधिकार के साथ अनैतिक कौशल की कमी नहीं है। बुंदेलखण्डी, मालवी और फिरंगी स्वभाव से अच्छा तालमेल बिठाया है बाप-बेटे ने। लालच की भी कोई सीमा नहीं। अतृप्ति बढ़ती जा रही है। गुरूजी सोच रहे थे।

कब तक इस मुखिया-पुराण में सिर खपाते रहोगे गुरू। अपने आप से ही कहते हुए वह उठ खड़े हुए। सोच को विराम दिया और भोजन परोसा।

विश्राम के बाद फिर विलंब नहीं किया। उठे और बाहर टहलने लगे। तभी सामने से सेठ गंगाधर और मुंशी मनसुखलाल आते दिखाई दिये। तीनों नदी को ओर चल पड़े। वहाँ पहुँच कर ज्यादा प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। ऊपर छतरी पर बैठे दो व्यक्तियों ने उन्हें देख लिया था और वे सीढ़ियाँ उतर कर उनकी ओर ही आ रहे थे। गुरूजी उन्हें देख रहे थे पर कुछ दूर होने और उजाले की कमी से पहचान नहीं पा रहे थे। वे दोनों बात करते हुए सीढ़ियों पर रूक गये हैं। कौन हो सकते हैं?

'क्या सोच रहे हैं गुरूजी?' सेठ गंगाधर ने पूछा।

'अँधेरा है। इससे पहचान नहीं पा रहे हैं उन्हें।'

'धीरज रखे गुरूजी। अभी नीचे आएँगे ही। चलिए, तब तक घाट पर बैठते हैं हम लोग।' मुंशीजी ने कहा। और वे उसी ओर चल पड़े। मौसम बदलने से घाट पर अधिक भीड़ नहीं थी इस समय। ठंडी हवा चल रही थी। शाम होते ही ठंड और बढ़ जाती है, इससे

आना-जाना कम हो गया है। तीनों घाट पर बैठ गये। दो आगन्तुक जब पास आकर खड़े हुए, तब गुरूजी चौंके, लेकिन उत्साह से उठे और उन्हें पहचानते हुए बोले- 'भागीरथ काका, आप यहाँ? अकबर के साथ। बहुत प्रसन्नता हुई है आपको साथ देखकर।'

इतना कहते हुए ही गुरूजी ने भागीरथ के पैर छुए। अकबर को गले लगाया और बैठने को कहा। कोई और नहीं था वहाँ, इसीलिए वे लोग वहीं बैठ गये।

मालवा के वीरों का बुंदेलखंडी वीर से यूँ फिर से मिलना देख, सेठ और मुंशी भी प्रसन्न थे। सेठ ने कहा- 'आप लोग जब मिल गये हैं तो लगता है कि अशक्त और सुस्त जनपद में भी बदलाव आएगा।' 'ऐसा मत कहो सेठ। यहाँ भी लोग जागरूक हो रहे हैं। बदलाव तो आ चुका है। कोई बहुत बड़ी घटना तो पूरे भारतवर्ष में होना अभी शेष है। यहाँ भी लोग बढ़ते जाएँगे।' गुरूजी ने प्रत्युत्तर दिया। मुंशी जी अब तक मौन बैठे हुए थे। फिर भी उन्हें संतोष था कि वह इन सब को पुनः एक जगह लाने में सफल रहे।

गुरूजी ने भागीरथ से बात शुरू की। उन्होंने पूछा- 'काका आप इतने दिनों कहाँ रहे? गोपाल मुखिया को राजा माँधाता के यहाँ छोड़ने के बाद से ही आपका कोई समाचार नहीं मिला। न ही अकबर की कोई खबर?'

'हम माँधाता से पहले इन्दौर आये थे। वहाँ मालूम हुआ कि अंग्रेज़ अफसर तो अकबर की खोज कर ही रहे थे। होल्कर ने भी अकबर को जीवित या मृत पकड़ने पर ईनाम घोषित किया हुआ है। हमारे दिल्ली जाने के बाद से ही वह अकबर के विरूद्ध हैं। क्योंकि उनके फौजी भी अकबर के साथ हैं।'

'पर, होल्कर तो अंग्रेजों के विरूद्ध हैं काका।'

'हाँ। पर वह हमसे अलग करना चाहते थे अकबर को। अकबर नहीं माने और फौजियों को भी भड़का दिया। इसीलिए उन्होंने विद्रोहियों का अँग्रेज़ों के विरूद्ध नेतृत्व करने से मना अवश्य किया और अकबर को मारने को भी तैयार हो गये। उनकी नीति समझना मुश्किल है। सिंधिया साफ हैं कि अंग्रेजों का ही साथ देंगे।'

'फिर अकबर कहाँ रहे?'

'ज्यादा दूर नहीं था आपसे। महिदपुर में छिपा हुआ था। भागीरथ बापू की खबर मिलते ही उज्जैन चला आया था। कल शाम को ही मुंशीजी के मकान पर बापू से मुलाकात हुई।'

'तो अब आगे के लिए क्या योजना है काका?'

'सुनो हरप्रसाद।' इतना कहकर भागीरथ कुछ क्षण के लिए रूके। सब चौंक गये नया संबोधन सुनकर। वह मुस्कुराए और गुरूजी के मुख पर भी मुस्कान आ गई।

'भाई लोगों इतना आश्चर्य मत करो। अब हम सब एक दूसरे को भली-भांति जान गये हैं। यहाँ के लिए जितना विचार था उससे अधिक काम हुआ है। हम सबके बीच गुप्त कुछ नहीं। इसीलिए हम पहचान जाहिर कर रहे हैं। आपके गुरूजी, जखौली के पंडित हरप्रसाद चौबे हैं। इनसे हमारी पहचान इंदौर में हुई थी। पंडित जानकीप्रसाद के घर पर।'

वहाँ उपस्थित शेष सभी लोग आश्चर्य से भागीरथ की ओर ताकते रहे। भागीरथ ने कहना जारी रखा।

'तब से हम और ये आयु के अन्तर को भुलाकर साथ काम कर रहे हैं। तब से ही ये यहां रहकर कार्य कर रहे हैं। पर, अब इन्हें बाहर जाना है। पूरा देश ही इनका कार्य क्षेत्र रहेगा। पर गोवर्धन और भोला महाराज कहाँ हैं? उन्हें भी तो यहाँ होना चाहिये था।'

'काका, उन्हें बुंदेलखंड भेज दिया है।' गुरूजी हरप्रसाद चौबे ने जवाब दिया।

'ठीक है, हम स्वयं बुन्देलखंड जा रहे हैं। उनसे भेंट हो जाएगी। हरप्रसाद तुम्हें भी कल ही प्रस्थान करना हैं।'

'कहाँ?'

'पहले बम्बई। वहाँ पहुँचकर आसपास की जगह मालूम हो जाएँगी। फिर कुछ दिन बाद इलाहाबाद, कानपुर, लखनऊ, बनारस, पटना और कलकत्ता। प्रवास लम्बा रहेगा। हर जगह वातावरण अनुकूल है। दयानन्द सरस्वती और रानाडे साहब के कार्यकर्ता और शिष्य इन सभी स्थानों पर मिलेंगे। धार्मिक सुधार, कुप्रथाओं का विरोध और स्वदेशी भावना से जन-जागरण कर रहे हैं ये महापुरुष। तो अब सब लोग अपने-अपने कार्यों की योजना पर एकाग्र रहें।'

'भागीरथजी, हमारे लिए क्या आदेश है।' सेठ गंगाधर ने पूछा।

'आप और मुंशीजी अब यहीं रहेंगे। आपसे भेंट होती रहेगी। मैं और अकबर एक-दो रोज़ हैं अभी। काम हर जगह ज्यादा है। कठिनाइयाँ आएँगी। कंपनी राज और आज की व्यवस्था में ज्यादा अन्तर नहीं आया है। कंपनी राज में फिरंगी लड़ाईयों और लूट पाट में लगे रहे। अब काम भी कर रहे हैं पर जनता का शोषण भी कर रहे हैं और फूट डालो-राज करो से नफरत फैलाने का काम कर रहे हैं। अब ये राजा हैं और हम प्रजा। ये शासक हैं, शोषक हैं और अन्यायी हैं। रियासतों के राजा ही नहीं, विद्वान और योग्य व्यक्ति भी इन फिरंगियों के साथ मित्र-भाव रखते हैं। सर सैयद अहमद खाँ ने अलीगढ़ में मोहम्मडन एंग्लो ओरियंटल कॉलेज खोला है। वहाँ पाश्चात्य शिक्षा और तौर-तरीके सिखाये जाते हैं। इतना ही नहीं 'लॉयल मुहम्मडन्स आफ इंडिया' नाम से अखबार भी निकाला जिसमें स्वतंत्रता की कोई बात नहीं की गई है। अंग्रेज़ उनसे प्रसन्न हैं और हिन्दू-मुसलमान के बीच दुश्मनी फैलाना चाहते हैं। इससे बचना आवश्यक है। इसलिए हमें कोशिश करना है कि हमारे साथ ऐसे लोग नहीं आ सकें। इतना ही नहीं हमें उन लोगों से दूर भी नहीं जाना है जो अंग्रेज़ों के मित्र हैं लेकिन हम भारतीयों के विरोधी नहीं है। पंडित जानकीप्रसाद का ही उदाहरण लें। भले ही वह हमारे आन्दोलन में साथ नहीं आये।' इतना सब कहने के साथ ही भागीरथ कुछ क्षण मौन रहे। फिर बोले- 'अब, बातें बहुत हुईं। इस गोष्ठी को यहीं विराम देते हैं।'

रात में भागीरथ गजाधर के घर ठहरे। अकबर गोवर्धन के साथ अपने किसी रिश्तेदार के घर चले गये। जब सआदत खाँ साहब जीवित थे, तब उनके साथ वहाँ गये थे वह कुछ दिन के लिए। एक बार फिर वहाँ पहुँच तो गये, पर मन ही मन चिन्तित थे। पता नहीं बदलते हुए हालात में उन लोगों का भी मन न बदल गया हो। अंग्रेज़ी रंग-ढंग के प्रति दीवानगी तब भी महसूस हुई थी उनमें, अकबर इसीलिए विचलित हो रहे थे।

उधर भागीरथ भी बेचैनी में करवट बदल रहे थे। गजाधर बाबू ने उनकी अगवानी करते ही एक ऐसा समाचार दिया था कि भागीरथ सो नहीं पा रहे थे। गजाधर बाबू ने बताया कि माल रोड पर नया अस्पताल भवन बनने के बाद सर सूबा फिलौज, सिंधिया महाराज और सेठ गंगाधर से सलाह कर डॉक्टर मुखिया ने नदी मार्ग सरकारी अस्पताल का भवन सेठ रामदास घनश्यामदास जौहरी को बेच दिया है। पहले जिस हवेली में अस्पताल किराये पर चलता था उसे मालिक सेठ चन्दनदास ने सर सूबा साहब को सौंप दिया है। अब ये तीनों सेठ पहले सिंधिया से मिले फिर सर सूबा साहब और

रेसीडेंट डूरंड साहब से मिले थे। इन सब की मिलीभगत है और ये सेठ कपास की गठानें बनाने का कारखाना लगा रहे हैं। धर्मार्थ काम की और बस्ती-ग्वाड़ी की ज़मीन पर कारखाने खुलेंगे। सुना है सिंधिया स्वयं भी एक कपड़ा मिल खोलने की इच्छा रखते हैं। अंग्रेज़ों के साथ सिंधिया तो थे ही, अब शहर के तीन बड़े सेठ भी उनसे मिल रहे हैं।

इधर भागीरथ एक चिन्ता में डूबे हुए थे तो वहीं गुरूजी हरप्रसाद भी बेचैन थे, पंडित जानकीप्रसाद की योजनाओं को लेकर। वह सोच रहे थे कि पंडित की मानसिकता तो अब बदलने से रही, पर गोपालप्रसाद को क्या हुआ है। शिक्षित हैं। बम्बई में रहते हुए स्वामी दयानन्द जी से भी संपर्क हुआ। बाल-विवाह के पश्चात अब दूसरा विवाह, पहली पत्नी के होते हुए भी। हरप्रसाद के भीतर जो प्रेम और अपनत्व की कुछ भी भावना शेष थी तो उसे इन बाप-बेटों ने मिटा दिया। मन कड़वाहट से भर गया। पुश्तैनी, सामन्ती और सड़ी-गली सोच में डूबे हैं सब लोग, अब भी। धर्म, ईश्वर और परंपरा की दुहाई देते हैं और रूढ़ियों को ही पाल-पोस रहे हैं। कमबख्त। मुँह से यही निकला उनके। यही कड़वाहट मन में लिए हुए हरप्रसाद अपने नये गंतव्य की ओर रवाना हुए।

उज्जैन शहर फिर बदल रहा था। अंग्रेज़ी पद्धति की शैक्षणिक संस्थाएँ प्रारंभ हो रही थीं। दूर-सुदूर स्थानों से सेठ-कारोबारी आ रहे थे। कपास-रूई की गाँठे बनाने वाली जिनिंग फैक्ट्री बन रही थीं। भैरवगढ़ में छीपों की वस्त्र छपाई और हथकरघे उजड़ने की राह पर थे। सेठ-कारोबारियों की दिलचस्पी कल-कारखानों में थी। सिंधिया महाराज के दत्तक पुत्र अभी छोटे थे। महाराज बीमार। मराठा सरदारों और अंग्रेज़ रेसीडेंट भी रीति-नीति-अवसर का लाभ ले ही रहे थे। महाराज स्वयं उनके प्रशंसक। फिर क्या था। स्वदेशी भावना पर आघात हो रहे थे। राजनीतिक रूप से अशक्त सर-सूबा उज्जैन तरक्की तो कर रहा था पर किस कीमत पर। इसे समझने वाले इस शहर में कम थे।

मुखिया परिवार भी इस तरक्की के रास्ते पर चलकर खुशहाल था। सरोवर से लगी ज़मीन बढ़ रही थी। नई हवेली बन रही थी। ग्वालियर में महाराज बीमार थे। उनका दत्तक पुत्र अभी बालिग नहीं था। इधर पंडित जानकी बीमार-परेशान। उन्हें भी वंश-वृद्धि की चिन्ता सताती रहती हर समय। इसीलिये वह अपने पुत्र पर दूसरे विवाह के लिए दबाव बनाते। पुत्र गोपालप्रसाद की उलझने बढ़ती जा रही थी। वह इस विषय पर बात नहीं करते और मन-बहलाव के लिए इन्दौर चले जाते थे। उमारानी की चिन्ताएँ भी बढ़ रही थीं। उन्होंने भी गोपालप्रसाद पर दबाव बनाना शुरू किया। कभी-कभी उनमें

उग्र वार्तालाप भी हो जाते थे। एक दिन। उमा ने कहा- 'हम चाहते हैं कि एक पुत्र गोद लिया जाए। हमें भी एक काम मिल जायेगा।'

'हाँ, बापूजी भी चाहते हैं कि उनके वंश को एक कुल दीपक मिले।'

'तो फिर आप बात आगे क्यों नहीं बढ़ा रहे।'

'बापूजी दत्तक नहीं। अपने रक्त संबंधों से वारिस चाहते हैं।'

उमा रानी ऐसी बातें सुनकर उदास हो जाती थीं। ऐसी ही मनःस्थिति में दिन कट रहे थे। गोपालप्रसाद अपने ही कामों में व्यस्त रहते थे। उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ रहा था। उमा के लिए यह और भी कष्टप्रद था।

फिर एक शाम, सब कुछ बदल गया। हमेशा की तरह अपने काम करते हुए पंडित जानकीप्रसाद ने आखिरी साँस ली। अंतिम समय धर्मदास और जगजीवन ही साथ थे। जगजीवन ने ही गोपाल को समाचार दिया। उमा रानी के साथ वह भी पहुँच गए। मुखिया परिवार का यह छोटा-सा उज्जैन घराना उदासी में डूबा था। घराने का प्रथम पुरूष अब मौन था। सुबह तक इन्दौर से महीपतसिंह सपरिवार आ गए थे। नदी घाटी की बस्ती में मातम पसर गया था। कुटिया में गोपाल खामोश बैठे थे। उनका दुख बाँटने वाले कई थे। लेकिन उमारानी अपना मन किसके आगे खोलें। अपना दुख किससे कहें।

महीपतसिंह उदास थे, उनका मित्र साथ छोड़ गया। धर्मदास और जगजीवन का बालसखा चला गया। घाटी बस्ती के लोग अंतिम संस्कार की तैयारियाँ कर रहे थे।

ओखलेश्वर श्मशान की ओर शवयात्रा प्रारंभ हुई। जानकी पंडित अनजान सफर पर चल पड़े। गोपाल ने मुखाग्नि दी और चिता सुलग उठी।

फिर, दश गात्र और त्रयोदशी। छहमाही और बरसी और गया तीर्थ जाकर पिंडदान भी कर आए गोपालप्रसाद अपने दिवंगत पिता का। एक अध्याय समाप्त हुआ। घराने के इकलौते वारिस अब अपने वारिस की चिन्ता में डूबे थे। शुभचिंतक कई थे। हर ओर से नये-नये सुझाव मिल रहे थे। डॉक्टर गोपाल सुनते रहते। उमा अपनी ही दुनिया में थीं, नितान्त अकेली। गोपाल के सपने अनन्त। उमा की चिंता एक। सलाह अनेक। एक नया अध्याय खुलने को था। एक नये पृष्ठ की, पता नहीं कौन-सी इबारत प्रतीक्षा कर रही थी।

***

भाग-13

उज्जैन में अस्पताल के नये भवन निर्माण की योजना बन रही थी। डॉक्टर गोपाल द्वारा प्रस्तावित योजना को अंग्रेज सरकार और सिंधिया महाराज का पूरा समर्थन था। सिंधिया एक ओर भवन निर्माण के विषय में सोच रहे थे, जिसमें वह एक कॉलेज भी स्थापित करना चाहते थे। कुछ रियासत की और कुछ निजी ज़मीन रेलवे स्टेशन के समीप देवास गेट से लगी थी। रेलवे स्टेशन के पीछे एक विशाल जंगल था, जिसे साफ कर वहाँ एक नए नगर का निर्माण हो रहा था। कई नगर सेठ, साहूकार-व्यापारी और ठिकानेदार वहाँ अपनी कोठियाँ बना रहे थे। डॉक्टर गोपाल की भी जमीन थी वहाँ। जंगल के आखिरी छोर पर सिंधिया का एक महल था। सिंधिया अपने नगर आगमन पर यहाँ या कालियादह महल में ठहरते थे। महाकाल को उज्जैन का राजा माना जाता है। और कोई दूसरा राजा वहाँ रात में नहीं ठहर सकता। इसलिये सिंधिया शहर के बाहर ठहरते थे।

डॉक्टर गोपाल की हवेली में चहल-पहल बढ़ गयी थी। वार-त्यौहार और अवकाश के दिनों में दूसरी मंज़िल की छत पर दरबार लगता था। जावरा, रतलाम, इंदौर, अलीराजपुर, अमलेटा और मान्धाता से राजे-राजवाड़े के जागीरदार, जमींदार और ऊँचे औहदेदार आते थे दरबार में। गोपाल मुखिया के सबसे आत्मीय संबंध थे। डॉक्टर गणपत सिंह के पुत्र प्रकाश और रघुनंदन मेहमानों की आवभगत का जिम्मा संभालते थे। ऐसे समय में उमा रानी अक्सर उदास रहतीं। धर्मदास से अपनी व्यथा-कथा कहकर मन हल्का करने की असफल कोशिश करतीं। धर्मदास, डॉक्टर गोपाल से बात करते थे इस विषय में। उन्हें बताते थे उमा रानी के संबंध में उनकी जिम्मेदारियाँ। वही बुजुर्ग थे घर के। पर गोपाल अनसुनी करते रहे।

नये नगर में गोपाल ने दो हवेलियों का निर्माण करवाया। पूजा-पाठ और हवन आदि हुए। फुरसत होकर पारिवारिक बैठक में पंडित शालिग्राम, चतुर्भुज तिवारी और धर्मदास के अलावा डॉक्टर गणपत सिंह सपरिवार उपस्थित थे। चतुर्भुज तिवारी ने गोपाल को जानकी पंडित की आखिरी इच्छाओं का स्मरण कराया।

'क्या कहना चाहते हैं आप, तिवारी जी?' धर्मदास ने पूछा।

'वही, जो पंडित जी चाहते थे।'

'क्या चाहते थे?'

'वह चाहते थे कि डॉक्टर साहब दूसरा विवाह करें।'

'क्या, एक पत्नी के रहते हुए दूसरा विवाह? हमने तो नहीं सुना, उन्हें यह कहते हुए कभी।' गणपतसिंह ने कहा।

'आप कब-कब उपस्थित रहे वहाँ?'

'उपस्थिति तो हमने आपकी भी दर्ज नहीं की तिवारी जी।' धर्मदास ने कहा।

'धर्मदास, तिवारी जी सही कह रहे हैं। पंडित जानकीप्रसाद ने कहा था कि गोपाल की जन्म कुंडली में तीन विवाह का योग है। दूसरी और तीसरी पत्नी से ही संतानें होंगी।' पंडित शालिग्राम ने बहस में हस्तक्षेप किया।

'निःसंतान तो नहीं हैं उमा-बहू पंडित जी' धर्मदास ने कहा।

'देखिए, इन सब बातों के लिए यह सही समय नहीं है। हम फिर बात करेंगे। अभी तो हमें अस्पताल जाना है। एक महामारी से फुरसत हुए हैं, कुछ और न हो, हमें यह भी सोचना है।' डॉक्टर गोपाल ने कहा और वह खड़े हो गए।

डॉक्टर गोपाल नहीं चाहते थे कि उमा रानी इस चर्चा को सुनें। पर उमा ही नहीं गणपत सिंह के दोनों पुत्र भी यह बातचीत सुन रहे थे। भीतर पास वाले कमरे में ही बैठे थे तीनों। मेहमानों को विदा कर गोपाल भीतर पहुँचे। प्रकाश और रघुनंदन बाहर चले गए। डॉक्टर गोपाल तैयार होते रहे। जब वह अपना बक्सा और एक फाइल लेकर बाहर जाने को निकल रहे थे, उमा ने रोक लिया।

'ठहरिए डॉक्टर साहब। बताइए जरा, अब हम जीकर क्या करें? हमारे जीने का कोई प्रयोजन रह गया है क्या?

'यह क्या कह रहीं हैं आप?

'और क्या कहें। हमारी कोई संतान जीवित नहीं रही तो इसमें हमारा क्या दोष। हमने इसे ईश्वर की इच्छा और अपना भाग्य मान लिया। अब इस भाग्य में यह भी लिखा है कि

अपनी दो सौतनों की भी अगवानी करें हम। हमारे ब्याह से पहले बापूजी ने शायद हमारी कुंडली इसलिए नहीं बाँची थी कि सब मिलकर हमें यह दंड देना चाहते थे। बोलिए।'

डॉक्टर गोपाल चुप रहे। उन्हें मालूम था कि बापूजी ने कुंडली-मिलान नहीं किया था। बस घर-द्वार देखकर स्वीकृति दी थी।

'चुप क्यों हैं। कुछ तो बोलिए। हमारा दोष हो तो बताइए। क्या दंड है इस दोष का, अंग्रेज अफसर से भी पूछ लें जरा।'

'यह वे लोग कह रहे थे कि बापूजी ने ऐसा कहा था। यह हमारा निर्णय नहीं है।'

'आपका निर्णय क्या है? यह भी बता दें।'

'छोड़िए इन बातों को अभी। अस्पताल जाने दें।'

डॉक्टर गोपाल किसी तरह उमा को शांत करना चाह रहे थे। पर मन उनका भी शांत नहीं था। तय नहीं कर पा रहे थे कि दूसरा विवाह करें या न करें। वह यह भी सोच रहे थे कि उमा की खुशी के लिए एक पुत्र गोद लेना ही होगा। जानकी पंडित ने जो कुछ कहा था, उन्हें वह सब याद था। किसी को गोद ले लेते हैं तो शादी की राह शायद आसान हो जाए। यह भी सोचते थे। आखिर पिता की आखिरी इच्छा थी। सेठ गंगाधर, ठाकुर जोरावर सिंह और व्यासजी महाराज से भी बात हुई थी एक बार। यह सब सोचते हुए वे अस्पताल के लिए रवाना हुए। क्या करें, क्या न करें, इसी में मन उलझा हुआ था। एक ओर उमा का ख्याल था तो दूसरी ओर पिता की अंतिम इच्छा का स्मरण। तीस बरस हो रहे हैं ब्याह को। सन्तानें जीवित न रहने का दुख दोनों को है। उमा गलत नहीं कहती कि क्या दोष है उनका। तब ही पिता का सोच में डूबा हुआ चेहरा दिखाई देता। अपना वंश चलाने वाला कोई उनके सामने खेले, यह इच्छा मन में लिए हुए ही वह गुज़र गए। अपना-अपना भाग्य ही तो है यह। यही सब सोचते हुए अस्पताल पहुँचते हैं।

डॉक्टर गोपाल का किसी काम में मन नहीं लग रहा था आज। अपने कक्ष में बैठे हुए सुस्ता रहे थे। बैठे-बैठे आँखें बंद कर पीछे टिक जाते हैं। अचानक यादों में एक दृश्य सामने आने पर चौंककर उठ जाते हैं।

'क्या हुआ सर?' प्रवेश करते हुए सहयोगी कहता है।

'कुछ नहीं।' कहकर वह वार्ड की ओर निकल जाते हैं।

शाम का समय था। घर में बिस्तर पर लेटे थे डॉक्टर गोपाल। प्लैग और हैजा जैसी संक्रामक बीमारियों से पीड़ित लोगों के लिए शहर से दूर हट्स बन रहे थे। वहाँ लगभग रोज़ ही जाना होता था। इन कामों में थकावट अनुभव नहीं की, पर आज हो रही थी। शरीर और मन, दोनों थके-थके से। प्रश्नाकुल हो रहा था मन। सोचा, व्यासजी महाराज से मिला जाए। उठे और चल दिए। व्यासजी से मिलकर उन्हें मानसिक शांति ही नहीं मिलती, बल्कि कई लोगों से परिचय-मुलाकात भी हो जाती। आज भी जब वे पहुँचे तब वहाँ एक सज्जन बैठे हुए थे। वह अपने पोते की जन्म कुंडली बनवाने आए थे। पता नहीं क्यों, वह कुछ उदास बैठे हुए थे। व्यास जी अपनी गादी पर बैठे हुए ग्रह-नक्षत्रों का गणित कर रहे थे। डॉक्टर गोपाल उनके पास ही बैठ गए।

'मित्र, इस बालक के ग्रह कुछ अलग ही सूचना दे रहे हैं।'

'मैं कुछ समझा नहीं महाराज। पहले तो ऐसा नहीं कहा था आपने।'

'पहले टेबा बनाकर दिया था। अब कुंडली बनाई है विस्तृत। दशा-महादशा का भी अध्ययन किया है। वही आपको बताना है।'

'बताएँ।'

'ग्रह यह बोल रहे हैं कि इस बालक का आपके साथ रहने का नहीं बनता है। यदि साथ रहा तो संकट आएगा इस पर।'

'इससे बचने का कोई उपाय तो होगा।'

'प्रश्न उपाय का नहीं हैं मित्र। ग्रह दशाओं का है।'

'फिर, करना क्या होगा?'

'करना क्या है। ग्रहों की चाल को बदला नहीं जा सकता। इससे कहीं और देंगे आप? फिर आगे ईश्वरेच्छा।'

'कोई इसे गोद लेगा। ऐसा कह रहे हैं आप।'

'हम नहीं कह रहे, ग्रह कह रहे हैं। बंधुवर आप इसे देंगे, तब ही कोई लेगा।'

'पर, ऐसा कैसे हो सकता है।'

'क्यों नहीं हो सकता है। हमारे प्राचीन ग्रंथों में भी इसके प्रमाण मिलते हैं। इतिहास में भी। दूर क्यों जाएँ, माधवराव जी हमारे श्रीमंत के दत्तक पुत्र हैं। हमारा भविष्य का महाराज दत्तक पुत्र है। कितने ही भले मानस मिलेंगे जिनके यहाँ संतान नहीं है। अब आप जो भी सोचें।'

'ठीक है महाराज, अभी तो आप कुंडली बना दें।'

'अरे भाई कुंडली तो बन गई है। हम तो ग्रह, ग्रहों की स्थिति और योग की बात कर रहे थे।' उन्होंने कुंडली थमा दी। उन सज्जन ने कुंडली ली और व्यास जी की पोथी पर दक्षिणा रखकर उठ गये।

'डॉक्टर साहब, आप भी विचार करिएगा। ब्राह्मण परिवार है। घर में भी सभी लोग सीधे-सादे हैं। हमारे पास आते रहते हैं। जो गए हैं इनके पिता रामभरोसे मेहता हमारे पुराने परिचित हैं। उन्हीं के पुत्र हैं बलभद्र मेहता। खेतीबाड़ी है इनकी और एक छोटी-सी दुकान है परचूनी की।'

डॉक्टर साहब भी चले आए थे उस समय। लेकिन उनका मन फिर विचलित हो गया था। वही सोच। क्या करें, क्या न करें। कभी-कभी स्वामी दयानन्द के प्रवचन और उनसे हुए वार्तालाप याद आते। स्वामी जी बाल विवाह के विरोधी तो हैं ही, उनकी विचारधारा सती प्रथा और बहुविवाह के भी विरूद्ध है। लेकिन बापूजी का स्मरण होते ही तर्कवादी विचार पीछे छूटने लगते। वंश वृद्धि के लिए दूसरा विवाह करना ही होगा, इसी भावना से वशीभूत होने लगते डॉक्टर साहब। आखिर वही हुआ।

एक दिन पंडित चतुर्भुज तिवारी, शालिग्राम जी के साथ आए। दोनों इस बार पोथी-पत्रा सहित एक निर्णय के साथ उपस्थित हुए थे। आते ही शालिग्राम जी बोले- 'हमने कुंडली का मिलान कर लिया है। अच्छे गुण मिल रहे हैं।'

'किसकी बात कर रहे हैं पंडित जी।'

'अरे तुम्हारी और तिवारी जी की कन्या की गोपाल लल्ला। दोनों की कुंडली हमने देखी है और अच्छी मिलती है। अभी शुभ मुहूर्त निकालते हैं। हम पंचांग साथ लाये हैं।'

'तो शुभ काम में देरी क्यों? पंडितजी पत्रा देखिये न।' तिवारी जी बोले।

'इतनी शीघ्रता मत करिये पंडितजी। हम चाहते हैं कि पहले एक पुत्र गोद लें जिससे हमारी पत्नी को प्रसन्नता दे सकें।' डॉक्टर गोपाल ने कहा तो तिवारी जी ने तुरन्त अपनी समझाइश दी कि 'विवाह के उपरान्त भी आप पुत्र गोद ले सकते हैं डॉक्टर साहब।'

'हां, लल्ला। कुंडली में संतान योग प्रबल है।'

गोपाल ने अन्ततः अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी और पंडित शालिग्राम ने तुरन्त ही शुभ मुहूर्त निकाल लिया। बोले- 'वसंत पंचमी का मुहूर्त है। वैसे भी वसंत पंचमी निर्दोष योग होता है। इस दिन विवाह बिना सोच-विचार किये जा सकते हैं।'

'अब हम हाँ तो कह रहे हैं पंडित जी। मुहूर्त अभी से मत निकालिए। हम चाहते हैं कि एक बार व्यासजी महाराज और शीलनाथ बाबा से मिलकर उनके विचार भी जान लें।'

'अब आप जैसा चाहें। पर हमारे विचार से बाबा और महाराज कोई विपरीत बात नहीं कहेंगे।' तिवारी जी ने कहा।

'फिर आप शीघ्रता क्यों कर रहे हैं। कुछ दिन ठहरने से हम बूढ़े तो नहीं हो जाएँगे और फिर कन्या की अभी उम्र ही क्या है?'

'डॉक्टर साहब, गईया और बिटिया खूंटे से बँधी ही शोभा देती हैं। फिर पहली शादी के समय आपकी उम्र क्या थी? और बहूरानी की भी उम्र कम ही रही होगी।'

'उम्र में वह हमसे एक बरस बड़ी हैं तिवारी जी।'

तिवारी जी ने अब चुप रहना ही ठीक समझा। शालिग्राम पंडित ने ही कहा कि 'कोई बात नहीं कुछ दिन और सही। अगला कोई मुहूर्त देख लेंगे।'

उस दिन बात आई-गई हो गई। लेकिन थमी नहीं चर्चाएँ।

सुबह-सुबह ही सर-सूबा फिलौज साहब आ गये थे। उनका प्रस्ताव था कि भ्रमण के लिए साथ चला जाए। पहले से ही नगर के कुछ सेठ बैठे हुए थे। वे चाहते थे कि हुंडी के लेन-देन में डॉक्टर साहब उनके भागीदार बनें। दो आना सैकड़ा डॉक्टर साहब से धन की माँग कर रहे थे। डॉक्टर साहब को कोई परेशानी नहीं थी, पर मिस्टर फिलौज इस लेन-देन पर मुस्कुरा दिये। जब सेठ लोग विदा हो गये तब मिस्टर फिलौज बोले - 'डॉक्टर साहब, आपकी व्यापार में भी दिलचस्पी है।'

'अरे, हम कहाँ कुछ कर रहे हैं। काम तो ये सेठ साहबान करेंगे। हम तो उन्हें मदद कर रहे हैं। लक्ष्मी है, जाएगी तो फिर लौटेगी। सेठ लोग नगर का ही भला कर रहे हैं। उनके भले कामों में हमारी पूंजी का भी योगदान रहेगा।'

डॉक्टर गोपाल की बात सुनकर मिस्टर फिलौज ने उस दिन भ्रमण-कार्यक्रम स्थगित कर दिया। इन दिनों अवकाश के समय भी डॉक्टर साहब फुरसत में नहीं रहते थे। हवेली में कई लोगों का आना-जाना चलता रहता। व्यासजी आते रहते थे। और भी कई पंडित, पंडे-पुजारी और साहूकार आते थे। पंडित जानकीप्रसाद से उनके निजी सम्बन्ध थे। डॉक्टर गोपाल के भी अंग्रेज अफसरों, जागीरदारों और श्रीमंत सिंधिया के दरबारियों से ताल्लुकात थे। कईयों के काम सधते थे परस्पर। दरबार बैठता था। अक्सर जगजीवन ऐसे लोगों के आने-जाने पर प्रश्न करा करते थे।

'अपनी व्यस्त दिनचर्या में भी तुम इन लोगों को समय देते हो लल्ला। इन लोगों के अपने स्वार्थ हैं, यह नहीं सोचते तुम।'

'काका, इनमें से कई लोग बड़े ज्ञानी हैं। विद्वान, गुणी और मर्मज्ञ। व्यासजी और शीलनाथ बाबा से कम नहीं हैं ये सब। ये कोई उपदेश दें या न दें, पर कई बार ऐसी बात कह जाते हैं कि वही शास्त्र बन जाता है।'

'तुम कुछ भी कहो गोपाल, पर भोला महाराज सही कहते थे कि ये सब ठग हैं। भुलावा देते हैं और भटकाते हैं। तुम्हें अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करनी है और दूसरों की भी।'

'हम कुछ समझे नहीं काका।'

'अब भोले मत बनो। तुम्हें उमा बहू की उदासी दिखाई नहीं देती। कुछ सोचा है उनके बारे में।'

'सोचा है काका। एक दिन, योगीराज पंडित रामभरोसे व्यास आए थे।'

'हाँ, जानते हैं हम उन्हें। शीलनाथ जी के शिष्य हैं।'

'जी, उन्होंने एक अनुष्ठान बताया है। सन्तान प्राप्ति के लिए वह करवाना है। उमा रानी की भी सहमति है।

'कैसी बात करते हो तुम। बहू को किसी अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं है। संतान जीवित नहीं रही, इसका यह मतलब कैसे लगा रहे हो कि संतान होगी ही नहीं। तुम्हारी या बहू की, किसकी कुंडली में यह लिखा है कि संतान-योग नहीं है।'

'पर, काका कितनी प्रतीक्षा करनी होगी।'

'तो क्या पाखंड पर विश्वास करोगे।'

'काका, हम पाखंड पर विश्वास नहीं करते, न बापूजी करते थे। उन्होंने तो कुंडली-मिलान ही नहीं किया था हम दोनों का। विवाह किया विश्वास के बूते पर।'

'विश्वास! ईश्वर पर विश्वास करते हो न।'

'हाँ तो?'

'तो यही, ईश्वर पर छोड़ दो। वही कुछ करेंगे।'

'वही तो, हम यह अनुष्ठान का कार्य इसलिए तो करवाना चाहते हैं। यही हमारे ईश्वर की इच्छा है।'

'ठीक है बेटा। जो तुम्हें अच्छा लगे करो। हुई है वही जो राम-रचि राखा, को करि तर्क बढ़ावहिं साखा।'

जगजीवन नदी घाटी की बस्ती की ओर चले गये। उन्हें आजकल वहाँ गजाधर के साथ रहना ही अच्छा लगता है। दीन-दुनिया की खबरें मिलती रहती हैं। शायद भागीरथ और भोला महाराज की कोई सूचना, गुरूजी का कोई समाचार आया हो। यहां ज्यादा देर रहे तो धर्मदास आकर अपनी बातों में उलझा लेंगे। अब उनसे और गोपालप्रसाद से मगजपच्ची करने से अच्छा है कुछ रचनात्मक काम किये जाएँ।

गोपालप्रसाद हवेली के पीछे बैठे हुए अपने खेतों, सरोवर और परिवार के नामचिन्ह पत्थरों को देखकर अत्यंत प्रसन्न थे।

'खेतों की ओर जाने वाले रास्ते पर सिंहद्वार बन चुका है, कुएँ की जगत का काम बाकी है बस, हुज़ूर।' ठेकेदार बब्बा ने अभिवादन करते हुए कहा।

'मंदिर के काम में भी ज़रा फुर्ती दिखाइए बब्बा।'

'हुजूर, अक्षय तृतीया तक मंदिर भी पूरा हो जाएगा।'

'अरे नहीं ठेकेदार भईया जी, मंदिर का कार्य महाशिवरात्रि के पहले सम्पन्न कर लें। अक्षय तृतीया को डॉक्टर साहब नई बहूरानी के साथ पूजन करेंगे।' पंडित शालिग्राम ने उपस्थित होते हुए कहा।

'आइये पंडित जी, प्रणाम।'

ठेकेदार ने भी चरण स्पर्श किये।

'पंडित जी, यह क्या कह रहे हैं आप?'

'हम ठीक कह रहे हैं डॉक्टर साहब। वसंत पंचमी के शुभ अवसर पर आपका विवाह सम्पन्न होगा। महाशिवरात्रि तक मंदिर निर्माण संपन्न हो जावे तो रुद्राभिषेक के साथ मंदिर का शुभारंभ करेंगे। नहीं, तो फिर अक्षय तृतीया का पर्व ही श्रेष्ठ मुहूर्त होगा।'

डॉक्टर साहब चुप रहे। तभी इस मंडली में पंडित धर्मदास भी जुड़ गये। वही बोले- 'महाराज जी, इससे पूर्व नवरात्रि भी है। तब शुभारंभ हो तो कैसा रहे? क्यों लल्ला।'

'नहीं धर्मदास जी नवरात्रि का एक अलग महत्व है। घट-स्थापना होगी। नौ दिन देवी पूजा होगी। हवन-विसर्जन होगा। फिर राम नवमी। राम जी का जन्मोत्सव होगा। ऐसे समय में यह उचित नहीं होगा।'

'फिर?'

'महाशिवरात्रि अथवा अक्षय तृतीया पर शुभारंभ उचित रहेगा। विवाह वसंत पंचमी पर ही होगा।'

'हमने आपसे रुकने के लिए निवेदन किया था पंडित जी।' डॉक्टर गोपाल ने कहा।

'आपकी बात पर बहुत सोचा हमने। अब आप भी किन्तु-परन्तु की उलझनें निकाल दें मन से। तर्कवादियों की बातें भूल जाएँ और शास्त्र-सम्मत परामर्श को याद रखें। तर्कवादी शास्त्रों में भी कमियाँ निकालने का दुस्साहस करते हैं। भगवान श्रीकृष्ण की आठ रानियाँ थीं। भूल गए आप।'

डॉक्टर गोपाल शायद ऐसे ही परामर्श की राह देख रहे थे जिसमें दृढ़ निश्चय हो। पंडित शालिग्राम की बातों में उन्हें यही प्रतीत हुआ। अपने मन की प्रसन्नता और उत्साह पर नियंत्रण के साथ उन्होंने अपनी सहमति दे दी।

'हमें आपका निर्णय उचित लग रहा है, पंडितजी। धर्मदास काका विवाह की तैयारियाँ शुरू करें आप।'

'आप मंदिर-निर्माण कब तक पूरा कर लेंगे?' पंडितजी ने ठेकेदार से पूछा।

'महाराज, अक्षय तृतीया तक कार्य पूरा हो जाएगा।'

'ठीक है। अब हम चलते हैं डॉक्टर साहब। तिवारी जी को भी शुभ समाचार देना है।'

पंडित शालिग्राम के रवाना होते ही, सभी लोग अपने-अपने काम में व्यस्त हो गए।

मंदिर का कार्य चलता रहा। सुबह-शाम निरीक्षण होता था। कभी-कभी कुछ उत्साही लोग अपना सुझाव देते। ठेकेदार हँस देते। उन्हें हर काम निर्देशानुसार करना था। गजाधर बाबू, जगजीवन और धर्मदास की बातों पर वह ध्यान देते थे। मिस्टर फिलौज के सुझावों के समय भी गंभीर बने रहते। हवेली में भी कुछ काम हो रहा था। भूतल पर, पीछे वाले हिस्से में एक लम्बा बरामदा था। तीन हिस्सों में था वह। बीच का हिस्सा रसोईघर था। उससे लगा भंडारघर था। तीसरा हिस्सा बाहर के दरवाज़े के पास था। स्नानघर और शौचालय। दरवाज़े से मंदिर दिखाई देता था। मंदिर और दरवाज़े के बीच बड़ा सा पीपल का वृक्ष था। पास ही हरे-भरे मौसमी पेड़-पौधों की झाड़ियाँ थीं। इन झाड़ियों के पास ही दोनों ग्वाड़ियों के बीच शौचालय बन गए थे। ये ग्वाड़ी वालों के उपयोग के लिए थे।

'और क्या नये काम हो रहे हैं ठेकेदार।' एक दिन गजाधर ने पूछा था।

'सुना है कि डॉक्टर साहब एक और विवाह कर रहे हैं।' ठेकेदार ने कहा था।

'कोई अनुष्ठान होने वाला है। यह सुना था हमने तो।'

'ठीक सुना था साहब। पर अब नहीं होगा अनुष्ठान। जगजीवन बाबू ज्यादा जानते हैं।'

'हाँ, पुत्र-प्राप्ति के लिए कोई पूजा करवाने वाले थे गोपाल। पता नहीं क्या धुन सवार होती रहती है लल्ला को। बहूरानी चाहती हैं कि बच्चा गोद ले लें पर नहीं। दूसरा विवाह कर रहे हैं।' जगजीवन ने बताया।

'जी, वसंत पंचमी के दिन विवाह होगा। और अक्षय तृतीया पर मंदिर का शुभारंभ होना है। शालिग्राम जी तय कर गए हैं।' ठेकेदार ने जानकारी दी।

'ईश्वर की जैसी इच्छा, गजाधर बाबू।' जगजीवन ने कहा।

मंदिर बन रहा था। चर्चाएँ हो रही थीं। यहाँ, नदी घाटी की बस्ती में और नदी-घाट वाली छतरी पर भी। विषय हर जगह अलग होते थे।

यह वह समय था जब देश में जगह-जगह क्रांतिकारी दल गाठित हो रहे थे। सन 1857 की क्रांति एक शुरूआत थी। इसके असफल होने से नवजवानों को कोई फर्क नहीं पड़ा था। अब वह छोटे-छोटे समूहों में बँट रहे थे। अपना लक्ष्य चुनते और आक्रमण करते। उत्साह था इनमें। मरने की चिंता नहीं थी, मरने का जोश था।

शत्रु को चुनौती देने में विश्वास था इनका। पेशवा के इलाकों और उत्तर-पश्चिम के शहरों में हुई कुछ घटनाओं ने अंग्रेजों को डरा दिया था। मालवा और बुंदेलखंड में रेसीडेंट बदल गए थे। झाँसी से विल्सन और इन्दौर से डूरंड इंग्लैंड लौट गए थे। इंदौर में पदस्थ नये रेसीडेंट मिस्टर फिलिप कुछ कठोर और सख्त मिज़ाज अफसर थे। उज्जैन और इंदौर के ठिकानेदार, सेठ-साहूकार और जमींदार नये अफसर के हुजूर दरबार में हाजिरी दे आए थे। आश्वस्त लौटे थे कि उनके रूतबे में कोई फर्क नहीं आएगा। डॉक्टर गोपालप्रसाद, व्यासजी महाराज, महीपतसिंह, डॉक्टर धनपतसिंह और चंदन सेठ आदि कुछ प्रमुख लोग थे। जिनकी पहुँच नये हुजूर-दरबार में भी पूर्ववत बनी हुई थी।

इन्दौर और मालवा के अन्य क्रांतिकारी समूह की गतिविधियाँ भी पूर्ववत चल रही थीं। ओंकारेश्वर के जंगलों में बलिदानी तेवर वाले दल और अन्य डकैत-लुटेरे भी पहले की तरह ही सक्रिय थे। उज्जैन में गतिविधियाँ कभी उत्साह में दिखाई देतीं और कभी माहौल ठंडा बना रहता था। पंजाब के वीरों को दी गई फाँसी के बाद सभी एक नये काम की तैयारी में थे। इसलिए आस पास के क्षेत्रों में गुप्त स्थानों पर बैठकें होती रहती थी। गजाधर और जगजीवन नहीं चाहते थे कि इसका आभास उनके परिचितों को भी हो सके। इसीलिए उन्होंने अब डॉक्टर गोपाल की निजी ज़िन्दगी में दखल देने की सलाहों पर भी विराम लगाना शुरू कर दिया था। पर उनसे मिलते रहते थे, जिससे उन्हें या किसी को संदेह न हो।

'अब तक तो सब ठीक है भैया, आगे जो भी हो।' जगजीवन कहते।

'ठीक कहते हो। इसीलिए अब हमें डॉक्टर साहब से एक साथ मिलने भी नहीं जाना चाहिए। हमें शायद वह संदेह की दृष्टि से देखते हैं। जानकी पंडित की बात और थी। फिर

आप यहाँ जानकीप्रसाद के साथ ही आए और तब हम बुन्देलखंड में ही थे। हम यहाँ भोला महाराज के साथ आए थे, फिर यहीं रह गये।'

दोनों मित्र अपनी बात में व्यस्त थे, तभी दरवाजे पर दस्तक हुई। गजाधर ने दरवाज़ा खोलने से पूर्व भीतर से ही पूछा- 'कौन है?'

'मैं हनुमानसिंह हूँ पंडित जी।' बाहर से जवाब मिला।

दरवाजा खुलते ही आगन्तुक भीतर आए और कुछ कहने से पहले ठिठके। वह जगजीवन से परिचित नहीं थे, इसीलिए कुछ कहने से हिचक रहे थे।

'इन्हें अपना ही समझो। जगजीवन चौबे हैं। नुनसाई, बुन्देलखंड से आकर यहाँ बस गए हैं। भोला महाराज ही छोड़कर गये हैं इन्हें यहाँ।' आगंतुक हनुमानसिंह मुस्कुराए और बोले- 'पंडित जी, हम भोला महाराज का संदेसा लेकर ही आए हैं आपके पास।'

'कहां हैं भोला महाराज और सब साथी। और संदेसा क्या है?' जल्दी कहो।

'कौन कहाँ है, यह जानकारी तो महाराज ने नहीं बताई। बस इतना कहा है कि वह गुरूजी और गोवर्धन पंडित के साथ यहाँ आ रहे हैं कुछ दिनों के लिए। यहाँ मिलने का जो निश्चित स्थान है, वहीं मिलेंगे।'

बातें चल ही रहीं थीं, तभी दरवाज़े पर फिर दस्तक हुई। इस बार बिना सवाल किए जगजीवन ने दरवाज़ा खोला। शायद उन्हें मालूम था कि कौन है। सेठ गंगाधर भीतर आए।

'हमें समाचार मिला है कि भागीरथ जी और अकबर खान इंदौर आये हुए हैं। शायद वह उज्जैन आएँगे और उनके साथ भोला महाराज, गोवर्धन पंडित और गुरूजी भी आ रहे हैं। अवश्य कोई विस्फोटक जानकारी साथ लायें।' सेठ ने बताया।

'महाराज ने इतनी जानकारी हमें नहीं दी थी।' हनुमान सिंह ने कहा।

सेठ ने कहा- 'सिंह साहब, आपके यात्रा पर निकलने के बाद ही हमें यह समाचार मिला है। तब तक शायद यह निश्चय नहीं हुआ होगा।' यहाँ आने से पूर्व सेठ गंगाधर से मिल चुके थे हनुमान सिंह।

'एक साथ इतने मित्रों के आने के समाचार ने उत्साहित कर दिया है। पर यह तो बतायें सेठ जी, इतने दिनों रहे कहाँ?' गजाधर ने पूछा।

'ज्यादा दिन तो नहीं हुए हमें मिले हुए। बस कारोबारी काम से बाहर थे। जावरा, रतलाम, नीमच, माँधाता और इंदौर रहे।'

'सेठ जी, माँधाता तो किसी कारोबारी काम से नहीं ही गये होंगे।'

'सही कह रहे हैं। पहली जानकारी तो माँधाता में ही मिली। इसीलिए तो हम इन्दौर होते हुए आये हैं। जब राणोजी की छतरी पर ही भेंट होगी। अभी चलते हैं। चलिए सिंह साहब।' दोनों चले गये। गजाधर और जगजीवन प्रसन्न थे। वहीं निजातपुरा में भी माहौल खुशनुमा था। पर कारण कुछ अलग थे।

निजातपुरा में, बड़ी हवेली के पीछे मंदिर में निर्माण कार्य अंतिम चरण में था। मिस्त्री, कारीगर, बेलदार और मज़दूर, किसी को अवकाश नहीं था। सूर्यास्त तक काम होता था बिना रूके। कुएँ की जगत, छोटा-सा पनघट तैयार हो चुका था। ठेकेदार तो प्रसन्न थे ही, पर असल प्रसन्नता गोपाल, धर्मदास मिश्र, चतुर्भुज तिवारी और पंडित शालिग्राम जी के चेहरे पर थी।

'डॉक्टर साहब, अब आप मंदिर-शुभारंभ महाशिवरात्रि के अवसर पर कर सकेंगे। इससे पूर्व वसंत पंचमी पर नई दुल्हन गृह प्रवेश करेंगी। हमारे लिए यह अत्यंत प्रसन्नता की बात है।' पंडित शालिग्राम ने प्रसन्नतापूर्वक अपनी बात कही। धर्मदास बोले- 'पंडित जी, हम इसलिए और अधिक प्रसन्न हैं कि जानकी पंडित की अंतिम इच्छा पूरी हो रही है। व्यासजी महाराज भी प्रसन्न होंगे।'

'अवश्य। महाराज जी ही नहीं, उनके परम पूज्य गुरूजी सदाशिव जी खुश हुए। महाशिवरात्रि पर गुरूजी विशेष रूप से उपस्थित होंगे।'

'यह तो हमारा परम सौभाग्य है कि पंडित जी इस अवसर पर परम पूज्य सदाशिव गुरूजी के सारस्वत आतिथ्य का पुण्य लाभ हमें प्राप्त होगा।' डॉक्टर साहब ने कृतज्ञता प्रकट की। पंडित चतुर्भुज तिवारी गदगद् भाव से यह वार्तालाप सुनते रहे। फिर उठकर ठेकेदार बब्बा को प्रणाम करते हुए बोले- 'यह आपके परिश्रम से संभव हो पाया है। हम

आपके बहुत आभारी हैं। अब हम आप सबसे विदा लेते हैं, अब घर चलें और वहाँ यह शुभ समाचार भी दें और विवाह की तैयारियाँ भी पूर्ण करें।'

पंडित तिवारी के जाते ही अन्य सभी लोग भी चले गए। डॉक्टर गोपाल और धर्मदास नीचे बरामदे में बैठे आगे की योजनाएँ बना रहे थे।

नदी-घाट की छतरी पर बैठक चल रही थी। भागीरथ, गोवर्धन, भोला महाराज, गजाधर, जगजीवन, हनुमान सिंह और अकबर खान भविष्य की योजनाओं पर विचार कर रहे थे। भागीरथ ने सेठ गंगाधर को इंदौर भेज दिया था। धर्मदास और डॉक्टर गोपाल की योजनाओं की जानकारी इन लोगों तक पहुंची थी। पर उन दोनों को यह मालूम नहीं था कि यहाँ क्या चल रहा है। एक तीसरा भी था जो अपनी ही चिन्ताओं में खोया था। उमा रानी, अपने भाग्य-दुर्भाग्य का आकलन कर रही थीं। वह विवश थीं और डॉक्टर गोपाल बेफिक्र।

वसंत पंचमी निकट आ रही थी। उमा रानी, बुंदेलखंड में बिताए हुए दिनों के बारे में सोच रही थीं। वार-त्यौहार याद आ रहे थे। वह सोचतीं, वहाँ जैसी रौनक यहाँ दिखाई नहीं देती। क्यों? अक्सर वह कभी पिता और कभी नाना-मामा के साथ महोबा, ओरछा और ललितपुर जाया करती थीं। कभी जालौन और झाँसी भी। वहाँ के राजा-रजवाड़े अँग्रेजों के चापलूस नहीं थे। यहाँ हर कोई अंग्रेज हुआ जा रहा है। डॉक्टर साहब भी लिबास में तो भारतीय नज़र आते हैं, लेकिन व्यवहार में पूरे अंग्रेज हैं। एक पत्नी के होते हुए दूसरा विवाह। ऐसा तो अँग्रेजों में भी नहीं देखा-सुना। इस विषय में तो डॉक्टर साहब रजवाड़े का ठाठ जी रहे हैं। क्या जीवन है? एक उनका, एक हमारा।

उमा रानी बस सोचतीं थीं। कहें किससे? वसंत पंचमी से चार दिन पहले हिम्मत करके डॉक्टर साहब से कह दिया उन्होंने कि 'बस, भैयाजी को बुलवा दें इंदौर से।'

'क्यों?'

'कुछ दिन उनके साथ रहेंगे। फिर गाँव लौट जाएँगे।' दो दिन बाद वह प्यारे भाई के साथ इंदौर चली गई। उनके जाने के बाद ही भोला महाराज, गोवर्धन पंडित और गुरूजी का आना हुआ।

'सुना है तुम दूसरा विवाह कर रहे हो?' भोला महाराज ने डॉक्टर गोपाल से पूछा।

'सही सुना है आपने।'

'उमा बहू कहाँ हैं?'

'वह इंदौर गई हैं।'

'ऐसे समय वह यहाँ करती भी क्या? तुमने भी कुछ नहीं सोचा।'

'अब सोचना क्या था। वंश-वृद्धि के लिए विवाह करना आवश्यक हो गया है। फिर दूसरा विवाह बापूजी की अंतिम इच्छा थी। उसे पूरा करना हमारा कर्तव्य है।'

'और उमा के लिए क्या? उनकी संतानें जीवित नहीं रहीं, इसमें उनका क्या दोष? वह बाँझ तो नहीं हैं।'

'हो भी तो क्या, अपराध है यह। तुम तो डॉक्टर हो भाई।' गुरूजी ने कहा।

'डॉक्टर होना हमारा दोष है क्या?'

'बात को घुमाओ मत गोपाल। तुम तो बम्बई रहे हो। स्वामी दयानंद से भी मिलते रहे हो। स्वामी जी ने क्या कहा था? बाल-विवाह, बहु-विवाह और छुआछूत सामाजिक बुराइयाँ है। इन्हें दूर करना है। राजा राममोहन राय भी यही कह गए हैं। युवा सन्यासी विवेकानंद भी यही कहते हैं। अंग्रेजों को मानते हो न। वे भी नारी-सम्मान की बात करते हैं। बहु-विवाह का समर्थन नहीं करते। वे नहीं रोकते तुम्हें। बोलो।'

'अब इसमें बोलना क्या है? हमारी प्रथाओं, परंपराओं और हमारे धर्म की बातों में सरकार दखल नहीं देती। इन पर हमारे धर्म-गुरूओं का अधिकार है।'

'और तुम्हारे सबसे बड़े धर्म-गुरू शालिग्राम जैसे पाखंडी हैं।' भोला महाराज ने कहा।

'आप जो भी कहें। बापूजी की भविष्यवाणी थी और जन्म-पत्री भी यही कहती है कि हमें विवाह करना है। अब आप लोग आ ही गए हैं तो हमें और हमारी नई ब्याहता को आशीर्वाद दें। शिवरात्रि पर रामेश्वर मंदिर का शुभारंभ है। अभिषेक, पूजन और भोजन होगा। आप सब रहेंगे, यह हमारा सौभाग्य होगा।'

'नहीं लल्ला। विवाह में हम लोग सम्मिलित नहीं होंगे। हाँ, मंदिर के कार्यक्रम में अवश्य आएँगे।' गोवर्धन ने कहा।

'तो अभी कहाँ जाएँगे आप लोग?'

'यह निश्चय नहीं किया है अभी। यों भी, हम तीनों का कभी कुछ भी तय नहीं रहता है।'

'फिर भी, कहाँ रहेंगे? यह तो बताइए।'

'क्या बताएँ? हम तो रमते जोगी हैं लल्ला। हमारा कोई निश्चित ठौर-ठिकाना नहीं रहता आजकल। यह समझ लो कि वानप्रस्थ से सन्यास की ओर जाने की तैयारी है।' गोवर्धन ने कहा। यह कहकर ही तीनों उठ गए।

उनके जाते ही धर्मदास और पंडित शालिग्राम बाहर निकल आए।

वे तीनों नदी-घाट की ओर जा रहे थे। तभी सामने से जगजीवन आए। तीनों से कुछ देर रुककर बातें की। योजना के अनुसार ही वह बाद में आए थे। कारण सबके अलग-अलग थे। शालिग्राम और धर्मदास डॉक्टर गोपाल के आदेशानुसार बाहर नहीं आए कि बातचीत में कटुता न आ जाए। जगजीवन भोला-गोवर्धन के साथ इसलिए नहीं आए कि उन्हें गुरूजी का समर्थक न माना जाए। साथ आते तो वह भी उनके बगावती साथी माने जाते। वे तीनों उन्हें डॉक्टर गोपाल का विश्वस्त बनाए रखना चाहते थे।

हर ओर राजनीति थी। घरों में और बाहर भी। लेकिन बाहर की राजनीति का लक्ष्य बड़ा था, उद्देश्य महत्वपूर्ण थे। स्वतंत्र देश, स्वतंत्र समाज और स्वतंत्र मनुष्य होने के लिए एक लड़ाई थी। दासता से मुक्ति की तलाश थी। एक सपना था देसी रियासतों में भी जन-जागरण के कार्य हो रहे थे।

घरों में स्त्रियाँ थीं। बस्तियों में छोटे-छोटे घरों में सिकुड़ते-सहमते लोग थे जो शोषित थे। अंग्रेज़ों और रजवाड़ों के चापलूस, तिलकधारी-जनेऊधारी पाखंडी और सामंती शोषक थे जिनके अत्याचार भोले-भाले लोगों पर निरंतर हो रहे थे। कोई अपनी-अपनी कैद में थे और कोई अत्याचारियों के बनाए रीति-रिवाज़ों की कैद में थे। उमा रानी भी इनमें से एक थीं।

भाई प्यारेलाल उन दिनों सपत्नीक इंदौर में रह रहे थे। डॉ. गोपाल की हवेली में रहते और वहाँ उनकी खेती की देखभाल किया करते थे। वहीं आकर उमा रानी का मन बहल रहा था। जब कभी उदास होतीं तो भाई उन्हें समझाते थे।

'उमा, तुम्हें कमी किस बात की थी वहाँ, जो यहाँ आने का मन बना लिया।'

'आपको ऐसा लगता है कि हमने यहाँ आकर भूल की है?'

'नहीं, हम ऐसा नहीं कह रहे। फिर भी, तुम स्वयं सोचो। हवेली में रजवाड़ों जैसी शान-शौकत, नौकर-चाकर और अरदलियों का सुख। और क्या चाहिए? फिर मंदिरों का नगर। यहां क्या है? हमेशा अंग्रेजों का डर बना रहता है। हम तो यहाँ रखवाली के लिए हैं। डॉक्टर साहब कहें तो हम तुरंत चले जाएँ।'

'तो हम भी चलेंगे।'

'फिर डॉक्टर साहब?'

'आपको सच अब भी नहीं मालूम है शायद।'

'अब और क्या सच जानना है हमें। बड़े आदमी हैं। राजा जैसा रूतबा है। राजाओं, जागीरदारों और सेठ-साहूकारों से मिलना-जुलना है। वहाँ बस्तियों में हमारे-अपने लोगों के कई परिवार हैं। अच्छी चहल-पहल बनी रहती है। यहाँ उतने घर नहीं हैं हमारी तरफ के।'

'एक चहल-पहल ही सब कुछ नहीं होती भैया। अपनों का साथ भी होना चाहिए। उसी में जीवन का सुख है। इस सुख को पाना भाग्यवानों के हिस्से आता है। और हम? रोटी थेप दो, बस। फिर पड़े रहो अपने कमरे में। जाना कहाँ? देव-दर्शन को, वार-त्यौहार नदी घाटी बस्ती। वह भी नौकरानी या अरदली के साथ। ग्वाड़ी-बस्ती के लोगों से कितना मिलोगे। कभी साथ लेकर कहीं जाते नहीं डॉक्टर साहब। कितने लोग आते हैं, उनकी घरवाली साथ आती हैं तो मिलवाया नहीं कभी। उनका है राजा जैसा रूतबा, हमारा नहीं है रानी जैसा। अब ज्यादा मुँह मत खुलवाओ भैया।'

'सब ठीक हो जाएगा उमा। ज्यादा मत सोचो।'

'क्या ठीक हो जाएगा भैया? तीस बरस से ज्यादा ही बरस हो गये ब्याह को। अब भी नहीं सोचें। पानी अब सिर से ऊपर निकल रहा है।'

'अब ऐसी क्या मुसीबत आ गई है, बोलो?'

'भैया, फिर से ब्याह रचा रहे हैं डॉक्टर साहब छोटी उमर की लड़की से। हमने कहा कि एक बच्चा गोद ले लें, पर एक नहीं सुनी और हमारे रहते एक और शादी। कहते हैं, कुंडली में तीन शादियाँ लिखी हैं। सब ऊपर वाले की किरपा है।'

प्यारेलाल सन्न रह गये। इतनी बड़ी खबर और उन्हें नहीं मालूम। उमा रानी की भौजी अब तक चुपचाप सुन रही थीं। बोली-'जे तो बड़ा गजब कर रहे हैं ननदोई लाला।'

'सच है भौजी। इसीलिए हम यहाँ आ गये।'

'पर नहीं, ऐसे में आपको वहीं रहना था। आप बड़ी हैं तो बड़ी ही रहेंगी। हुकुम आपका चलेगा घर में। नई बहू को भी आपका हुकुम मानना होगा। दबना नहीं है आपको। आपकी उम्र का भी तो ध्यान होगा न उन्हें।'

'तुम ठीक कह रही हो।' प्यारेलाल बोले।

उमा रानी दोनों का चेहरा देख रही थीं। सोच रही थी इन बातों पर हँसे या रोयें। वाह रे भाग्य। कुछ देर रुककर प्यारेलाल बोले- 'अब हम पचपन पार हो रहे हैं। बड़े भाई भी साठ के आस पास ही होंगे शायद। इस हिसाब से पचास के आस पास तो तुम भी होगी।'

'नहीं, डॉक्टर साहब बताते हैं कि हमसे एक बरस छोटे हैं। पर अब यह उमर ब्याह रचाने की तो नहीं है भैया।'

'अब छोड़ो भी उमा। अब डॉक्टर साहब ने अपने बापूजी को वचन दिया है तो निभाना ही होगा। रघुकुल रीति सदा चली आई, प्राण जाई पर वचन न जाई।'

न चाहते हुए भी उमा रानी को हँसी आ ही गई। पर सब जान रहे थे कि वह क्या सोच रही होंगी इस समय। वह कुछ भी सोच रही हो। प्यारे भाई तो यही सोच रहे थे कि किसी भी प्रकार अपनी बहन को उज्जैन छोड़ आएँ। तभी बाहर किसी ने आवाज़ दी। खिड़की से झांका प्यारे भाई ने, बाहर डॉ. गणपतसिंह और उनके पुत्र थे। उमा रानी और उनकी भौजी उठकर भीतर जाने लगीं तो प्रवेश करते ही डॉ. गणपत बोले- 'आप कहाँ जाती हैं, यहीं बैठिये।'

भौजी नहीं रुकीं। उमा रुक गई। एक यही परिवार था जिनसे मिलते रहने और बात करने में उन्हें कभी संकोच नहीं हुआ। सम्बन्ध भी ऐसे थे कि कोई रुकावट नहीं रही कभी।

'कहिये डॉक्टर साहब, क्या समाचार हैं। बड़े दिनों बाद आये हैं आप।' प्यारेलाल ने कहा।

'उज्जैन गये हुए थे हम लोग। वहाँ आप लोगों से भेंट नहीं हुई तो यहाँ चले आए। अब आप कहें कि वहाँ क्यों नहीं थे।'

'क्या कोई विशेष प्रयोजन था वहाँ रहने के लिए?'

'अरे। आपको नहीं मालूम कि वसंत पंचमी को गोपालप्रसाद ने एक और ब्याह रचा लिया।'

'सच कह रहे हैं।'

'हाँ मामा, पूरे विधि-विधान से विवाह सम्पन्न हुआ। बड़ी माँ, आपको तो मालूम था यह। शायद इसीलिए आप वहाँ से यहाँ चली आई।' रघुनंदन ने कहा।

'हाँ, बेटा ऐसे में हम वहाँ रुककर क्या करते। डॉक्टर साहब को अपना वचन पूरा करने की ज़िद थी। वह भी पूरी हुई।'

'अगर आप यह सोच रहीं हैं तो, आपको वहाँ ही रहना चाहिए। आप बड़ी है, अपने इस ओहदें की रक्षा करते हुए वहाँ रहना चाहिए आपको।' डॉ. गणपत ने कहा।

'हम भी यही समझा रहे थे अभी। यह मानती ही नहीं। अरे हाँ, मंदिर का शुभारंभ भी होना था न शिवरात्रि पर।' प्यारेलाल ने कहा।

'नहीं, मंदिर का काम अभी चल रहा है। अब प्राण-प्रतिष्ठा, अभिषेक, हवन-पूजन अक्षय तृतीया के बाद वाली एकादशी पर होगा। उसके पूर्व ही आप लोग वहाँ पहुँच जाएँ। यही उत्तम रहेगा।'

'आप ठीक कह रहे हैं डॉक्टर भैया। हम जाएँगे वहाँ। लेकिन हम चाहते हैं कि एक पुत्र गोद लेने का वचन हमें भी दिया है आपके मित्र ने। उन्हें वह भी पूरा करना होगा। आप भी यहाँ कोई उपयुक्त घर की खोज करें।'

'जी बिल्कुल।'

उमा ने कह तो दिया था, जो कहना था उन्हें, फिर भी निश्चित नहीं थीं वह। लेकिन प्यारे भाई प्रसन्न थे कि उमा ने उज्जैन जाना स्वीकार कर लिया था। कोई नहीं जानता था कि कल क्या होगा। फिर भी यह सोचकर कि सुबह जाना है, सोने की कोशिश कर रहे थे सब। घर जाते हुए रघुनंदन को कुछ अच्छा नहीं लग रहा था।

प्यारेलाल सो रहे हैं, यह उनके खर्राटों से पता चलता था। खर्राटों की आवाज़ के साथ ही उनके पेट का उठना-बैठना चलता रहता। भौजी के ओंठ मुस्कुराते थे सोते समय। लेकिन उमा रानी की आँखों में नींद नहीं थी। यादों के कितने ही किस्से करवट बदल रहे थे। बचपन में बापू सुनाते थे कहानियाँ। मंदिर में पुजारी सुनाते थे कथा। हर कथा-कहानी में कोई एक पुरुष राजा होता था या देवता और वह ब्याह रचाता था बार-बार। एक ही पत्नी होना ज़रूरी नहीं होता। परंपरा है यह।

पुरुष एक ब्याह पर नहीं रुकता। उम्र का कोई बंधन नहीं। पर ब्याहेगा अपने से छोटी उम्र की। सोचते हुए उमा को हँसी आ गई। वह उठकर बैठ गईं।

ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं थी उमा रानी। पर तजुर्बे और ज्ञान में किसी से कम नहीं थीं। 'चलो सो जाओ अब', अपने आप से कहकर करवट बदली उमा रानी ने और आँखें बंद कर लीं।

अँधेरा-सा छा रहा था। उमा रानी दौड़ते-दौड़ते थककर बैठ गईं। लगा, कोई पुकार रहा है। उठकर पीछे देखा तो सामने एक तलघर था जिसमें एक बच्चा नीचे उतरता जा रहा था। हड़बड़ाकर उस ओर भागती हैं और उतरकर बच्चे को पकड़ना चाहती हैं। लेकिन पीछे से कोई हाथ पकड़ लेता है। खींचता है उन्हें। हाथ लंबे, चेहरा दिखाई नहीं दे रहा। तभी हाथ छूट जाता है। नीचे बच्चा है, ऊपर एक आकृति हवा में और बीच में उमा रानी ज़मीन पर। बादल गरजने जैसी आवाज़ होती है। उमा रानी चीखती हैं डरकर। फिर कुछ दिखाई नहीं देता और नींद खुल जाती है। आँखें मलती हुई वह उठकर बैठती हैं। वह कोई डरावना सपना था। यही सोचा।

'क्या हुआ?' चीखने की आवाज़ सुनकर भैया और भौजी आ गए थे। वह सपना सुनाती हैं। भैया-भौजी हँसते हैं। शायद वह दोनों समझ नहीं पाए थे उस सपने को।

'बचपन से अभी तक सपना ही देखते रहे हैं हम। डरा हुआ बच्चा हर बार देखा है।' दोनों कुछ नहीं कहते हैं।

'जब हम पहली बार बुंदेलखंड छोड़ रहे थे, तब भी ऐसा ही सपना देखा था। तब सपने में कोई बच्चा नहीं था, सिपाही थे।'

'उमा जा तो रही हो वहाँ। पर देखना, दो किनारे हैं जो कभी नहीं मिलते।' बड़े भैया ने कहा था।

'हम कुछ समझे नहीं भैया।'

'वहाँ जानकी पंडित हैं। डॉक्टर गोपाल हैं। दोनों ने तरफदारी को छोड़कर वफादारी का रास्ता पकड़ा है। तुम यहाँ तरफदारों के साथ रही हो। राजसी वैभव को अपनाना हरेक के लिए संभव नहीं होता। फिर भी ईश्वर की कृपा हो, यही प्रार्थना है। कल्याण हो।'

बड़े भैया ज्ञानी थे, पंडित थे और अनुभवी भी। प्यारे भाई व्यावहारिक और दुनिया-दार हैं। ये भी दो किनारे हैं। उमा सोच रही थीं कि जिस हवेली में रहती हैं, वहां भी एक तलघर है। निजातपुरा में जो दूसरा मकान बन रहा है उसमें एक तिमंजिला है। पर वह बच्चा कहाँ है? वह सोचती रहीं।

दूसरे दिन जाना नहीं हुआ। शाम होते-होते डॉक्टर गोपाल स्वयं आ गए थे।

'डॉक्टर साहब! आप और अचानक यहाँ? हम लोग आने का सोच ही रहे थे।' प्यारेभाई ने कहा।

'प्यारे भाई, अपने घर, अपनों के घर और अपनेपन के साथ आने के लिए कोई मुहूर्त नहीं देखते। न किसी सूचना की आवश्यकता है।'

'नहीं जी, आपने अभी-अभी ब्याह किया है। इसीलिए भैया ने पूछ लिया। फिर यह घर भी आपका है।'

'ब्याह नहीं, बापूजी की अंतिम इच्छा पूरी की है हमने। तिवारी जी गौना कुछ ठहरकर करना चाहते हैं। इसीलिए आपको लिवाने आए हैं हम।'

'तो यह कहिए कि भोजन-पानी मिलता रहे सुबह-शाम, इसलिए महाराजिन की याद आ गई।'

'अरे नहीं। हम मालकिन को लिवाने आए हैं। आप बड़ी हैं। आपका अधिकार है। उस घर पर भी। और यह घर तो आपका ही है।'

उमा हँस दी।

कुछ देर विश्राम कर डॉक्टर गोपाल उठे और बोले- 'प्यारे भाई, हम सुबह जाएँगे। इसीलिए ज़रा महीपतसिंह जी से मिलकर आते हैं।'

दूसरे दिन सुबह डॉक्टर गोपाल उमा रानी के साथ उज्जैन लौट गए।

***

भाग-14

फिर वही घर। वही दिनचर्या। बाहर रहते हुए कुछ ज्यादा समय नहीं बीता था। फिर भी उमा को लग रहा था कि सब कुछ बदल गया है। बस एक कमरा है जो उनके बाद भी खाली-खाली सा है। डॉक्टर गोपाल भी वहाँ ज्यादा ठहरते नहीं। तैयार होकर पूजाघर में, फिर नीचे। कुछ तो था जिसे उमा समझ नहीं पा रही थीं, या समझ कर भी स्वीकार नहीं कर पाती थीं। जो भी हो, अब वह बेदखल थीं वहाँ से। अब यहाँ, नीचे एक छोटे से कमरे में उनकी ज़िन्दगी ठहर-सी गई है। अधिकार हैं, जिन्हें परिभाषित करना किसी के लिए भी आसान नहीं था शायद। धर्मदास ने आकर पहला संकेत दिया।

'आ गई बड़ी बहूरानी?'

फिर यही संकेत डॉक्टर प्रकाश ने आते ही दिया।

'बड़ी माँ, कैसी हैं?'

रघुनंदन शुरू से ही बड़ी माँ कहते थे। समझ नहीं पाई थीं वह तब भी। अब सब कुछ समझ आ रहा है। बड़ी माँ और बड़ी बहूरानी के संबोधन ने कितना कुछ बदल दिया है। शायद कुछ और बदले।

कुछ बदला तो था। डॉक्टर गोपाल बगीचे से लगे बरामदे में बैठते थे अब। कुछ समय से ऊपर लगने वाला दरबार नहीं सजा। बैठक नहीं, शोर नहीं। दो प्राणी बैठते। सामने की ग्वाड़ी से पंडित गंगाधर चौबे, उनके छोटे भाई रामभरोसे बुलाए जाते। बुंदेलखंडी लोक गीत और भजन होते। रामभरोसे गाते, गंगाधर हारमोनियम और उनकी घरवाली ढोलक बजातीं। कभी उमा को साथ लेकर डॉक्टर सैर पर भी जाते थे आजकल। उमा चकित थीं, पर खुश थीं।

'आप अपनी ससुराल से संदेसा मिलने की प्रतीक्षा कब तक करेंगे। विदा कराकर कब ला रहे हैं बहू को?' उमा ने एक दिन कहा।

डॉक्टर गोपाल शायद इसी प्रतीक्षा में थे। दूसरे दिन ही शालिग्राम पंडित को बुलवा लिया।

मुहूर्त निकला। डॉक्टर गोपाल ससुराल पहुँचे। गौने की विदा करवाकर नई बहू को लिवा लाए। उमा रानी ने सौतन का स्वागत किया। सास और ननद की भूमिका में भी वही थीं। नई बहू के गृह-प्रवेश की रस्म संपन्न हुई। प्यारे भाई और भौजी अब भी नहीं बुलाए गए थे। महीपत सिंह का परिवार उपस्थित था।

डॉक्टर गोपाल के इस नये जीवन में उमा रानी अपनी हैसियत तय नहीं कर पा रही थीं। इस नई दांपत्य-कथा में वह क्या हैं। एक मूक दर्शक या कोई और ? या शायद यह अब नई बहू ही तय करेंगी। फिलहाल किसी को फुरसत नहीं थी किसी के लिए। सब व्यस्त थे अपने-अपने ढंग से। लोक-गीत नहीं, भजन-कीर्तन नहीं। गपशप नहीं। सैर नहीं होती अब। उमा फिर एक बार चकित थीं। पर, वह खुशी नहीं थी अब। पहले की तरह।

बरामदे में आराम कुर्सी पर उमा आँखें बंद किए बैठी थीं। कुत्तों के भौंकने की आवाज़ सुनकर आँखें खोली। सामने कोई नहीं था। सुतार बब्बा बैठे काम कर रहे थे। पास ही खड़े रामभरोसे गुनगुना रहे थे। उमा उठीं और काले दरवाजे से निकल कर निजातपुरा में बन रहे नये मकान तक पहुँचकर रुक गईं।

'राम-राम मालकिन।' मज़दूर स्त्री ने कहा। पास ही दो बच्चे रेत मे खेल रहे थे। दो काम में साथ दे रहे थे। खेलते हुए बच्चे भी पास आकर खड़े हो गए। वह स्त्री हाथ पर लगी चोट सहला रही थी।

'चारों तुम्हारे बच्चे हैं?' उमा ने पूछा। बच्चों को काम करता देख अच्छा नहीं लगा था उन्हें।

'मालकिन, चार नहीं छः हैं। बड़े दो बच्चे बाप के साथ काम पर गए हैं। दो हमारे साथ, तो छोटन को कहाँ छोड़े।'

अब और क्या पूछें। यही सोचकर हवेली की ओर वापस चल दीं। फिर उसी आरामकुर्सी पर बैठ गईं। क्या करें, कुछ काम नहीं है।

'मालकिन खोली का किराया देना है। सभी पूछ रहे हैं।' सुतार बब्बा पूछ रहे थे।

'सबेरे देना। जब धर्मदास काकाजी आएँ, तब। अभी डॉक्टर साहब भी नहीं हैं।' उठकर टहलने लगीं वह।

परिस्थितियाँ कुछ ऐसी बदल गई, कुछ ऐसा घटता जा रहा है कि समय मानो सरक रहा है। कभी सोचती कि कितने दिन बीत गए, पता ही नहीं चला। पीछे मुड़कर देखो तो कोई सिरा पकड़ नहीं आता। यह तक सोच नहीं पा रही थीं कि यहाँ आकर सही किया या गलत। मन यहाँ से इंदौर, इटौरा, नुनसाई और जखौली तक भटकता रहता। वह एक ही जगह ठहरी-सी थीं। डॉक्टर गोपाल समय के साथ भाग रहे थे। वह पीछे मुड़ते ही नहीं। उमा के लिए कुछ भी अपना-सा नहीं रहा। वह पुकारना चाहती हैं, पुकारती भी हैं, पर वही आवाज़ लौटकर हिला देती है देह को। मन को। एक दिन, उमा ने यूँ ही पूछ लिया डॉक्टर गोपाल से।

'क्यों जी, अब हमें सब बड़ी बहूरानी कहकर ही बुलाते हैं। क्यों? ऐसा न हो कि हम अपना नाम ही भूल जाएँ। आप तो नहीं भूले हमारा नाम?'

'लगता है, आज कथा में कोई प्रहसन का प्रकरण सुनकर आई हैं पंडित जी से। मंदिर गई थीं क्या आप?'

'नहीं जी, ऐसा तो कुछ नहीं हुआ। आप बात बदल रहे हैं तो यही बता दें कि आपकी नई ब्याहता को क्या कहें।'

'जैसा आप चाहें, कहें।'

'उन्हें सभी नई बहूरानी या छोटी बहूरानी कहते हैं। हम भी। पर कब तक वह छोटी और नई बनी रहेंगी। नामकरण कब करेंगे?'

'हम उनका नाम बताना ही भूल गए। उनका नाम शांति है। उनसे छोटी गायत्री हैं।'

'अरे, आप तो वंश-गाथा ही सुनाने लगे।'

बात कोई विशेष नहीं थी। फिर भी उमा के मन में एक प्रश्न उठा। नई बहू के साथ ही छोटी बहिन का नाम क्यों बताया इन्होंने? फिर अपने प्रश्न पर स्वयं हँस दी। याद आया कि बापूजी कहा करते थे 'खाली दिमाग, शैतान का घर'। पर, हमारा दिमाग तो खाली नहीं है। विचारों का बवंडर है वहाँ। सोचती हैं कि एक पगड़ंडी पर खड़ी हैं। सूनी पगडंडी। पक्षी तक नहीं, कोई उड़ता हुआ या किसी पेड़ की डाल पर सुस्ताता हुआ। मवेशी भी नहीं कोई। पता नहीं कब से एक ही जगह पर खड़ी हैं।

'बड़ी बहूरानी।' धर्मदास ने आवाज़ दी तो होश आया।

'जी, काकाजी।' उठते हुए बोलीं।

'आज एकादशी है। मंदिर में शिवजी विराजेंगे। ब्राह्मण-भोजन भी होना है। रसोईघर में महाराजिनें आ गई हैं। एक बार देख लें आप भी।'

'जी, बहुत अच्छा।' उमा ने कहा और रसोई की ओर चली गई।

मंदिर में शिवजी बिराज गए। रुद्राभिषेक हुआ। हवन-पूजन और आरती संपन्न हुई। व्यास महाराज, शालिग्राम पंडित, अनोखेलाल सहित ग्यारह पंडितों ने विधि-विधान से सब कार्य किये। व्यास महाराज के गुरुजी पंडित सदाशिव विशेष रूप से आमंत्रित थे। नई बहू शांति देवी के साथ डॉक्टर गोपाल पूजा में बैठे थे। महीपतसिंह और पंडित चतुर्भुज तिवारी सपरिवार आए थे। धर्मदास, जगजीवन और गजाधर बाबू सब व्यवस्था देख रहे थे। मिस्टर फिलौज आश्चर्य के साथ सब देख रहे थे। उन्हें देख कर भोला महाराज कुछ सशंकित थे। गुरूजी की आँखें उमा को खोज रहीं थीं। उमा भीतर रसोई में थीं।

'गोवर्धन, मिस्टर फिलौज यहाँ किसी और ही उद्देश्य से आए हैं। तुम क्या सोचते हो?'

'ठीक कह रहे हो भोला भाई। जगजीवन और गजाधर की दृष्टि उन पर है। दोनों फिलौज के साथियों पर भी नज़र रख रहें हैं।'

'गोवर्धन, लगता है वह गुरूजी को पहचानने की कोशिश कर रहे हैं।'

भोला महाराज कुछ कहते कि डॉक्टर गोपाल और शांति देवी पास आ गये। पूजन के पश्चात दोनों बड़े-बूढों को प्रणाम कर आशीर्वाद ले रहे थे। दोनों ने भोला महाराज और गोवर्धन को प्रणाम किया। फिर गजाधर बाबू और जगजीवन को प्रणाम कर आशीर्वाद लिया।

'काकाजी, गुरूजी दिखाई नहीं दे रहे।'

'हम भी उन्हें खोज रहे हैं।'

डॉक्टर गोपाल मंदिर की ओर जा रहे थे। तभी धर्मदास वहाँ आ गए।

'धर्मदास, उमा बहू दिखाई नहीं दीं।' भोला महाराज ने पूछा।

'वह भीतर रसोईघर में है। चौबे गुरूजी भी मिलने गए हैं भीतर।'

'तो हम भी चलते हैं वहीं। चलो गोवर्धन।' दोनों भीतर चले गए।

धर्मदास, गजाधर और जगजीवन महीपतसिंह के पास जाकर बैठ गए।

उमा रानी और गुरूजी भीतर बरामदे में बैठे हुए थे। भोला और गोवर्धन को आता देख उमा ने पास ही एक खाट बिछा दी। दोनों जब बैठ गए तब उमा ने चरण स्पर्श किए।

'गुरूजी, मिस्टर फिलौज ने आज से पहले आपको शायद देखा नहीं है यहाँ। इसीलिए वह आपको संदेह की दृष्टि से देख रहे थे।' भोला महाराज ने कहा।

'हम समझ गए थे, इसीलिए भीतर चले आए।'

'उमा बहू, हमें दुख है कि हम कुछ नहीं कर पाए।' गोवर्धन ने कहा।

'पंडित जी हम-आप कर ही क्या सकते थे। जो हुआ वह जानकी पंडित की इच्छा के अनुरूप हुआ।'

'ठीक कहते हो। बहू, तुम्हें अब इन्हीं स्थितियों में जीना है। हम सिर्फ आशीर्वाद ही दे सकते हैं।'

'भोला भाई, अब हमें यहाँ से चलना चाहिए।' गोवर्धन ने कहा। तीनों उठ गए। उमा ने फिर प्रणाम किया।

'काकाजी, अब कब आएँगे?'

'बहू, यह बताना संभव नहीं है। इस समय यह भी नहीं बता सकते कि जा कहाँ रहे हैं।'

तीनों ग्वाड़ी के रास्ते से निकल गए। वहाँ से कोतवाली मार्ग पहुँचकर नदी का रास्ता पकड़ लिया।

बाहर गपशप चल रही थी। डॉक्टर गोपाल, महीपतसिंह, जगजीवन और गजाधर। डॉक्टर प्रकाश, रघुनंदन और शांति देवी के भाई। डॉक्टर धनपत, गणपत और पंडित तिवारी जी।

'आज सेठ गंगाधर दिखाई नहीं दिए?' महीपतसिंह ने पूछा।

'सेठजी कारोबारी आदमी हैं। पर अभी माँधाता गए हैं, किसी विवाह में।' डॉक्टर गोपाल ने कहा।

'डॉक्टर, अब हमें इजाज़त दें। बड़े साहब से मिलने भी जाना है इंदौर। अच्छा गैदरिंग रहा आज।' मिस्टर फिलौज ने जाते हुए कहा।

'शुक्रिया।' डॉक्टर गोपाल ने कहा।

'पर एक बात पूछना है आपसे। कुछ लोग यहाँ ऐसे भी थे जिन्हें पहले कभी नही देखा।'

'कौन लोग, फिलौज साहब?'

'वही जो आपसे बात कर रहे थे कुछ देर पहले। फिर भीतर चले गए।'

'वे सब फादर के मित्र हैं। बुंदेलखंड से आए हैं।'

'अच्छा। पर उनकी बातें कुछ अलग थीं। चलते है अभी। फिर मिलेंगे।'

फिलौज के जाते ही गजाधर और जगजीवन भी उमा रानी से मिलते हुए निकल गए।

मिस्टर फिलौज हवेली से निकलकर सीधे कोतवाली पहुँचे। गजाधर और जगजीवन भी ग्वाड़ी से निकलकर तालाब के रास्ते नई सड़क पहुँचे। दोनों सतर्क और सजग थे, इसीलिए रुक-रुक कर चल रहे थे। उन्होंने देख लिया था कि कोतवाली से निकलकर फिलौज दल-बल सहित गोवर्धन सागर जाने वाली सड़क पर जा रहे थे।

'जगजीवन, फिलौज गोवर्धन सागर से कोई रास्ता पकड़ेंगे शायद।'

'फिर हम क्या करें अब?'

'उनका इरादा नेक नहीं लगता। हम सीधे चलते हैं। गोपाल मंदिर से बस्ती का रास्ता पकड़ेंगे।'

'नदी की ओर क्यों न चला जाए?'

'बस्ती से पहले वाले मोड़ पर तय करेंगे कि कहाँ चलें?'

चौक पर ज्यादा भीड़ नहीं थी। चंदनदास की हवेली के आस पास इन दिनों चहल-पहल नहीं रहती थी। जब अस्पताल था यहाँ, तब भीड़ रहती थी। गोपाल का निवास भी यहीं था। जगजीवन मुड़-मुड़ कर देख रहे थे।

'पुरानी स्मृतियों में खो रहे हो, जगजीवन।'

'नहीं, सोच रहे थे कि पहले जैसा नहीं रहा अब यहाँ। आप तब नहीं आए थे, जब यहाँ एक अस्पताल था।'

'तब की छोड़ो। सामने और अगल-बगल देखकर चलते रहो।'

बस्ती से पहले वाले मोड़ पर जाकर दोनों रुक गए। पहले बाएँ मुड़कर नदी के मोड़ तक जाकर देखा इधर-उधर और लौट आए। फिर बस्ती की ओर जाकर आस पास देखा। सोचा, पहले वाले मोड़ पर ही प्रतीक्षा करते हैं। जगजीवन कुछ देर रुके। फिर जानकी पंडित की कुटिया की ओर निकल गए। खड़े रहे और देखते रहे कुटिया को। जानकी पंडित की याद में रुआँसे हो रहे थे। तभी गजाधर महाराज ने आकर झकझोरा उन्हें।

'जगजीवन फिलौज को हमने घाटी की ओर मुड़ते हुए देखा है। सुन रहे हो न भाई। फिलौज अब हमारी बस्ती की ओर ही जाएँगे। वहाँ जाना ठीक नहीं होगा। नदी की ओर ही चलते हैं जगजीवन।' गजाधर ने कहा और नदी की ओर चले गए।

फिलौज, कोतवाल और कुछ सिपाहियों के साथ घाटी की बस्ती में पहुँचे तब सूर्यास्त हो रहा था। डूबते सूरज का हल्का उजाला था और हवा चल रही थी। तिवारी जी लौटकर एक चारपाई पर लेटे हुए थे। फिलौज को निकट आता देख हड़बड़ा कर उठे। पास ही दूसरी चारपाई पर फिलौज बैठ गए। कोतवाल, अपने सिपाहियों के साथ आस-पास घूमकर निरीक्षण कर रहे थे।

'हुजूर, इस गरीब ब्राह्मण के घर पधारे हैं, अवश्य ही कोई बड़ा प्रयोजन होगा।'

'हाँ, पंडित, बात खास ही है। कुछ लोगों के बारे में पूछना है।'

'हुजूर!'

'डॉक्टर गोपाल के घर पर हुए गैदरिंग में कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्हें पहले कभी देखा नहीं था। पता चला है कि कुछ लोग इसी बस्ती में ठहरे हैं।'

'हुजूर दो लोग हैं, पर वे यहाँ ही रहते हैं।'

'पर, उन दोनों के साथ एक आदमी और था। उसे पहले कभी नहीं देखा। उसके साथ जो दो आदमी थे, उन्हें जानते हैं हम।'

पंडित समझ रहे थे कि फिलौज भोला, गोवर्धन और गुरूजी की तलाश में हैं। लेकिन वह चुप रहे। फिलौज गरजे- 'बोलते क्यों नहीं पंडित।'

'हुजूर, भोला महाराज और गोवर्धन पंडित के साथ गुरूजी थे।'

'कहाँ ठहरे हैं।'

'वह कोने वाला मकान है मोड़ पर। वहाँ गजाधर और जगजीवन के साथ तीनों ठहरे हैं। पर इस समय कोई नहीं है वहाँ।

'कोई तो होगा।'

'एक सेवक रहता है साथ में।'

'चलो हमारे साथ।'

सब लोग गजाधर महाराज के घर पहुँचे। सेवक बाहर ही बैठा था। पंडित तिवारी जी ने पूछा- 'नंदू, महाराज घर पर हैं।'

'नहीं हैं पंडित जी। अभी लौटे नहीं है।'

'दरवाज़ा खोलो।' फिलौज ने कड़क स्वर में आदेश दिया।

नंदू, गोरे साहब के साथ कोतवाल और सिपाहियों को देखकर डर गया था। उसने तुरंत दरवाज़ा खोल दिया। फिलौज और कोतवाल भीतर पहुँचे।

'तलाशी लो।' फिलौज ने कहा।

सिपाही काम में लग गए। दो भीतर रसोईघर में घुस गए। दो बाहर रहे।

बक्से खोलकर सारा सामान बिखेर दिया। चादर उठाई बिस्तरों से। तकियों के खोल उतार कर पटक दिए। रसोईघर में डिब्बों को खोलकर देखा। लकड़ी के ढेर में टटोला। कुछ नहीं मिला। सिर्फ कुछ कागज़ मिले कोतवाल को। उसने फिलौज को देते हुए कहा- सर, इन कागज़ों पर कुछ लिखा हुआ है, हिन्दी में।

'पढ़ो।'

कोतवाल ने पढ़ना शुरू किया अटक-अटक कर। फिलौज ने कागज़ छीन लिए।

'तुम्हें पढ़ना भी नहीं आता। पंडित, आप पढ़ो।' कागज़ तिवारी जी को दिए। तिवारी जी पढ़ना शुरू किया -

जीवित हूँ, इसका अर्थ जय नहीं है।

इतना अवश्य, मुझे मृत्यु का भय नहीं है।

महा काल-रात्रि है, सुबह खुला आकाश होगा,

सूरज उतरेगा, किरणों की सवारी करता सूरज,

देखना चारों ओर उजला प्रकाश होगा।

कठिन है डगर, चलते रहना है मगर,

यात्रा का समापन, पता नहीं होगा किधर?

आगत-विगत नहीं जानता, पर वास्ता है।

महाभारत का नागरिक पुकारता है

जाग, जाग, जाग अशक्त जनपद जाग

सुलगा दे भीतर की दबी हुई आग।

दृढ़ निश्चय के साथ उठ और कर संकल्प

मत हो चिंतित, दूर क्षितिज के पार

सुनहरा भविष्यत उठ अशक्त जनपद उठ।

'बस इतना ही लिखा है हुजूर।' तिवारीजी ने पढ़कर कहा।

'पंडित, पलट कर देखो, दूसरी तरफ भी लिखा है।' फिलौज गरजे। काँपते हाथ से तिवारीजी ने कागज़ पलटा।

'क्या बात है। हाथ क्यों काँप रहा है। किसने लिखा, क्या लिखा, कागज़ किसका है? आप जानते हैं। इसीलिए ना।'

'नहीं मिस्टर फिलौज, यह बात नहीं है। आपकी आवाज़ के कारण हाथ काँप रहा है।' डॉक्टर गोपाल ने प्रवेश करते हुए कहा।

'डॉक्टर गोपाल, आप यहाँ?' फिलौज चौंके।

'हाँ, मिस्टर फिलौज। एक सेवक ने आकर हमें बताया कि आप यहाँ किसी जाँच के लिए पहुँचे हैं। तिवारी जी हमारे ससुर हैं। फादर इन लॉ।'

'सॉरी पंडितजी, हम आपको पहचानते नहीं थे। किसी ने बताया नहीं। लाइए यह कागज़ दे दें।'

'नहीं, पहले आप इसे पूरा सुन लें। लाइए तिवारी जी।' डॉक्टर गोपाल ने कागज़ लेकर दूसरी ओर से पढ़ना शुरू किया-

बस एक बार, यह एक बात, निश्चय कर लो,

ओ अशक्त जनपद के नागरिकों निश्चय कर लो,

विश्वास नया मन में भर लो।

एक बार होने दो मन का नव संस्कार

होने दो तन-मन में शक्ति का संचार

आतंक-राज का करना है मिलकर संहार।

स्वाधीन धरा को स्वाभिमान का नव उपहार।

जनपद के जन-जन का नव संसार।

समाप्ति पर किसी का नाम नहीं था। लिखा था- 'परशुराम वाणी'। मिस्टर फिलौज को कागज़ देते हुए डॉक्टर गोपाल ने पूछा- 'यह आपको कहाँ मिला?'

'यह इसी मकान में मिला है। यहाँ जो लोग रहते हैं वे आपके यहाँ भी थे। तीन अजनबी भी यहाँ ठहरे हुए हैं, ऐसा मालूम हुआ है।'

'हाँ, ठीक है। यहाँ गजाधर महाराज और जगजीवन काका रहते हैं। भोला महाराज और गोवर्धन पंडित यहाँ ठहरे थे। ये सभी हमारे पिताजी के मित्र हैं। तीसरे गुरुजी हैं। हमारे बड़े भाई समान हैं वह।'

'डॉक्टर, अब कोई बात नहीं है। आप फिक्र न करें। हम सब जान गए हैं। चलते हैं अब।'

मिस्टर फिलौज चले तो गए। पर उनका संदेह बना हुआ था। वह रेसीडेंट साहब को यह कागज़ सौंपकर सब बताएँगे। 'तीनों के बारे में अवश्य खोजबीन करो।' उन्होंने कोतवाल को आदेश दिया।

डॉक्टर गोपाल भी सोच रहे थे कि फिलौज चुप नहीं बैठेंगे। पर वह यह भी जानते थे कि भोला महाराज, गोवर्धन पंडित और गुरुजी को समझाने से कुछ नहीं होगा। उनके अपने विचार हैं, अपना रास्ता है। उस रास्ते पर डॉक्टर गोपाल नहीं जाएँगे। वह अपने संसार में खुश हैं और अंग्रेज़ तथा रजवाड़े उनके शुभचिंतक हैं। उन्हें और कुछ नहीं चाहिए। लेकिन वह इन लोगों के विरुद्ध कुछ नहीं कहेंगे। पंडित चतुर्भुज तिवारी की विचारधारा इसके विपरीत है। अपने लाभ-लोभ में वह किसी भी हद तक जा सकते हैं, यह भी डॉक्टर गोपाल जानते थे। पर उनका कुछ अहित हो, यह वह भी नहीं चाहेंगे। कुछ सोचकर उन्होंने पूछा- 'पंडितजी, हुआ क्या था। बताइए जरा।'

'आपके यहाँ से आकर बैठे ही थे कि साहब आ गए। भोलाजी, गोवर्धन और गुरुजी को पूछ रह रहे थे।'

'लेकिन गजाधर महाराज के यहाँ क्या कर रहे थे वह? वह कागज़ उन्हें कहाँ मिला?'

'हमने ही बताया था कि तीनों वहाँ ठहरे हैं। वह कागज़ उन्हें एक बक्से से मिला।'

'आप ही वहाँ ले गए होंगे।'

'जी हाँ।'

'आपको ऐसा नहीं करना चाहिए था।'

'कैसी बात कर रहे हैं डॉक्टर साहब। तीनों बागी हैं। उन्हें अपने यहाँ ठहराकर महाराज ने भी सरकार की खिलाफत की है। शिकायत तो होनी ही चाहिए।'

'होश की बात करिए पंडित जी। महाराज के साथ जगजीवन काका भी रहते थे। यह सब हमारे अपने हैं। हमारे पिताजी के मित्र हैं। उनका पता बता कर आपने अच्छा नहीं किया है। उन्हें भी सावधान करना होगा। और आप ऐसी गलती दुबारा नहीं करेंगे। ऐसी आशा करते हैं हम। हम चलेंगे अब।'

पंडित चतुर्भुज तिवारी कुछ नहीं कह पाए फिर। माथा पकड़े बैठे रहे। गोपाल चले गए।

बरामदे में डॉक्टर गोपाल खामोश बैठे थे। जानते थे कि फिलौज चुप नहीं बैठेंगे। तिवारीजी ने उन्हें मुसीबत में डाल दिया है। पता नहीं कहाँ होंगे तीनों। फिलौज अब गजाधर महाराज और जगजीवन काका की तलाश करेंगे। रेसीडेंट तक बात जाएगी। क्या करें वह? वह उठकर टहलने लगे। तभी रसोईघर से चिल्लाने की आवाज़ सुनाई दी।

'हम पूछते हैं, किसके कहने से यह दान-धर्म हो रहा है। यह सब क्या लुटाने के लिए है।'

वह रसोईघर तक पहुँचे। देखा शांति देवी नाराज़ हो रही थीं। पास ही धर्मदास और उमा रानी बैठी थीं। बाहर गरीबों का भोजन हो रहा था। चार बच्चों के साथ वह मज़दूर स्त्री भी बैठी थी, जिससे कुछ दिन पहले उमा मिली थीं। महराजिनें हाथ बाँधे खड़ी थीं।

'क्या बात है काका? क्या हुआ?' डॉक्टर गोपाल ने पूछा।

'कोई बात नहीं है लल्ला।' धर्मदास ने टालते हुए कहा।

'कोई बात कैसे नहीं है काकाजी। बहुत कुछ हुआ है यहाँ।' उमा ने कहा।

'तो आप ही बताएँ, क्या हुआ है।'

'बाहर कुछ मज़दूर भोजन कर रहे हैं। कुछ और बैठे हैं। वह सब हमारे यहां काम करते हैं। चार बच्चों की एक माँ है। गरीब है। उन्हें भी भोजन कराना है।'

'हाँ, ठीक है। इसमें गलत क्या है? करवाइए।'

'बहूरानी को आपत्ति है। कह रही हैं मजदूरों को जूठन दे दी जाए। यहां परोसकर खाना नहीं दे सकते उन्हें। काकाजी ने यह बात नहीं मानी। हम भी नहीं मानेंगे।'

'आपके न मानने से कुछ नहीं होगा। पता नहीं, ससुरे कौन जात हैं। ब्राह्मण के घर पंगत पर बैठेंगे। जूठन ही मिलेगी। यह हमारा आदेश है।' शांतिदेवी तमक कर बोली।

'देख रहे हैं आप। बहूरानी को यह शोभा देता है क्या?'

'हमें क्या शोभा देता है, हमें क्या करना है, यह हमारा काम है। आप बीच में न आएं, वही ठीक है।'

'शांत हो जाइए आप भी।'

'हम तो शांत ही हैं। हमारा नाम ही शांति है। पर अधर्म नहीं होने देंगे।' पैर पटकते हुए वह बाहर निकल गई।

'लल्ला, तुम भी जाओ। हम देख लेंगे।' धर्मदास ने कहा।

'काकाजी, अब देखना क्या है। गरीबों को भोजन कराना कब से अधर्म हो गया।' उमा रानी ने कहा।

'नहीं, नहीं सब भोजन करेंगे।' उन्होंने महराजिनों से कहा, 'सभी को भोजन परोसें।'

अरदलियों को बुलाकर आदेश दिया कि सारी जूठन इकट्ठा करवाकर मवेशियों के बाड़े में पहुँचा दें।

फिर धर्मदास से कहा- 'आइए, बाहर बैठते हैं।'

दोनों बाहर आकर बैठ गए। पास ही एक खाट पर उमा रानी आकर बैठ गई। शांति देवी ऊपर अपने कक्ष में जा चुकीं थीं। डॉक्टर गोपाल घाटी-बस्ती का वृतांत सुना रहे थे।

दूसरा दिन। दिन पर दिन, कुछ ऐसी ही कहा-सुनी में बीत रहे थे। कौन कुछ कहे। ऐसे ही एक दिन। रविवार की सुबह। धर्मदास खेतों से आकर बाड़े में गौवंश की देखभाल में व्यस्त थे। उमा रोज़ की तरह रसोई में। शांति देवी ऊपर अपने कक्ष में। डॉक्टर गोपाल आराम कुर्सी पर बैठे देख रहे थे आसपास। सामने से पंडित चतुर्भुज तिवारी आ रहे थे। तिवारी जी कुछ कहें, इससे पहले ही सदाशिव गुरुजी, व्यास जी और पंडित शालिग्राम आ गए। इधर-उधर की बातों के अलावा ज्योतिष और भविष्यफल पर चर्चा हो रही थी। तिवारी जी बेसब्र हो रहे थे। झोले में से कुछ कागज़ निकालते, देखते और रख देते। वह इस प्रकार अपनी ओर, सबका ध्यान दिलाने में सफल रहे। डॉक्टर गोपाल ने कहा कि 'पंडित जी कुछ कहना चाहते हैं या शायद कुछ दिखाना चाहते हैं।'

'जी, कुछ कागज मिले हैं, गजाधर जी के यहाँ। वही दिखाने लाए हैं।'

'पंडित जी, कितने दिन बीत गए, मिस्टर फिलौज की तलाशी को। अब आप भी तलाशी ले रहे हैं।'

'नहीं। हम तो सुबह मिलने गए थे वहाँ। नंदू ने आकर बताया था कि कल रात वे दोनों लौट आए हैं।'

'कहाँ थे इतने दिन! कुछ बात हुई।'

'नहीं। हम उनसे कुछ पूछते, उससे पहले ही गजाधर बोले- 'तलाशी लेते समय एक स्थान बच गया मिस्टर फिलौज से। एक डिब्बा लकड़ी के गट्ठर में ही रखा था। हमसे पूछते, हम स्वयं सौंप देते। 'इतना कहकर ये कुछ कागज़ हमें दिए और बाकी सामान लेकर कहीं चले गए दोनों।'

डॉक्टर गोपाल ने तिवारी जी से कागज़ लेकर पढ़ा। एक कागज़ वही था जो उस रात उन्होंने पढ़ा था। एक कागज़ पर कुछ पंक्तियाँ लिखी हुई थीं। वहाँ उपस्थित सभी लोग जानना चाहते थे कि क्या लिखा है उन कागज़ों में।

'गोपाल जी, कैसे कागज़ हैं। क्या लिखा है, जिसे पढ़वाने के लिए आपके यहाँ आए हैं तिवारी जी।' व्यास जी ने पूछा।

डाक्टर गोपाल ने एकादशी का सम्पूर्ण वृतांत पुनः सुनाया। सब अचंभित थे सुनकर। अपने परिचित के निवास पर ही नहीं, नगर में भी तलाशी की यह पहली घटना थी। इससे सबका चिंतित होना स्वाभाविक था। लेकिन तिवारी जी आज भी निर्विकार और निश्चिंत थे। सोच रहे थे, बहुत बड़ा काम किया है।

सदाशिव गुरुजी ने ही फिर कहा-जरा पढ़िए, क्या लिखा है इस कागज में।'

डॉक्टर गोपाल ने पहले वे पंक्तियाँ सुनाई जो वह पहले पढ़ चुके थे। फिर आज लाए कागज़ पर लिखी पंक्तियाँ पढ़ीं। लिखा था-

प्रभु,

मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करो

बल दो, साहस-सामर्थ्य दो

वरदान दो प्रभु!

गाँव-गाँव आतंकियों का डेरा है

नगर-नगर घूम रहे अत्याचारी

असुरक्षित है घर-घर, मंदिर-देवालय

शस्त्रों से सज्जित हैं सब दमनकारी

विनाश हो, सर्वनाश हो इनका

जन-जन की शक्ति संविधान दो,

वरदान दो। प्रभु, वरदान दो।

'अद्भुत! अतिसुंदर! जिसने भी लिखा है यह, उसका धन्यवाद!' सदाशिव ने दोनों हाथ उठाकर अपनी बात कही।

'डॉक्टर साहब, यह कागज़ गजाधर जी के यहाँ से मिले हैं। उन्हीं के विचार होंगे यह।' व्यास जी ने कहा।

'नहीं ये कागज़ गुरुजी के हो सकते हैं। लिखावट उन्हीं की है। वही लिख सकते हैं।'

'लिख सकते हैं, से आपका क्या आशय है? कुछ गलत नहीं लिखा है उन्होंने।'

'हम बुराई नहीं कर रहे।'

'ठीक है। जिनकी भी बात कर रहे हैं आप, हम उन्हें जानते नहीं। पर यह कह सकते हैं कि वह समझदार व्यक्ति हैं।'

'इसमें फिलौज महाशय को आपत्तिजनक क्या लगा।' धर्मदास ने पूछा।

'धर्मदास, तुमने घ्यान से नहीं सुना। क्या लिखा है, दमनकारी, अत्याचारी, आतंकी। उनका विनाश, जन-जन को शक्ति। साहस का वरदान माँगा है। आतंकराज का करना है संहार, यह चाहते हैं वह। सोचो, किसके लिए कहेंगे। राज कौन कर रहा है। राजा, महाराजा और अंग्रेज़। उनके विनाश की कामना करोगे और वे कुछ नहीं करेंगे।'

सदाशिवजी ने धर्मदास ही नहीं, सबको समझाया इस प्रकार। नहीं समझे कुछ तो सिर्फ पंडित चतुर्भुज तिवारी। वह चुपचाप निकल गए वहाँ से।

'सही कह रहे हैं गुरुजी। भोला महाराज और गोवर्धन पंडित बुंदेलखंड में भी क्रांतिकारियों के संपर्क में रहते थे। पिताजी बताया करते थे। उनसे भी दोनों अंग्रेजी राज-काज के विरोध की बातें किया करते थे।' डॉक्टर गोपाल ने कहा।

'अब, इस उम्र में हम कुछ नहीं कर सकते। पर यह अवश्य कहेंगे कि उत्तम विचार हैं इन लोगों के। हम प्रशंसा तो कर ही सकते हैं। लेकिन गोपालजी, उनका नाम तो बताओ जिन्हें गुरुजी कह रहे हो।' सदाशिव ने पूछा।

'हरप्रसाद चौबे हैं वह। जखौली के निवासी हैं। वहां, हमारे काकाजी के पड़ोसी हैं। हमारे अग्रज समान हैं।'

'गुणवान प्रतीत होते हैं। अवश्य ही महापुरुषों के सत्संग में रहे होंगे।'

'बनारस में पढ़े हैं। वहाँ रहकर वेदों का, शास्त्रों का अध्ययन किया है। दयानंद सरस्वती जी से भी परिचित हुए। बम्बई में स्वामी जी से हमें भी मिलवाया। स्वामीजी की हम पर भी बड़ी कृपा रही है।'

'आपके आचरण से तो ऐसा प्रतीत नहीं होता।'

उपस्थित सभी लोग हँस दिए, पर गोपाल गंभीर बने रहे। सदाशिव जी ठिठोली तो कर नहीं रहे थे। अवश्य ही कोई गंभीर बात होगी। इस पर कोई पूछता उससे पहले ही सदाशिव जी बोले- 'चलो नारायणदास। अब चला जाए।'

व्यास जी और शालिग्राम भी उठ गए। उमा रानी ने बाहर आकर प्रणाम किया। आशीर्वाद देते हुए सदाशिव जी ने कहा- 'ईश्वर की कृपा सदैव बनी रहे।'

सब चले गए। डॉक्टर गोपाल इधर-उधर देख रहे थे। उमा ने पूछा- 'किसे खोज रहे हैं?'

'तिवारी जी दिखाई नहीं दिए। कहाँ चले गए।'

'तिवारी बिटिया के पास होंगे। तुम जब पढ़ रहे थे, उससे पहले ही वह चले गए थे।' धर्मदास ने कहा।

'आ रहे हैं बिटिया रानी के साथ।' उमा रानी ने कहा।

'आपने हमें आज तक नहीं बताया कि एकादशी की शाम बस्ती में क्या हुआ था। अभी बताया है बापूजी ने। पता नहीं, आपके संगी-साथी क्या करते रहते हैं। अब वहाँ गौरा बापूजी को नुकसान पहुँचाएगा।' आते ही शांति देवी ने हंगामा शुरू कर दिया।

'कुछ नहीं होगा। अंग्रेजों की कृपा से ही तिवारी जी नौकरी कर रहे हैं। यह नौकरी हमारे कहने से ही मिली है। अब नुकसान किस बात पर होगा। और तिवारी जी, यह सब कान

भर रहे थे आप। यह नहीं बताया आपने वे सब हमारे संगी-साथी नहीं, हमारे बड़े-बुजुर्ग हैं। हम उनका आदर करते हैं।' डॉक्टर गोपाल क्रोधित होकर बोले।

'डॉक्टर साहब, वे सब हमारे लिए भी आदरणीय हैं। हमने सिर्फ बताया है बिटिया को। अंग्रेजों की कृपा सदा रहेगी, हम जानते हैं। जगतनारायण और कृष्णबिहारी भी काम-धंधे में लगे हैं, सो आपकी कृपा है।' तिवारी जी गिड़गिड़ाने लगे।

धर्मदास को अच्छा नहीं लगा। इसलिए बात संभालने की गरज से वह बोले- 'कैसी बात करते हैं तिवारी जी। आप भी बड़े हैं। लल्ला ने आपके लिए, आपके बेटों के लिए जो किया, वह कोई कृपा नहीं है। उन्होंने अपना दायित्व निभाया है।'

उमा रानी भी मुस्कुराते हुए बोली- 'आप भी जाने दें। भूल-चूक होती रहती है।' डॉक्टर गोपाल खामोश बैठे रहे। तिवारी जी ने इस समय जाना ही ठीक समझा । शांति देवी कुछ देर खड़ी रहीं। शायद डॉक्टर साहब कुछ कहें। जब वह कुछ नहीं बोले तो मुंह फुलाए वहाँ से चली गईं।

कुछ दिन ऐसी ही तनातनी चलती रही। धर्मदास का आना भी कम होता जा रहा था। उम्र हो रही थी उनकी। जानकी पंडित के बाल सखा थे। जानकी दास नहीं रहे। जगजीवन, गोवर्धन, भोला महाराज और गजाधर भी यहाँ नहीं हैं। सेठ गंगाधर का भी पता नहीं। अब धर्मदास अपने मन की किससे कहें। यही सोचते जो चलता है चलने दो।

समय बीत रहा था। किसी न किसी तरह। कौन कहे, किससे कहे। पुरानी पहचान और निशानियाँ मिटती जा रही थीं। हर कहीं। किसी की, किसी को याद रहे, न रहे, पर एक खालीपन फिर भी उतर आता था कभी-कभी। स्मृति-कक्ष में, कौन रहा, कौन नहीं। अवचेतन में कौन आया, ठहरा या चला ही गया, किसे पता। कुछ अलग हटकर इस प्रकार घटा कि बदलाव समझना ही मुश्किल हो गया था।

प्रकृति भी क्षमा नहीं करती ऐसे समय। महामारियाँ बढ़ रही थीं। कभी बाढ़, कभी सूखा और कभी अकाल। गरीबों की सहायता और सुनवाई, हर जगह असमानता और भ्रष्टाचार था। द्वंद और संघर्ष ही दिनचर्या बन गए थे। लोग मर रहे थे, मारे जा रहे थे। प्लैग, हैजा और संग्रहणी में जितने मरे, उससे कहीं ज्यादा सरकारी हिंसा में मारे गए। गोपाल प्रसाद, धनपत सिंह, गणपत सिंह, सदाशिव, प्रकाश और कृष्ण बिहारी। इन सबने इलाज में कोई कसर नहीं छोड़ी। सेठ गंगाधर ने पैसों की तंगी नहीं आने दी।

'पुण्य का कार्य किया है इन सबने।' प्यारे भाई कहते थे।

'सिक्के के दो पहलू होते हैं भैया। पुण्य के दूसरी तरफ पाप भी है। इसने दयालुओं और धर्मात्माओं की तिजोरियाँ भर दी हैं। यह कौन सोचेगा?' उमा कहती जवाब में।

प्यारे भाई निरुत्तर थे।

उज्जैन, इंदौर और बुंदेलखंड। माँधाता और ओंकारेश्वर। रौनक वही थी, लेकिन लोग नहीं थे। महीपत सिंह गुजर गए एक दिन। फिर दूसरे ही दिन गजाधर महाराज और जगजीवन भी चल बसे। तिवारी जी कहते हैं बीमार थे। पर एक साथ, एक ही घर में। उमा सोचती रहीं। ओंकारेश्वर में मुठभेड़ हुई। भोला महाराज, गोवर्धन पंडित और अकबर खान शहीद हुए। खबर फैली, बागी मारे गए। गुरुजी हरप्रसाद चौबे का पता नहीं चला। कहाँ गए वह, शहीद हुए या भूमिगत हैं? कोई नहीं जानता। बात तक नहीं होती। एक उमा रानी ही थीं जो याद करतीं और रोती थीं। प्यारे भाई मिलते, तब बातें होतीं। बस! शेष कुशल-मंगल!

***

भाग-15

मुखिया परिवार की बड़ी माँ उमा रानी किस तरह, घुट-घुट कर जीती रहीं, बूढ़ी अम्मा ने नहीं बताया था कभी। बाबूजी तो कभी ज्यादा बताते ही नहीं थे। गुरुजी हरप्रसाद चौबे के विषय में भी बूढ़ी अम्मा ने कभी कुछ नहीं कहा। लेकिन जितना जान पाया था उससे बहुत चिढ़ होती है मुझे। आज भी। छोटे बाबा की लाल किताब को जितना पढ़ सका था उसमें भी परिवार की कीर्ति कथा, अंग्रेजों और सिंधिया राजघराने की स्तुति-प्रशस्ति का बेसुरा गायन था। फिर भी माँ, दादी और छोटी दादी की कही बातें, बूढ़ी अम्मा और बाबूजी के संस्मरणों को महागाथा बनाती रहीं।

अक्सर सोचता कि वह वंश-ग्रंथ पढ़ने के लिए कभी मिलेगा या यूँ ही कुछ जाने बिना मेरी अधूरी यात्रा का समापन हो जाएगा। ऐसी बातें सुनकर निर्मला चिढ़ती है। फिर भी, सोचता हूँ कि कैसे रहे होंगे वे दिन। बड़ी माँ उमा रानी के ज़ख्मी दिन।

नदी घाटी की बस्ती में उन दिनों कुछ ज्यादा ही चहल-पहल रहती थी। पंडित चतुर्भुज तिवारी, गोपालजी के श्वसुर थे, इसलिए मिस्टर फिलौज के खास बन गए थे।

फिलौज को गंगाधर महाराज के यहाँ तलाशी के बाद लगा कि आदमी काम का है। इसीलिए उन्हें डाकघर से हटाकर कोतवाली पहुँचा दिया। पुलिस हवलदार। मातहती में दस सिपाही। खुली छूट थी। गजाधर का मकान हथिया लिया। डॉक्टर कृष्णबिहारी का निवास है अब वह।

डॉक्टर कृष्णबिहारी भी आगरा से डॉक्टरी पास करने के बाद यहाँ आए थे। डॉक्टर गोपाल ने जेल के अस्पताल में लगवा दिया था। जगतनारायण ने कुछ समय डाकघर में, फिर पुलिस में नौकरी की। अब मंदिर में पहरेदारी करते हैं। सबसे छोटे हैं गगनबिहारी। ये भी मंदिर में सेवादार हैं। हरफनमौला हैं। पान की दुकान की, हलवाई का काम किया, अब नौकरी कर रहे हैं। शांतिदेवी से सब बड़े हैं।

और उमा रानी। 'ईश्वर कल्याण करेंगे', यह आशीर्वाद पाकर ही जीवन बीत रहा था। उज्जैन से इन्दौर। नुनसाई, जखौली और कभी जालौन। कृपा और कल्याण के फल की प्रतीक्षा में बालों में सफेदी आने लगी थी। डॉक्टर गोपालप्रसाद को फुरसत ही नहीं थी

कि उनके बारे में सोचें। शांति देवी गोपाल के आसपास ही रहती थीं। वह भी कभी इन्दौर, कभी ग्वालियर, रतलाम, जावरा, माँधाता और महिदपुर जाते ही रहते। फिर, कभी सरकारी दौरा, कभी शौकिया भ्रमण। राज-दरबारों के बुलावे पर भी यात्राएं होती रहती थीं। कभी किसी खास आयोजन और कभी विशेष व्यक्ति के इलाज के लिए बाहर रहते। इन्दौर आना-जाना लगा ही रहता। इन्दौर जाना तो दिनचर्चा का ही अंग था। उमा रानी इस प्रवास का रहस्य अब तक नहीं जान पाई थीं। प्यारे भाई भी नहीं, जो उनका रास्ता देखते रहते थे कि कभी तो वह अपने घर आएंगे। पर नहीं पहुँचते थे वह। शांति देवी को किसी बात से कोई फर्क नहीं पड़ता था। वह अपने में मगन थी। एक ठसक के साथ। पाँच पुत्रों की माता हैं अब वह।

उमा रानी दिन भर के काम से फुरसत होकर, जब कभी बरामदे में बैठतीं तो पुरानी यादें ही मन बहलातीं। कोई याद यदि दिल दुखाती तो उठकर बगीची में जाकर बिखरी हुई पत्तियाँ, मुरझाए हुए फूल और सूख चुके पौधों को देखती रहतीं। ग्वाड़ी की महिलाएँ भी आकर बैठतीं और गाँव-देस की बातें हो जातीं। किसी छुट्टी के दिन रघुनंदन सिंह आ जाते थे अपनी बड़ी माँ के पास। दुनिया-जहान की खबरें सुनाते रहते रघुनंदन। ऐसी खबरें जो ग्वाड़ी वाली स्त्रियों की बातों में नहीं होती थीं। उनकी बातों में वही पिछले कुछ साल थे जो कैसे बीत गए? और कितने, यह गिनती करना छोड़ दिया था उमा रानी ने।

पाँच प्रसव की तैयारियाँ। देखभाल और तीमारदारी। बिगड़े सवारों की टेढ़ी चाल के बीच बचकर चलना। तिवारी जी, उनकी पत्नी, शांति देवी की छोटी बहिन गायत्री और उनके भाई-भौजी। नदी घाटी की बस्ती ही मानों आकर बस जाती थी कई-कई दिन। डॉक्टर गोपाल अपने कामों में व्यस्त रहते। उमा रानी काम का बोझ दायित्व समझकर ढोती रहीं। आश्चर्य तब हुआ था उमा को, जब पाँच पुत्रों का नामकरण करने की ज़िम्मेदारी गोपाल ने उन्हें सौंप दी थी। कुछ लोगों ने मन से, कुछ ने बेमन से मान लिया था। उमा रानी ने सोच-समझ कर नाम रखे कि तिवारी जी ने भी कहा-'बड़ी सूझ-बूझ वाली हैं उमा रानी।'

'हाँ, इनके बड़े भाई और माताजी, दोनों बहुत ज्ञानी हैं।' डॉक्टर गोपाल ने गर्व के साथ बताया।

नाम रखे गए थे, द्वारिकानाथ, बद्रीनाथ, केदारनाथ, रामनाथ और प्रयागनाथ। शांतिदेवी बुलातीं - दारा, बदरु, कद्दू, रामा और पागा। अपनी-अपनी समझ। उमा रानी ने सोचा, इनके घर में भाइयों को भी ऐसी ही पुकारा जाता है, बड़के और छुटकन। तीसरा नाम याद कर रही थीं कि रघुनंदन सिंह ने चौंका दिया।

'बड़ी माँ, प्रणाम।'

'आओ बेटा। कैसे आना हुआ?'

'बड़ी माँ, आया नहीं हूँ, भेजा गया हूँ आज।'

'कोई बात नहीं। पर भेजा किसने है?'

'पिताजी ने। कहा कि आज आना था, पर अब कल आएँगे सब।'

'सब?'

'हाँ, काकाजी, पिताजी, ताऊजी, भाईजी और डॉ. सदाशिव। आज वहाँ एक बैठक हो रही है। कल यहाँ होगी। यहाँ की बैठक में और भी लोग आएँगे।'

'पर बात क्या है?'

'बड़ी माँ, घबराइए नहीं। उज्जैन में एक बड़ा अस्पताल खोलना चाहते हैं काकाजी। उसी पर बातचीत होगी।'

'अच्छी बात है। हमें क्या करना है जानकर।'

कुछ देर ठहरकर रघुनंदन चले गए।

दूसरे दिन हवेली में बहुत दिनों बाद फिर चहल-पहल थी। काफी मेहमान थे। सेठ चन्दनमल सुबह से आ गए थे। दो हिन्दू महाराज और महराजिनों, एक खानसामा के साथ उपस्थित थे। दावत शाकाहारी ही होनी थी। यह सब जानते थे। मिस्टर फिलौज, मिस्टर जोसेफ, सेठ जुगलकिशोर, सेठ बालमुकुंद, सेठ श्रीकृष्णदास और डॉ. धनपतसिंह का पूरा परिवार था। व्यासजी महाराज और पंडित शालिग्राम भी आए थे। डॉ. प्रकाश सिंह और डॉ. कृष्णबिहारी आवभगत में लगे थे। दूसरी मंजिल की छत पर दरबार लगा था। नीचे के हॉल में शांतिदेवी के पाँच पुत्र रघुनंदन के साथ व्यस्त थे। शांति देवी बेखबर अपने कमरे में और उमा रानी रसोई घर के पास निगरानी में। आज

उन्हें धर्मदास की बहुत याद आ रही थी। वह होते तो उमा को एक निश्चिंतता रहती। ऊपर चर्चा हो रही थी।

'अस्पताल की ज़मीन की समस्या बड़ी है। मोटर और रेल के स्टेशन के पास ही होना उचित रहेगा।' व्यासजी महाराज ने अपना मत प्रकट किया।

सेठ श्रीकृष्णदास और बालमुकुंद ने महाकाल मंदिर के पास वाले मैदान पर राय दी। जब महाराजवाड़ा भवन की बात चली तो अधिकांश लोगों ने विरोध किया। क्योंकि वहाँ सूबे के कार्यालय थे। महाकाल-मैदान पर सिंधिया के प्रतिनिधि सहमत नहीं हुए। तब सेठ जुगलकिशोर बोल उठे- 'डॉक्टर साहब अस्पताल की योजना बहुत पहले से बना रहे थे। उन्होंने श्रीमंत से भी चर्चा की थी। श्रीमंत स्वयं एक शिक्षण संस्थान की योजना बना रहे हैं और देवास द्वार के समीप ही भवन बनेगा। चौराहे के इस बाजू की ज़मीन हमारी है। सड़क के दोनों ओर की जमीन हम डॉक्टर साहब को सौंपते हैं।'

असहमति का कोई प्रश्न ही नहीं था। प्रस्ताव को सर्वानुमति मिली। दूसरे ही दिन भूमि-पूजन की विधि संपन्न हुई।

अस्पताल भवन के निर्माण की गतिविधियाँ शुरु हुई। डॉक्टर गोपाल के अनुरोध पर डॉक्टर धनपतसिंह की नियुक्ति भी उज्जैन अस्पताल में कर दी गई थी। इंजीनियर के साथ डॉक्टर गोपाल चर्चा कर रहे थे। डॉक्टर धनपत और सेठ जुगलकिशोर भी उपस्थित थे। तभी एक अरदली ने आकर एक पत्र डॉक्टर गोपाल को दिया । उन्होंने पत्र पढ़ा और प्रसन्न हुए।

डॉक्टर धनपत ने पूछा-'किसका पत्र है, कोई शुभ समाचार पढ़ा है, ऐसा लगता है।'

'हाँ। नौगाँव, बुंदेलखंड से न्यौता मिला है। वहाँ ब्राह्मण सभा का सालाना जलसा है। उसमें बुलाया है। जाना ही होगा।'

'अच्छा समाचार है। कारोबार के काम से हमें भी बुन्देलखंड जाना है। साथ ही चलते हैं।' सेठ जुगलकिशोर ने कहा।

डॉक्टर गोपाल और सेठ जुगलकिशोर ने यात्रा की शुरुआत मंदिर में पूजन-हवन से की। पहले चरण में वे झाँसी पहुँचे। वहाँ रेसीडेंट मिस्टर डेविड से सौजन्य भेंट की। मालवा और खासकर उज्जैन के विषय में बातें हुई। डेविड ने कहा 'मैं एक बार उधर आना

चाहता हूँ। मिस्टर फिलिप से मिलना होगा, तभी आपके अस्पताल को भी ज़रूर देखेंगे।'

डॉक्टर गोपाल ने मिस्टर विल्सन और डूरंड के विषय में पूछा। डेविड ने बताया कि दोनों लंदन के पास फार्म हाउस में रहते हैं। रिटायर्ड लाईफ जी रहे हैं।

दूसरे दिन डॉक्टर गोपाल जखौली के लिए रवाना हुए। सेठ झाँसी रुके रहे। जलसे के पहले ही मिलने का निश्चय हुआ। जखौली पहुँचकर, बहुत दिनों बाद उनकी अपने चचेरे भाई बेनीप्रसाद से भेंट हुई। उनके दो बेटों में से एक मुरलीप्रसाद नुनसाई में ही ज़मीन-जायदाद की देखरेख करता है। दूसरा बेटा माधवप्रसाद मिला। उसे साथ लेकर वह नुनसाई हो आए। फिर बेनीप्रसाद के साथ अक्षरा देवी के दर्शन कर आए। मंदिर में पुरोहित रामप्रसाद मिलकर बहुत प्रसन्न हुए।

'तुम्हें देख लिया लल्ला, अच्छा लगा। जानकी पंडित से अंतिम समय नहीं मिल पाने का दुख कुछ कम हुआ। अब हमारी भी चलाचली की बेला है। देखें, ऊपर वाला कब बुलाता है।' यह कहते हुए पुरोहित रामप्रसाद की आँखें भर आईं।

डॉक्टर गोपाल जखौली लौटकर झाँसी के लिए रवाना हुए। सेठ जुगलकिशोर उनकी प्रतीक्षा में ही थे। दूसरे ही दिन ओरछा पहुँचकर रामराजा के दर्शन किए। फिर पहुँचे नौगाँव। जलसे में भाग लेने बेनीप्रसाद भी पहुँचे थे। डाक बंगले में रात्रि विश्राम हुआ।

सुबह बड़े से मैदान में लोग आ जा रहे थे। भेंट-परिचय हो रहा था। डॉक्टर गोपाल के लिए यह एक अलग ही अनुभव था। बहुत लोगों के लिए वह अपरिचित थे। उनके परिवार के लोग भी थे। बाहर से आए हुए अतिथियों के लिए वह विशेष थे लेकिन नुनसाई-जखौली के पूर्व परिचितों में रोष भी था। कारण, अंग्रेजों से उनके मैत्री संबंध। फिर भी डॉक्टर गोपाल ही यहाँ चर्चित चेहरा थे। गिरधान से पंडित सेवकराम और माँगीलाल आए थे। नुनसाई से बनारसीदास अपने पुत्रों बालाराम और भगवतीप्रसाद के साथ आए थे। लगभग सभी लोग डॉक्टर गोपाल को उनके विवाह के बाद ही देख रहे थे। जानकी पंडित के समय जो कटुता पैदा हुई थी, यह इस समय पिघलकर स्नेह का पारावार हो रही थी। इस क्षण सब अपने थे।

अनौपचारिक स्नेह-सम्मेलन के बाद सभा की कार्यवाही प्रारंभ हुई। बनारस से आए विद्वान पंडित रामसहाय पांडे मुख्य अतिथि थे। उन्होंने परशुराम के आदमकद चित्र का

अनावरण किया। भिक्षुक जैसे प्रतीत हो रहे एक ब्राह्मण ने मंगलाचरण गाया और सरस्वती वंदना की।

नारायणम् नमस्कृत्य नरम् चैव नरोत्तमम्

देवीम् सरस्वतीम् व्यासम् ततो जय मुदीरयेत्।।

या कुन्देन्दु तुषार हार धवला या शुभ्र वस्त्रावृता,

या वीणा वर दंड मंडितकरा या श्वेत पद्मासना।

या ब्रह्माच्युत शंकर प्रभृतिभिर्देवैः सदा वंदिता,

सा माम् पातु सरस्वती भगवती निःशेष जाड्यापहा।।

डॉक्टर गोपाल वंदना कर रहे ब्राह्मण को आश्चर्य से देखकर रहे थे। दरअसल वह उन्हें पहचानने की कोशिश कर रहे थे। वह उनसे मिलें, परिचय प्राप्त करें, उससे पहले ही सभा की अगली कार्यवाही शुरु हो गई। वह ब्राह्मण फिर नहीं दिखे वहाँ।

अगले दिन ब्राह्मण सभा के चुनाव हुए। डॉक्टर गोपालप्रसाद मुखिया सर्वसम्मति से अध्यक्ष चुन लिए गए। सेठ जुगल किशोर प्रसन्न थे।

उज्जैन पहुँच डॉक्टर गोपाल अस्पताल के कामों में व्यस्त हो गए। लेकिन उज्जैन और इन्दौर में परिजन एवं परिचित उत्साह में थे। खूब खुश। वजहें कई थी। उज्जैन में परिजन इसलिए खुश थे कि डॉक्टर गोपाल ब्राह्मण समाज के अध्यक्ष चुने गए थे। इन्दौर में सब खुश थे कि डॉक्टर धनपत और डॉक्टर गणपत दोनों को पदोन्नत किया गया था। शांति देवी के माँ बन जाने के बाद से तिवारी परिवार कुछ ज्यादा ही उत्साहित रहता था। अस्पताल भवन की नींव रखी जा चुकी थी। जनरल वार्ड, प्रायवेट वार्ड, आउटडोर, ऑपरेशन थियेटर और डॉक्टर्स बंगलों के काम एक साथ शुरू हो गए थे। डॉक्टर गोपाल इन सभी बातों से प्रसन्न थे। उमा रानी जहां थीं, यहाँ ही हैं। रसोई घर में, सदा की तरह व्यस्त।

पंडित चतुर्भुज तिवारी ने सत्यनारायण कथा का आयोजन रखा था, लेकिन घाटी-बस्ती में नहीं, डॉक्टर गोपाल की हवेली में। इन्दौर और उज्जैन के सभी परिजन शामिल हुए। बस प्यारे भाई नहीं थे। भोजनों के बाद हवेली की छत पर बैठक जमी थी। तिवारी जी गदगद् थे। कह रहे थे कि 'डॉक्टर साहब समाज का गौरव हैं।' डॉक्टर गोपाल के चेहरे

पर गर्व-मिश्रित मुस्कान थी। वह जखौली, नुनसाई, ओरछा, झाँसी और कुल-देवी के स्थान-भ्रमण के साथ ही ब्राह्मण सभा के आयोजन के संस्मरण भी सुना रहे थे। पर एक व्यक्ति था, जो इससे अलग सोच रहा था। वे थे रघुनंदन सिंह।

रघुनंदन सिंह नयी पीढ़ी के युवा थे। घर के वातावरण को बचपन से देख-समझ रहे थे। अंग्रेजों की चापलूसी और बढ़ता हुआ ओहदा। यहाँ भी वही चापलूसी, पाखंड और महाजनी रंग-ढंग। यहीं देखा था भोला महाराज, गोवर्धन पंडित और जगजीवन को। सेठ गंगाधर, गजाधर महाराज और गुरुजी को। स्वतंत्रता, फिरंगी सरकार और राजघरानों के तौर-तरीकों को लेकर उन लोगों में जो बहसें होती थीं, उन्हें सुनकर उसका मन भी आंदोलित होता था। इसी घर में बड़ी माँ को देखा। उनसे मिलकर उसे एक अलग ही सुकून मिलता। उमा भी सोचती थीं कि कुछ तो है, जो यह लड़का इतना लगाव रखता है। पर क्यों, वह यह नहीं समझ पाती थीं। इतना जान गई थीं कि दोनों परिवारों के बीच मैत्री-संबंधों से अलग ही है कुछ। वह कई बार तुलना कर समझने की कोशिश करतीं। धर्मदास और जगजीवन के जानकी पंडित से संबंध और अब उनसे डॉक्टर गोपाल का लगाव। या गुरुजी हरप्रसाद चौबे से उनके मायके वालों और मुखिया परिवार में मैत्री प्रगाढ़ होकर एक घर जैसा संबंध बन गया था। । एक अपनापन, जिसमें शिक्षा-दीक्षा का भी बड़ा योगदान था। पंडित चतुरनारायण के पुत्र देवनारायण, प्यारे भाई और बेनीप्रसाद मुखिया हरप्रसाद चौबे के साथ बनारस में पढ़े थे। प्यारे भाई और चौबे जी की मित्रता ने ही उमा रानी को शिक्षित होने का अवसर दिया था। वह स्कूल में तो ज्यादा नहीं पढ़ी, पर घर में रहकर ही काफी कुछ सीखा था। उनकी वही सीख, वही शिक्षा रघुनंदन के मन पर गहरा प्रभाव डाल रही थी। रघुनंदन उनके मातृत्व की पूंजी बन गया था। इस समय वह भी यही सोच रही थीं और ऊपर चल रही बातचीत के बीच रघुनंदन भी इसी विचार में डूबा था।

गोपालजी ने पूछ ही लिया 'क्या बात है रघुनंदन। लगता है कुछ और ही सोच रहे हो। खुश नहीं हो क्या?'

'नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है।' रघुनंदन चौंक गए थे। सब उनकी ओर ही देख रहे थे। सचेत होकर उन्होंने कहा 'हम सोच रहे थे कि यहाँ सब लोग है पर बड़ी माँ नहीं हैं।'

'अरे हाँ, कहाँ हैं वह? हम देखते हैं।' डॉक्टर गोपाल ने उठते हुए कहा।

'आप बैठिए। हम नीचे देखकर आते हैं।' रघुनंदन नीचे उतर गए।

उमा रानी सीढ़ियों के पास ही खाट पर बैठी थीं। देखते ही बोली'-'रघुनंदन, आओ बैठो। कब आए।'

'बड़ी माँ, मैं तो सुबह से यहाँ हूँ। सब लोग ऊपर गप्पें लगा रहे हैं और आप यहाँ अकेले बैठी हैं। क्या सोच रही हैं।'

'देख रहे थे। सामने नीम का पेड़ देखते हो, पास की खाली ज़मीन कितनी सूनी है। हवा चलेगी, धूल उड़ेगी और फूल बिखर जाएँगे बगीचे में। यहां भी पत्तियाँ बिखरेंगी। उड़ते हुए फूल और पत्तियाँ धूल से मिलकर ज़मीन पर बिखर कर फैल जाएँगी। तब सूनी नहीं रहेगी ज़मीन। है न।

'हाँ।'

'और अगर पानी बरस जाए तो। कीचड़ हो जाएगी। पर कहीं-कहीं पीके फूटेंगे। हवा में सुगंध भर जाएगी।'

'और कुछ न हुआ तो।'

'बच्चे खेलेंगे। अभी भी खेलते हैं। लड़ते-झगड़ते हैं। हवा में शोर भर जाता है। नीम के पेड़ के पास ज़मीन पर भी कुछ चित्र से बनते रहते हैं।' उमा रानी ने शायद सुना नहीं कि रघुनंदन ने क्या कहा। वह बोलती रहीं।

'आप यह सब सोचती रहतीं हैं।'

'क्या बुराई है इसमें। देखो, सोचो, सोचते रहो। हमारे बापूजी कहते थे कि हर हाल में खुश रहना है तो कुछ न कुछ सोचते रहना चाहिए। तुम अपनी सुनाओ। गप्पें छोड़कर नीचे कैसे आए?'

'अरे, हाँ, मैं भूल गया था। आपको भी ऊपर बुलाया है। यही कहने आया था। तो चलो फिर।'

दोनों ऊपर पहुंचे, तब वहीं किसी बात पर ठहाके लग रहे थे। उन्हें देखा तो सब चुप हो गए।

'आप कहाँ थीं अब तक।' डॉक्टर गोपाल ने पूछा।

'क्यों, कहाँ होना था हमें। घर पर ही थे और घर के काम ही कर रहे थे।' शांति देवी की ओर देखते हुए उमा ने जवाब दिया। शांति देवी उठकर कमरे में चली गई।

'मैं पहुंचा, तब बड़ी माँ खाली जमीन और नीम का पेड़ देख रही थीं। हवा, बारिश और मौसम के बारे में बातें कर रही थीं बड़ी माँ। मैं भी शामिल हो गया उनकी बातों में।'

'अच्छा। हाँ तो बरखुरदार, हमने कुछ पूछा था, नीचे जाने से पहले। कहाँ खोये थे?

'सोच रहे थे दादाजी लोगों के बारे में।'

'दादाजी लोग?'

'हां। जगजीवन जी, भोला महाराज जी और गोवर्धन जी के विषय में सोच रहे थे। अंग्रेजों ने मारा उन्हें, तो किसी ने शिकायत की होगी। तब ही न। और गुरुजी कहाँ हैं? कुछ सोचा है आपने? पर जिसने भी शिकायत की होगी, वह वफादार बन गया होगा अंग्रेजों का। लेकिन देश के लिए गद्दार है वह।'

'जब सब कुछ जानते हो तो फिर पूछते क्यों हो?'

'पूछा नहीं है। सोच रहे थे।'

'तो इतना और जान लो कि वे लोग बगावत कर रहे थे। अंग्रेज़ कैसे छोड़ देते।'

'लेकिन ये सब हमारे अपने भी तो थे।'

'पर उनके काम अलग थे। पर जगजीवन और गजाधर तो बीमारी में गए।' तिवारी जी ने कहा।

'पर, तलाशी तो हुई थी उनके यहाँ। क्यों? मुझे तो लगता है बीमारी से नहीं, किसी और ही कारण से उनकी मौत हुई है।'

'अब छोड़ो भी। बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेइ।' तिवारी जी ने कहा।

'नहीं पंडितजी। बात अपनों की है। इसलिए रघुनंदन दुखी हैं। हमें भी दुख है। बापूजी के साथ थे वे। कुछ करेंगे हम।' डॉक्टर गोपाल ने कहा।

'अब क्या करेंगे। आप ही कहते हैं न, हाँ, जब चिड़िया चुग गई खेत।'

'तुम कुछ ज्यादा ही बोल रहे हो, रघुनंदन।' धनपत सिंह नाराज़ हुए।

'भाई जी, बोलने दें।'

'मेरे दादा जी नहीं रहे थे, तब बाज़ार बंद हो गया था इन्दौर में। अंग्रेज भागे-भागे आए थे घर पर। इधर पड़ोस में मौत हुई, किसी को पता नहीं। सिवा बड़ी माँ के।'

'किसकी बात पर कर रहे हैं ये।' डॉक्टर गोपाल ने उमा की ओर देखकर पूछा।

'हमारे मकान पर जो स्त्री काम करती थी, वह नहीं रही। कुछ दिन पहले ही उसका घर वाला भी गुज़र गया। चार बच्चे हैं, अनाथ।'

'इतना ही नहीं। ठेकेदार ने बड़े लड़के को काम से निकाल दिया। खोली खाली करवा ली। चारों अनाथ, बेघर और बेरोजगार। पर क्या करें। बड़ों की मौत है अपूरणीय क्षति। गरीब की मौत, धरती का बोझ कम हुआ। यही कहते हैं सब। सेठ, साहूकार, पंडित, मौलवी और साहब लोग।'

'रघु बेटा, अब बस करो। चलो हमारे साथ, नीचे बहुत काम पड़ा है।' उमा ने कहा।

'ज़रा रुको तो। रघुनंदन, तुम कुछ पूछ रहे थे, गुरुजी कहां हैं? हमने शायद उन्हें देखा है।'

'कहाँ?' उमा ने पूछा।

'नौगाँव में, सभा शुरू होने से पहले मंगलाचरण हुआ। उनका नाम नहीं बताया गया। पर हमें आवाज़ से लगा वह गुरुजी ही थे। हुलिया बदला हुआ था, साधु के समान। पर वह चौबे जी ही थे, ऐसा लगता है।'

'आपने किसी से पूछा नहीं। मिले नहीं उनसे।'

'वह फिर दिखाई नहीं दिए। मिलते कैसे। पूछने पर मालूम हुआ कि बनारस के विद्वान के साथ आए थे।'

'बनारस से पांडेजी तो नहीं थे?'

'हां वही थे। पंडित रामसहाय पांडे।'

'चौबे जी ही होंगे वह। हमारे भैयाजी। पांडेजी उनके गुरु हैं। फिर तो वह आएँगे ही यहाँ। किसी भी दिन।' उमा रानी कहते हुए नीचे उतर गई। रघुनंदन भी उनके पीछे ही चले गए।

बरामदे में बिछी खाट पर लेटे हुए सोच रहे थे रघुनंदन। अभी सुनी-सुनाई एक-एक बात उन्हें विचलित कर रही थी। कैसे लोग हैं ये सब। अपनों से बिल्कुल पराये से और परायों के लिए बिछने-लुटने को तैयार। छोटा-बड़ा, अमीर-गरीब, सवर्ण-अछूत और साहब-नौकर में बंटते जा रहें हैं सब। उस पर भी स्त्री-पुरुष की हैसियत का बंटवारा। गुरुजी से मिलने की आतुरता होने लगी थी उन्हें, मन ही मन।

ऊपर, महफिल अब भी जमी हुई थी। तिवारी जी के अतिरिक्त शेष सभी के मन में कोई उत्साह नहीं था, लेकिन लिहाज में बैठे हुए थे। डॉक्टर गोपाल सोच रहे थे कि कुछ तो है जो हाथों से छूटा जा रहा है। धनपत सिंह महामारी के विषय में सोच रहे थे। पूरब में अधिक लोग मरे। मालवा में जल्दी सुधार आया। गणपत सिंह, रघुनंदन के बारे में सोच रहे थे। लेकिन तिवारी जी कुछ और ही विचार कर रहे थे।

'डॉक्टर साहब, सोचते हैं, तीर्थ यात्रा पर चला जाए। मौसम अच्छा है अभी।'

'कहाँ जाएँगे?'

'सप्तपुरी की यात्रा का विचार है।'

'अच्छा है, तैयारी करें।'

'पर, अभी-अभी महामारी से मुक्ति मिली है। कुछ और ठहर जाते।' धनपत सिंह ने कहा।

'सिंह साहब, ईश्वर प्रेरित कर रहे हैं। तीर्थ यात्रा से पुण्य ही प्राप्त होगा।' तिवारी जी ने कहा।

'ठीक है, आप लोग पुण्य-प्राप्ति करें, हमें आज्ञा दें। चलिए भाईजी।' गणपत सिंह ने हंसते हुए कहा।

दोनों भाई परिवार सहित चलने लगे, तब गोपाल जी बोले- 'अभी कहाँ जाएँगे।'

'भाईजी के यहाँ जाएँगे। रात्रि विश्राम के बाद सुबह निकलेंगे इंदौर के लिए।'

रघुनंदन ने जाते हुए कहा 'बड़ी माँ, मैं फिर आऊँगा।'

'ठीक है बेटा।' उमा ने भीतर से ही जवाब दिया। सब लोग नीचे आ चुके थे तब तक। डॉक्टर गोपाल मुस्कुरा दिए। ऊपर न जाते हुए वहीं रुक गए। तिवारी जी भी सपरिवार जा चुके थे। शांति देवी भी नीचे आ गई थीं, उन्हें विदा करने। वह भी रुक गईं। गोपाल

सोचते ही रहे, लेकिन शांति देवी ने पूछ ही लिया- 'जीजी, हम लोग तीर्थ यात्रा पर जा रहे हैं। आप चलना चाहेंगी।'

'यह क्या तरीका है पूछने का।' डॉक्टर गोपाल ने कहा।

तभी, भूख-भूख चिल्लाते हुए शांति देवी के पाँचों पुत्र आ गए।

'आसन बिछाओ। हम थाली लगाते हैं।' उमा ने कहा।

'आपने कोई जवाब नहीं दिया, जीजी।' शांति देवी ने फिर पूछा।

'नहीं, हम नहीं चल रहे। सारे तीरथ हो चुके हैं हमारे। आप लोग जाओ।'

'आप अकेली रहेंगी यहाँ।'

'क्यों, कोई नई बात तो नहीं है इसमें। इन्दौर चले जाएंगे। प्यारे भाई से भैयाजी का समाचार मिले शायद।'

'ठीक है। रघुनंदन आ जाएँगे आपको लेने। हम खबर भिजवा देते हैं।'

दूसरे दिन सुबह उमा चली गई और तीसरे दिन डॉक्टर गोपाल, तिवारी जी सपरिवार अयोध्या के लिए रवाना हुए। अरदली, नौकर और एक सिपाही रसोई के सामान सहित साथ थे।

इन्दौर पहुँचकर उमा रानी को आराम मिला। काम नहीं, जिम्मेदारी नहीं। रघुनंदन आते रहते। ऐसे ही एक दिन आए, तो प्यारे भाई ने उठकर कुछ इस तरह अगवानी की -

'आओ जी रघुनंदन सिंह पवार।'

'मामाजी, आप तो ऐसे मत बोलो।'

'तुम्हारे मालवा में ऐसे ही बोलते हैं न।'

'बोलते होंगे। पर मैं आपसे छोटा हूँ। फिर हम सभी बुंदेलखंड से आए हैं। मराठा हैं हम।'

'भैया, रघुनंदन की दोनों बातें सही हैं। तुम सुनाओ बेटा, क्या समाचार लाए हो।'

'कुछ नहीं। मुझे कुछ पूछना है आपसे।'

'पूछो।'

'आप तीर्थ-यात्रा पर क्यों नहीं गईं।'

'इतने दिनों बाद तुम्हें यह सवाल क्यों करना पड़ा?'

'बस ऐसे ही।'

'तो भैया, बात यह है कि कार्यक्रम बनाया तिवारी जी ने। वह भी तब, जब हम वहाँ नहीं थे। न उन्होंने हमसे पूछा और न डॉक्टर साहब ने कुछ कहा। पूछा शांति ने। और कैसे? आप चलना चाहेंगी? तो भाई, हम नहीं चलना चाहेंगे, बस।'

'यह तो सरासर गलत हुआ।' भौजी ने कहा।

'जाने दो भौजी। यों भी हम सारे तीरथ कर चुके हैं। बापूजी और भैया लोगों के साथ। तीर्थों का पुण्य, ईश्वर कल्याण करे और ईश्वर की कृपा बनी रहे, ऐसे आशीर्वाद भी बहुत जमा हो गए हैं। हाँ, रघु बेटा, और क्या पूछना है।'

'पूछना नहीं, बताना है।'

'बताओ।'

'यहाँ आ रहे थे कि रास्ते में एक साधु बाबा मिल गए। आप सबके विषय में पूछने लगे। पूछा कि आप कौन तो कहने लगे, हम आपको भी जानते हैं रघुनंदन। याद नहीं। पहचान नहीं आ रहे थे। पर आवाज़ सुनी-सुनी लग रही थी। हमें लगता है कि शायद गुरुजी होंगे।'

'गुरुजी!' प्यारे भाई चौंके।

'हाँ भैया। नौगांव जलसे में डॉक्टर साहब को भी ऐसा ही लगा था। रघु और क्या कह रहे थे वह?'

'मामाजी का नाम लेकर बोले कि वहाँ देखते हैं। फिर तो हम भागते हुए यहाँ चले आए बताने।'

'ठीक किया। हरप्रसाद चौबे हुए यदि तो आते होंगे यहीं।' प्यारे भाई ने कहा ही था कि बाहर से आवाज़ आई – 'रामजी की कृपा हो। गरीब ब्राह्मण को कुछ मिलेगा?'

'भीतर आ जाओ। कुछ नहीं, बहुत कुछ मिलेगा।' उमा रानी ने हँसकर कहा। बाहर से गरीब ब्राह्मण भीतर आ गए। आते ही उन्होंने खिड़की-दरवाज़े बंद कर दिए। फिर बैठते हुए कहा 'हाँ, बहुत कुछ मिल गया।' वह हरप्रसाद चौबे ही थे।

'इतने दिन कहाँ रहे भैया जी। और यह क्या रूप बनाया है।'

'फिर भी तुमने पहचान लिया जीजी। अब अंग्रेजों ने भी पहचान लिया तो मुश्किल होगी।'

'नहीं होगी। तुम्हारा यह रूप या पुराना चेहरा, अंग्रेजों ने दोनों ही नहीं देखे हैं कभी। फिर पहचानेंगे कैसे? हम लोगों ने भी आवाज़ से पहचाना। रघुनंदन भी देखकर भ्रमित हुए। अब बताओ, कहाँ रहे इतने दिन।'

'बुन्देलखंड। कहाँ जाते। नुनसाई के मंदिर में रहे पुरोहित मिट्ठूलाल जी के साथ। वहीं यह रूप बनाया। माँ-बापूजी का स्वर्गवास हुआ, तब मुंडन हो ही गया था। यहाँ के समाचार जानना था।'

उमा रानी ने गजाधर महाराज के यहाँ हुई तलाशी से लेकर आज तक का सब वृतांत सुनाया। गजाधर जी और जगजीवन की मृत्यु का समाचार दिया। विचलित हो गए गुरुजी। फिर बोले मुठभेड़ के समय हम सब साथ थे। भोला महाराज और गोवर्धन पंडित को वीर गति प्राप्त करते देखा था। वहीं रुकते तो पकड़ में आने का डर था। अकबर खान ने अंग्रेजों का पीछा किया था और शहीद हुए। हमें अंग्रेजों के हाथों मरना स्वीकार नहीं था। आत्मघात का विचार भी मन में आया। किंतु अपने को नियंत्रित किया और नुनसाई पहुँचे। वहाँ रहकर लोगों से मिले। जानकारी ली। फिर यहीं आ गए। मालवा में इसी जगह से आशा कर सकते हैं।

'उज्जैन जाओगे?' प्यारे भाई ने पूछा।

'जाएंगे। पर अब वहाँ है कौन। भोला महाराज और गजाधर जी थे तो एक आस बनी रहती थी। सेठ गंगाधर और मुंशी मनसुखलाल संदेशवाहक से अधिक कुछ काम नहीं आएंगे।'

'मुझे अपने साथ जोड़ लीजिए, गुरुजी। मेरे कई साथी हैं उज्जैन में और यहां भी। सभी कुछ करना चाहते हैं।' रघुनंदन ने उत्साहित होकर कहा।

'प्रसन्नता हुई। कभी बात करेंगे इस विषय में। आने वाला समय आपका ही है। नवयुवकों को ही आगे आना होगा। प्यारे भाई, अब आज्ञा दें। फिर मिलेंगे।' गुरुजी ने उठते हुए कहा।

'रुकिए भैया। जलपान के बाद जाइएगा।' उमा ने कहा। उमा रानी भौजी के साथ भीतर चली गई।

'उज्जैन में डाक्टर गोपाल से मिलोगे?'

'मिलना तो है। नौगाँव में देखा था उन्हें। वह घर भी गए थे हमारे, पर भेंट नहीं हुई। उन्हें धन्यवाद भी देना है और बधाई भी। कैसे हैं सब?'

'ठीक हैं। अभी तो तीर्थ-यात्रा पर गए हुए हैं।'

'पर, यह समय ठीक नहीं था। वह लौट आएँ, तब ही जाएँगे उज्जैन।'

'चौबेजी, कब तक यूँ भाग-दौड़ करते रहोगे। घर बैठो, विश्राम-आराम की उम्र हो रही है।'

'नहीं प्यारे भाई। अभी वह समय नहीं आया है। साल में एक बार हो ही आते हैं जखौली। मिल लेते हैं सबसे ।

'ठीक हैं वहाँ सब?'

'वहाँ तो सब ठीक हैं। देश में कुछ ठीक नहीं है। व्यापारी कारोबारी राज कर रहे हैं। सूदखोर भी गरीबों का खून पी रहे हैं।'

'पर अब तो कोई पार्टी बन गई है न। वह कुछ करेंगे ही।'

'हाँ, बनी है कांग्रेस पार्टी। वह क्या करेगी। जी पार्टी है वह।'

'जी पार्टी ?'

'हाँ, नौरोजी, बैनर्जी और तैयबजी की पार्टी है न। अंग्रेज की जी हुजूर पार्टी।'

'जी भैया जी, अभी तो आप जलपान करें।' उमा ने हँसते हुए कहा।

जलपान कर गुरुजी चले गए। पीछे-पीछे रघुनंदन भी। खालीपन को भंग करने के लिए प्यारे भाई गुनगुनाने लगे।

'भैया गाना है तो खुलकर गाइए न।'

प्यारे भाई गा रहे थे-

अब लौं नसानी, अब न नसैहों।

राम कृपा भव निसा सिरानी, जागे पुनि न उसै हों।

दरवाजे पर खड़े हुए रघुनंदन भी सुन रहे थे। वह बोले 'वाह मामाजी, बहुत सुंदर गाते हैं आप।'

'आप तो चले गए थे।'

'गुरुजी को छोड़ने गए थे। साथ चलने के लिए पूछा तो गुरुजी कहने लगे कि अभी नहीं। जब साथ की आवश्यकता होगी स्वयं कहेंगे। तो हम इसलिए लौट आए। आप भी अच्छी सीख दे रहे हैं। सच, अब न नसैहों।'

प्यारे भाई गाते रहे -

नहिं ऐसो जनम बार-बार।

का जानू कछु पुण्य प्रकटे, मानुसा अवतार।

साधु संत महंत ग्यानी, चलत करत पुकार।

दासी मीरा लाल गिरधर, जीवणां दिन चार।

'वाह भैया। बहुत दिनों बाद इतना खुलकर गाया है आपने।'

'बड़ी माँ, मुझे तो बड़ी शिक्षा मिली है आज। अब न नसैहों। जीवणां दिन चार। सच।'

'अब गाना बंद करो गवैया जी। भोजन कर लो। जीजी बाई, रघु बेटा आ जाओ।' भौजी बुला रही थीं सबको।

प्यारे भाई उठ गए। चलते-चलते गा रहे थे, 'मैया मोहे घरवाली बहुत खिजाए।' उमा को हँसी आ गई। रघुनंदन देखते रहे बस।

बारिश का मौसम था। जाते हुए मानसून के दिन। पानी गिरने के आसार नहीं थे। हवा रुकी हुई। उमस मौसम पर ही नहीं, दिल-दिमाग पर भी छाई थी। घुटन, भीतर भी और बाहर भी।

'सोचने के सिवा अब और क्या कर सकते हैं।' अपने आप से कहा उमा ने। भौजी चौंक गई।

प्यारे भाई सब समझ रहे हैं। पर, वह भी लाचार हैं।

'नव रात्रि पास आ रही है। तीर्थ यात्रा से लौटने का कोई समाचार नहीं मिला अब तक।

अष्टमी का हवन, नवमी को ब्राह्मण-भोजन। कैसे होगा? क्या करें अब?' उमा ने कहा।

'तुम ज्यादा ही सोच रही हो उमा।'

'नहीं भैया। हम सोचते हैं कि अब जाना चाहिए हमें।'

'आपके भैया छोड़ आएँगे।' भौजी ने कहा।

'नहीं भौजी। रघुनंदन छोड़ आएँगे। उन्हें खबर कर दो भैया।'

प्यारे भाई भी चिंतित थे। रघुनंदन भी उदास थे। गुरुजी सोच रहे थे कि डॉक्टर गोपाल अंग्रेजियत, दिखावटी परिपक्वता और रूढ़ियों की विरासत के मकड़जाल में घिरे हैं। बहुत निराश किया है उन्होंने। ओहदे पा लिए, दौलत जमा कर ली, बाप बन गए। पर एक स्त्री को खुशी नहीं दे सके। घर-समाज को क्या देंगे। तीर्थ यात्रा भी एक पाखंड ही है, जब मन साफ न हो।

उमा उज्जैन पहुँची। चकित थीं कि सब कुछ व्यवस्थित था वहाँ। घर बहुत दिनों से खाली था, ऐसा लगा नहीं। पलभर, जड़वत-सी खड़ी रहीं। सेवक नत्थूलाल और उसकी घरवाली ने पाँव छुए उनके।

'आ गई मालकिन। आप नहीं थीं, यह हवेली सूनी लगती थी।'

उमा रानी होश में आईं। 'अरे, नत्थू बा, नानी माँ, जब कोई नहीं था तो सूनी ही लगेगी न हवेली।'

'ना, मालकिन। सब लोग हैं। बहूरानी, मालिक और बच्चे सब यहीं हैं।' नत्थू ने कहा।

'अच्छा। तुम खड़े क्यों हो, रघुनंदन। बैठो बेटा। नानी माँ, हैं कहाँ सब।'

'छोटी मालकिन तो नीचे उतरती ही नहीं। शायद बीमार हैं।'

'और तुम्हारे मालिक?

'अस्पताल गए होंगे।'

'भैया, बड़ी माँ आ गई।' बद्रीनाथ ने कहा। तब तक द्वारिका, केदार, राम और प्रयाग भी आ गए।

'अब आ गए हैं तो चलें अपना चूल्हा-चौका देखें।'

'बड़ी माँ, रसोई घर में महराजिन हैं। आप बैठें।' बद्री ने कहा।

'महराजिन! क्या-क्या बदल गया है रे। बताओ जरा।'

'माँ बीमार हैं। राम और प्रयाग को भी बुखार है।'

'क्यों भाई, जब बुखार है तो आराम करना था। यहां क्यों आ गए।'

'आराम ही कर रहे थे, माँ के कहने से आ गए।'

'बड़ी माँ, हम पाँचों नीचे ही सोते हैं आजकल। फिर आप आ गई हैं तो रात को कुछ कहानियाँ सुनकर ही सोएँगे सब।' बद्री ने कहा।

द्वारिका और केदार अपने रघु भाई के साथ बगीचे में घूम रहे थे।

'अच्छा, चलो। भोजन भी तो करोगे। देखें क्या बन रहा है।'

बड़े हॉल में बिस्तर बिछ गए। रघुनंदन, द्वारिका और बद्री एक ओर थे। केदार, राम और प्रयाग दूसरी ओर। बीच में बड़ी माँ। केदार ने कहा- 'बड़ी माँ, यह गीत सुनाइए न, हाथ से ले गयो माखन रोटी।'

उमा गा रही थीं-

धूरि भरे अति सोभित श्यामजू, तैसी बनी सिर सुंदर चोटी।

खेलत खात फिरै अँगना पग पैजनी बाजति पीरी कछोटी।

वा छवि को रसखानि बिलोकत वारत काम कलानिधि कोटी।

काग के भाग बड़े सजनी, हरि हाथ सों लै गयौ माखन-रोटी।

उमा अधलेटी सी थीं, जिससे देख सकें कि सब सोए या नहीं। वह चुप हुई तो प्रयाग कुनमुनाया। बोला- 'बड़ी माँ और सुनाओ न। जमना के तीर वाला।'

उसे थपकी देते हुए उमा गा रही थीं- 'सो जा बारे बीर, बीर की बलैयाँ लै गई जमना के तीर।' जब देखा कि सब सो चुके हैं तो उठीं और रसोईघर की ओर गईं। देखें कि डॉक्टर साहब और शांति देवी के भोजन हुए या नहीं। भोजन कर चुके थे दोनों। उन्हें पता ही नहीं चला। वापस आकर अपने बिस्तर पर लेट गईं। नींद नहीं आ रही थी। सुबह के काम सोचती रहीं।

जब सुबह नींद खुली तब उठकर देखा रघुनंदन बाहर बगीचे में टहल रहे थे।

'तुम्हारी नींद खुल गई तो हमें क्यों नहीं उठाया।'

'बड़ी माँ। राम और प्रयाग को तेज़ बुखार था रात में। दोनों के कराहने की आवाज़ सुनकर द्वारिका की नींद खुली। उसने मुझे उठाया। उसे ऊपर छोड़कर आए। द्वारिका फिर सो गया।'

'डॉक्टर साहब कहाँ हैं?'

'पूजा कर रहे हैं शायद।'

बहुत देर हो गई है आज हमें.... बड़बड़ाते हुए वह भीतर चली गईं। स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर बाहर आईं, तब तक महराजिन आ चुकी थीं।

'राम-राम मालकिन। आज क्या बनना है?'

तभी नत्थू और नानी बाई सब्जी-भाजी लेकर आए।

'देख लो, ये लोग क्या लाए हैं। अपनी इच्छा से ही कुछ बना लो।'

'बड़ी माँ, मैं ताऊजी के यहाँ जा रहा हूँ। फिर आऊँगा।' रघुनंदन ने कहा।

उमा रानी बरामदे में आराम कुर्सी पर बैठ गईं। रघुनंदन के जाते ही द्वारिका ने आकर कहा 'बड़ी माँ, राम और प्रयाग को लेकर बापूजी अस्पताल गए हैं। माँ, बद्री और केदार नानाजी के यहां गए हैं। मैं भी जा रहा हूँ।'

'हमने किसी से अनबोला तो नहीं किया है। फिर यह सब क्या हो रहा है यहाँ। कुछ पता नहीं चलता।' वह अपने आप से बोलती रहीं।

रोज वही होता। डॉक्टर गोपाल सुबह अस्पताल निकल जाते थे। कब आएँगे, आएँगे भी कि नहीं, कुछ निश्चित नहीं था। वार-त्यौहार इसी तरह बीत गए। सर्वपितृ अमावस्या को तर्पण हुआ। पितर विदा हुए। एक ब्राह्मण को भोजन कराया गया।

नवरात्रि पर घट-स्थापना हुई। पंडित शालिग्राम आते थे पूजन के लिए। अष्टमी को हवन, नवमी को विसर्जन हुआ। पंडित शालिग्राम को सपरिवार भोजन कराया गया। शांति देवी अपने बेटों के साथ तिवारी जी के यहाँ बनी रहीं।

'कब आएंगी बहूरानी?' उमा ने पूछा।

'वहाँ से अस्पताल पास है। इसलिए वहीं रहेंगी।'

'और बच्चे?'

'वे भी माँ के पास ही रहेंगे।'

उमा रानी ने कभी शिकायत नहीं की थी। अब भी नहीं की। ऐसे ही चलता रहा सब।

दिन बीत रहे थे। लेकिन बीमारों की तबीयत में सुधार के लक्षण प्रतीत नहीं हो रहे थे। दीपावली से पूर्व शांति देवी ज़िद करके हवेली लौट आई थी। दोनों छोटे बेटों के साथ। तीनों बड़े बेटे नाना के यहाँ रहे। दीपावली के बाद शांति देवी की तबीयत फिर बिगड़ी। तीनों बड़े बेटे पहले ही अस्पताल पहुँच गए थे। शांति देवी और उनके पाँचों बेटों को खून की कमी बनी हुई थी। डॉक्टर गोपाल, डॉक्टर धनपत और डॉक्टर कृष्णबिहारी के अलावा अन्य डॉक्टर्स भी उपचार के लिए उपस्थित रहते थे। इन्दौर से डॉक्टर गणपत और डॉक्टर सदाशिव भी आते रहते थे। कोई कुछ तय नहीं कर पा रहा था कि एक साथ सबको ऐसा क्या हुआ है कि कोई दवा काम नहीं कर रही। डॉक्टर धनपत सिंह का मानना था कि संक्रमण है। डॉक्टर सदाशिव को भय था कि हैजा हुआ है। एक दिन सभी को खून की उल्टी हुई थी, साथ ही खूनी दस्त भी हुए। एक डॉक्टर ने दिमागी बुखार की आशंका बताई। इन सबसे अलग थे पंडित चतुर्भुज तिवारी और तिवारिन जू। वे कहते कि नज़र लगी है। टोना-टोटका हुआ है। डॉक्टर गोपाल चुप रहते थे ऐसे समय। उमा रानी क्या कहतीं।

अन्ततः जो नहीं होना था, वही हुआ। शांति देवी की मृत्यु और उसके एक पखवाड़े के अन्दर उनके पाँचों पुत्र एक-एक कर गुज़र गए। उमा रानी सन्न थीं। डॉक्टर गोपाल जड़वत। चुप। लेकिन नदी घाटी बस्ती में जितने मुँह उतनी बातें। अनहोनी तो हो गई थी।

***

भाग-16

कहाँ है स्वर्ग? और नरक कहाँ है। है भी कहीं कुछ या वैसे ही, अवसाद में डूबा है सब कुछ। हर कोई कुछ कर रहा है, पर परिणाम नहीं जानता क्या होगा। कुछ लोग सिर्फ कहते हैं। हवा है। अभी धूप थी, फिर छाँव है। पानी है। बारिश अच्छी हुई। ठंड भी पड़ना है। फिर बदला क्या ? कुछ भी तो नहीं। सुबह, शाम, रात या दिन ? कुछ भी नहीं। ज्ञानी-ध्यानी कहते हैं कि होनी को कोई टाल नहीं सकता। जो होना है, वह होगा ही। सृष्टि का क्रम है। जीवन और मृत्यु। पर मन ठहरता नहीं किसी एक जगह। कुछ भी इच्छा नहीं होती करने की। भटकाने वाले बहुत हैं। डॉक्टर गोपालप्रसाद के साथ यही हो रहा है।

शुभचिंतकों के परामर्श पर अवकाश लिया। पर चैन नहीं मिला। उमा रानी पास ही रहीं, लेकिन उनकी उपस्थिति का आभास ही नहीं होता उन्हें।

शांति देवी और पाँच पुत्रों की मृत्यु के बाद गोपालप्रसाद बरामदे की आराम कुर्सी पर बैठे रहते थे। ग्वाड़ी के बूढ़े-पुराने लोग नीम के पेड़ के पास बातें करते रहते थे।

'ऐसा तो पहले कभी नहीं देखा मालिक को।' सुतार बब्बा कहते।

'बेटों को तो बड़ी मालकिन ने भी खोया था। पर आज भी वही हैं जो दिन-रात गृहस्थी को थामे हुए हैं।' गंगाधर चौबे थे यह।

'चुप तो करो। हवा भी चुगलखोर होवे है।' पंडिताइन कहतीं।

'का चुप करें भौजी। काम से फुरसत नहीं मालकिन को। लोगन की अगवानी, सत्कार और दूसरे अलहदा काम भी।' रामभरोसे कह रहे थे।

'फुरसत की इजाज़त ही नहीं है।' सुतार बब्बा बात को विराम देते।

कितने ही लोग आ-जा रहे थे। व्यासजी महाराज, शालिग्राम पंडित, अनोखेलाल और सदाशिव गुरुजी। धर्म-शास्त्र, पुराण और रीति-नियमों की बातें होतीं। उपदेश और प्रवचन दैनिक क्रियाकलाप थे। पंडित चतुर्भुज तिवारी आते थे और एक ओर ले जाकर समझाते। उसे जो बच्चा नहीं था। एक उम्रदराज इंसान था। पर डॉक्टर गोपाल खामोश

सुनते रहते। उमा बैठी रहतीं। कभी उनके पास, कभी अकेली। उदास। कभी रसोईघर के कामों में व्यस्त। अपने लिए पल भर का अवकाश नहीं था उन्हें।

तिवारी जी के परिवार से महिलाएँ भी आती थीं। लेकिन कुछ दूरी बनाकर उनसे बैठी रहतीं। खामोश। तिवारीजी का उपदेश चलता रहता।

प्यारे भाई और भौजी आए। कुछ दिन रहकर चले गए। उमा के चेहरे के भाव कुछ समय के लिए बदले थे। उनके जाते ही फिर वही सब कुछ। पहले जैसा। इसी तरह पाँच बरस बीत गए। पता नहीं चला। पर उमा के बालों की गहराती सफेदी बहुत कुछ कहती थी। लेकिन डॉक्टर गोपाल अब भी गठीले, रोबीले और ठसक वाले। बूढ़े नहीं लगते वे कहीं से भी।

अस्पताल से लौटकर बरामदे में बैठे थे डॉक्टर गोपाल। प्यारे भाई और गुरुजी हरप्रसाद चौबे आए हुए थे। पुरानी बातों की अब कोई याद नहीं दिलाता था।

अक्सर ही किसी अनजाने से विषय पर चर्चा हो जाती। उमा रानी भजन ही गुनगुनाती रहती थीं। डॉक्टर गोपाल भी गृहस्थी के कामों का कभी जिक्र कर लेते थे। शांतिपूर्वक सुनने की आदत भी बन गई थी उनकी। फिर भी लगता नहीं था कि वह पुराने दिनों को पूरी तरह भूल गए हों। खासकर, पुत्रों को वह विस्मृत नहीं कर पाए थे । ऐसे समय पर प्यारे भाई की पत्नी धीरे से बोल ही देती थीं 'डॉक्टर लाला, हमारी उमा जीजी ने भी बच्चे खोए हैं। सब कुछ भूलाकर भी गृहस्थी चला रही हैं जीजी।'

तब डॉक्टर साहब कहते 'नहीं, नहीं ऐसी बात नहीं है कि हमें नहीं मालूम। हम तो यही कहेंगे कि उमा रानी ने हमें भी संभाला है। क्या पता हम मनोरोगी होकर ही कहीं खो जाते।'

यही सब बातें एक दिन हो रही थीं। गुरुजी समझाते हुए कह रहे थे 'पुरानी बातों को भूला दो गोपाल। अभी आप दोनों को ही बहुत काम करने हैं। साथ-साथ।'

तभी पंडित शालिग्राम पधारे। उनके हाथों में कुछ पोथी-पत्रे देखकर गुरुजी ने पूछा - 'क्या लिए हुए आ रहे हैं शालिग्राम महाराज?'

'गुरुजी, एक पंडित के हाथ में क्या होगा? जन्म-पत्रियाँ और पंचांग।' पंडित ने जवाब दिया।

'अब किस-किस की जन्म-पत्रिकाओं का मिलान होगा यहाँ बैठकर, यह भी बता दें।'

'डॉक्टर साहब की जन्म-पत्रिका देख रहे थे, वही लाए हैं।'

'पंडित जी, हम अपनी जन्म-पत्री, शांति देवी और पाँचों पुत्रों की पत्री, सब शिप्रा में बहा चुके हैं। फिर आप क्या ले आए?' डॉक्टर गोपाल ने कहा।

'क्रोध न करें डॉक्टर साहब। हमारे पास एक प्रति थी। साथ ही उमा बहूरानी की जन्म-पत्री भी लाए हैं। जन्म समय और तिथि पिताजी के पास लिखी रखी थी, उसी आधार पर बनाई है।'

'पंडित जी, आप इन कामों में अपना समय व्यर्थ न करें। ये भी यहाँ रख दें। हम शिप्रा में बहा देंगे।'

'शालिग्राम जी, आप जो कह रहे हैं, वह आपका कर्म है। यह कर्म आपका व्यवसाय भी है। इसीलिए आप यह सब कहते-सुनते हैं। बनारस में अपने गुरुजी से इस विषय पर हमने चर्चा की थी। बम्बई-प्रवास में स्वामी दयानंदजी से भी वार्तालाप होता था। वे दोनों महात्मा अब नहीं हैं। लेकिन उनकी शिक्षाएँ अब सार्वजनिक हैं।'

'गुरुजी, आप धर्म का साक्षात स्वरूप ही हैं। आपकी बातें सोलह आने सच हैं। पर हमारा निवेदन कुछ अलग है। सुन तो लें। फिर आप यह सब भी शिप्रा में बहा देना।'

'चौबे जी, पंडित जी क्या कह रहे हैं, तनिक वह भी सुन लें। क्या बुराई है ?' प्यारे भाई ने सुझाव दिया।

'ठीक है। कहिए शालिग्राम जी, क्या नया कह रहे हैं आप।'

'हमने डॉक्टर साहब के परिवार की सभी जन्म-पत्रिकाओं का, व्यासजी महाराज के साथ सूक्ष्म अध्ययन किया है। महाराज जी ने जानकी पंडितजी की जन्म-पत्रिका का भी अध्ययन किया था। उन्होंने ही बताया कि विगत कुछ वर्षों में इस परिवार में ही नहीं, अन्यत्र भी जो कुछ हुआ, वह पूर्व-निर्धारित था। मारकेश योग, हर पत्री में प्रबल था।'

'अच्छा!' गुरुजी ने हँसते हुए कहा।

'उपहास न करें श्रीमान। पूरी बात तो सुनें।'

'कहें।'

'गोपाल जी और उमा जी की पत्री में संतान-योग भी प्रबल बन रहे हैं।'

'पंडित जी, अब आप उपहास कर रहे हैं। एक ओर मारकेश बता रहे हैं, दूसरी ओर संतान योग। हम दोनों जीवित भी हैं, लेकिन पचास पार हो रहे हैं।'

'डॉक्टर साहब, हम तो ग्रह-दशाओं के प्रमाण की बात कर रहे हैं। आगे प्रभु-इच्छा!'

'प्रभु-इच्छा पर ही छोड़ दें इसे और पत्रियाँ हमें दीजिए।'

अनिच्छा के बावजूद शालिग्राम जी ने पत्रियाँ सौंप दीं।

'शालिग्राम जी आपके ग्रह-नक्षत्र और उनकी दशाएँ क्या कहती हैं, इससे ज्यादा महत्वपूर्ण है कि मनुष्य क्या करता है। उसका विवेक और उसकी विचारधारा मायने रखती है। गणित-फलित कुछ भी कहें, प्रकृति अपना काम करती है। समय बदलता है और उसी के अनुरूप जीवन की दशा-दिशा बदलती है। फिर अमरत्व किसने पाया। कोई अल्पायु रहा, कोई दीर्घायु। मनुष्य का कर्म, उसका आचरण, मौसम और आहार-पथ्य ही निर्धारित करते हैं सब कुछ। जो विपरीत चला, उसने भोगा। विगत वर्षों में यही हुआ है। संक्रमण। एकमात्र कारण पंडित जी।'

'अब आपसे हम क्या बहस करें।'

'करिए। क्यों नहीं करेंगे। पर यह मान लें कि आना-जाना चलता रहेगा। पर उसका दुख स्थायी भाव न बन जाए। अन्यथा हम सुख से वंचित रहेंगे। डॉक्टर साहब, आपका दुख निजी है। वह सबका नहीं हो सकता। उसी तरह सार्वजनिक जीवन में निजी सुख-दुख को ही स्थायी बनाने से क्या लाभ।'

'शायद आप ही सही हैं, तो फिर हमें आज्ञा दें। हम चलते हैं।' शालिग्राम जी ने कहा।

'प्रणाम पंडित जी।' डॉक्टर गोपाल भी खड़े हो गए विदा के लिए।

'आयुष्मान भव।'

पंडित शालिग्राम के जाते ही गुरुजी भी उठे और बोले - 'अब हम भी चलेंगे।'

'भैया, तनिक ठहरें।' कहते हुए उमा रानी बाहर आईं। 'आज हमसे मिले बिना ही जा रहे थे। कुछ जलपान नहीं करेंगे।'

'तुमसे मिलकर ही जाते, जीजी बाई। पर जलपान नहीं करेंगे।'

'जाना कहाँ है, चौबे जी?' प्यारे भाई ने पूछा।

'अब आपसे कुछ छिपा है क्या। नदी की ओर जाएँगे। वहाँ कुछ साथी प्रतीक्षा करते होंगे।'

'फिर साथ ही चलते हैं।'

'सरोवर तक हम भी साथ चलते हैं। वहाँ से आप निकल जाइएगा।' डॉ. गोपाल ने कहा।

'ठीक है।'

तीनों साथ ही घर से निकले। सरोवर पहुँचकर गोपालजी ने सारी जन्म पत्रियाँ जल में बहा दीं। गुरुजी के ओठों पर मुस्कान थी, लेकिन प्यारे भाई प्रसन्न नहीं थे शायद। बोले- 'यह क्या किया?'

'क्या गलत किया भैया। जो चले गए, उन्हें याद करने के लिए इन कागजों का कोई अर्थ नहीं। जो हैं, वे हैं और रहेंगे। इतना ही पर्याप्त है।'

'प्यारे भाई, ठीक ही तो है। जीजी बाई के साथ शेष जीवन प्रसन्नतापूर्वक व्यतीत हो, वही चाहिए। लेकिन, जीजी में एक खालीपन और उदासी को अनुभव किया है हमने। उसे दूर करना होगा।'

'क्या करें, आप ही कहें।' डॉक्टर गोपाल ने पूछा।

'एक बच्चा गोद ले लें। वही सही होगा।'

'व्यासजी ने भी कहा था एक बार। एक परिवार से भी मिलवाया था। हमने ही ध्यान नहीं दिया।'

'अब ध्यान दें। संभवतः शालिग्रामजी यही संकेत करना चाहते थे। लेकिन उसके लिए जन्म-पत्री की क्या आवश्यकता।'

'चौबे जी, आप ही कुछ करें इस विषय में।' प्यारे भाई बोले।

'देखेंगे। अब आप दोनों घर जाएँ। हम चलते हैं।'

प्यारे भाई और डॉ. गोपाल हवेली लौट गए। उमा रानी कुछ गुनगुना रही थीं। इन्हें देखकर चुप हो गईं।

'चुप क्यों हो गई आप। गाइए, अच्छा लगता है।' उमा ने फिर एक भजन शुरू किया-

अपने श्रीमुख से गोविंद नाम कहो रे

अपने श्रीमुख से

गोविंद नाम कहो रे, गोपाल नाम कहो रे

अपने श्रीमुख से गोविंद नाम कहो रे

अपने श्रीमुख से।

गुरुजी नदी-घाट पर बनी छतरी पर पहुँचे। वहाँ सेठ गंगाधर, मुंशीजी और अकरम खान उपस्थित थे। कुछ नवयुवक भी बैठे थे। गुरुजी ने सबसे पहले यही सवाल किया- 'ये लोग कौन हैं।'

'स्कूल के विद्यार्थी हैं।' अकरम ने कहा।

'तो इन्हें स्कूल में होना चाहिए था, यहाँ क्यों?'

'स्कूल इनका पूरा हो चुका है। आगे की पढ़ाई के लिए आगरा या कहीं और, घर से दूर जाना नहीं चाहते। हमारे साथ कुछ करना चाहते हैं।'

'आप लोग रघुनंदन सिंह से मिलें, वही कुछ बताएँगे आपको।'

'हम सभी उन्हें जानते हैं और मिल चुके हैं। उन्होंने ही आपके पास भेजा है।' एक नवयुवक ने बताया।

'मित्रों, यह एक दूसरा महाभारत है। द्वापर में लड़ाई आमने-सामने की थी। हमारा शत्रु चतुर-चालाक और धूर्त है। वह हमें अपनों से ही लड़ा रहा है। व्यापारी है और राजा बन गया है।' गुरुजी ने एक दृष्टि सेठ गंगाधर पर डाली और फिर कहा- 'चापलूस और दगाबाज सिपहसालार हैं, सलाहकार हैं। हम जंगल जंगल भटक रहे हैं।' हमारा राजा पीछे से वार करता है। अर्थात पैसा और ताकत राज कर रहे हैं।'

'इसलिए हमें अपनों की भीड़ में उस फिरंगी के फरेबी चेहरे को पहचानना है।' अकरम खान ने कहा।

'आप सब रघुनंदन से मिलते रहें। हमें भी कहीं से निर्देश मिलते हैं। हम आपको भी पहुंचाएंगे नई योजनाएँ। इस समय आप जाएँ। अकरम भाई, इन्हें छोड़कर आएँ।'

नवयुवक चले गए, तब गुरुजी ने कहा- सेठ साहब और मुंशीजी, आप यहाँ नये, पर परिपक्व साथियों की खोज करें। तब ही काम बनेगा। अभी आप दोनों भी जाएँ।

दोनों चले गए, तब गुरुजी भी रवाना हुए वहाँ से।

कुछ सोचकर ही गुरुजी डॉ. धनपतसिंह के निवास स्थान पर पहुंचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूछा- 'डॉक्टर साहब, रात्रि विश्राम के लिए यहाँ ठहरना चाहते हैं। आज्ञा हो तो आए। सुबह चले जाएँगे।'

धनपतसिंह को आपत्ति क्यों होती। फिर भी उन्होंने पूछा- 'चौबे जी, आपका जब तक मन हो, रहें। पर यह तो बताएँ कि गोपालजी के यहाँ से क्यों चले आए आप?'

'वहाँ से विदा होकर ही निकले थे। कुछ लोगों से भेंट-मुलाकात में समय पता ही नहीं चला। इसलिए रुकना पड़ा। पास में ही थे तो यहाँ आ गए। सुबह इन्दौर जाएँगे।'

'यों भी आप अपने ठौर-ठिकाने बदलते रहते हैं। इन्दौर में कहाँ ठहरेंगे इस बार?'

'अब हमारा काम ही ऐसा है कि एक जगह नहीं रह पाते। आपकी तरह नौकरी-पेशा तो हैं नहीं, जो सरकार हमारे ठहरने का प्रबन्ध करे। इस बार प्यारे भाई के यहाँ ही रहेंगे। घर-परिवार के लोग मिलते रहेंगे।'

'चौबे जी, रघुनंदन भी वहाँ जाता रहता है। हमारा भतीजा है वह। मिले तो समझाएँ उसे। आजकल, कैसी-कैसी तो बातें करता है। कहीं राह न भटक जाए। बड़ी चिंता है हमें।'

'डॉक्टर साहब, नई पीढ़ी के बच्चे हैं। उम्र के साथ सब समझ आ जाएगी। काम-धंधा, शादी-ब्याह और घर-गृहस्थी के कामों से जुड़ते ही अक्ल आ जाएगी। हम क्या समझाएँगे। इस बार इन्दौर रुक रहे हैं तो देखेंगे, कोई अच्छा परिवार मिल जाए। एक बच्चा गोद लेने की बात की जाए उनसे। समाज के लोगों से भी मिलेंगे। शायद बात बन सके।'

'किसके लिए चौबेजी ?

'उमा जीजी के लिए सोच रहे हैं।'

'गोपाल जी मान जाएँगे?'

'अभी तो मान गए हैं। कल पता नहीं, क्या हो। पल-पल बदलते रहते हैं वह।'

'ऐसा लगता है आपको?'

'क्या सही नहीं है। बचपन से देखते आए हैं हम। कभी कुछ, कभी कुछ। घर में, घर के लोगों के साथ जिन विषयों पर खुलकर बोलते हैं, उन्हीं विषयों पर बाहर, पंडित-मौलवियों, सेठ-साहूकारों, ठिकानेदारों, अंग्रेज अफसरों के बीच कुछ अलग हो जाते हैं। बदलते चेहरों, बदलते विचारों और बदलते आदर्शों के साथ जितना उन्हें देखा या समझा तो लगा कि मैं उन्हें जानता ही नहीं शायद। ग्वाड़ी-टोलों के लोगों के बीच तो वह पक्के जमीदार साहब ही रहते हैं।'

धनपतसिंह सुनते रहे। कुछ बोले नहीं। तब क्षणिक विराम के बाद गुरुजी ने कहा 'चलिए कुछ और बात करें।'

'आप ही सुनाएँ कुछ। आप जाते रहते हैं नई-नई जगहों पर। कई लोगों से मिलते भी हैं। आप ज्यादा जानते हैं। हमारा क्या, यहाँ से इन्दौर, बस। घर से अस्पताल, जहाँ मरीज़ ज्यादा मिलते हैं। उनसे क्या बातें होंगी।'

'क्यों नहीं होंगी। कुछ किसी रोग से ग्रस्त होते होंगे और कुछ घायल। उन्हें देखकर आपके मन में सवाल नहीं उठते। घायल की यह दशा कैसे हुई? किसने और क्यों की? बीमार कैसे हुए? होते होंगे न वे सवाल-जवाब।'

'हाँ, होते हैं। पर कुछ पता नहीं चलता इससे भी। पर मिलने वाले आपसे ज़रूर कुछ बोलते होंगे।'

'बोलते हैं। कुछ नहीं भी बताते। पर अनुभव हो जाता है। बहुत जगह घूमे हैं हम। हर सूबे की एक अलग पहचान है। पर चेहरे, हर जगह एक से। उदास। थके, मायूस और बीमार। डरा-सहमा और मुरझाया-सा मिलता है हर आदमी। देखकर दुख होता है। क्रोध आता है। आपको नहीं लगा ऐसा किसी से मिलकर।'

'लगा, पर करें क्या हम?'

'यही तो, घर-घर के बीच वह खुलापन ही नहीं रहा पहले जैसा। दीवारें उठ गई हैं। डोर टूट गई है। एक ही गाँव-नगर में दृश्य, अदृश्य सरहदें बन गई हैं। बस्तियों और महलों के

बीच भी। फिरंगियों के ठिकानों से ज़हरीली हवा आकर दम घोंट रही है हर जगह। पगडंडी से राजमार्ग तक वही हवा बह रही है। आप तक नहीं आती वह हवा!'

'आती है। यही सब अनुभव होता भी है।'

'पर, हमारे गोपाल जी तक शायद नहीं पहुँचती वह हवा। जन्म-पत्रियाँ शिप्रा में बहा दी उन्होंने। लेकिन उनका मन अब भी ग्रह-दशाओं वाले गणित-ज्ञान में उलझा हुआ है। समझाइए उन्हें, शायद सुनें आपकी बात।'

'चौबे जी, वह अपने मन की सुनेंगे। पिता को दिया वचन निभाएँगे।'

'तो एक विवाह और करेंगे।'

'यही लगता है। पिता ने तीन विवाह की भविष्यवाणी की थी।'

'इसीलिए हम चाहते हैं एक बच्चा गोद लेने का काम शीघ्र होना चाहिए।'

'इस समय तो विश्राम करें आप।'

दूसरे दिन सुबह गुरुजी इन्दौर पहुँचे। प्यारे भाई बाहर ही मिल गए। सब्जी-भाजी लेकर आ रहे थे।

'जल्दी आ गए?' उन्होंने पूछा।

'कुछ लोगों से मिलना था। मिल लिए। समय ज़्यादा हो गया था। रात वहीं रुक गए।'

'कहाँ! हवेली गए थे।'

'नहीं। डॉक्टर धनपतसिंह के निवास पर रुके थे। बहुत बातें हुई उनसे। अच्छा लगा।'

'और? कोई खास बात।'

'वह रघुनंदन के लिए कुछ ज्यादा ही चिंतित हैं। उन्हें लगता है कि लड़का कहीं हमारी राह पर न निकल जाए।'

'निकल भी गया तो क्या कर लेंगे।'

'वहीं तो। पर हमने कहा कि लड़का समझदार है। अपना भला-बुरा सोचता ही होगा।'

'जैसा हमारे चौबेजी ने सोचा था और निकल पड़े थे दूर कहीं।'

'लेकिन उसके साथ शायद ऐसा न हो।'

'क्यों?'

'क्योंकि उसके साथ, उसके परिवार के साथ कभी कुछ प्रत्यक्ष नहीं घटा और घटेगा भी नहीं। फिर परिवेश, परवरिश और वातावरण के साथ ही एक लक्ष्य भी होना चाहिए।'

'ऐसा नहीं है चौबेजी। परिस्थितियाँ बदल रही हैं। समाज बदल रहा है। नई पीढ़ी, जिस तरह की रीति-नीति से परिचित हो रही है, उसकी प्रतिकिया होगी ही। किसी भी समय, कुछ भी हो सकता है। उज्जैन में लोग जिस तरह सामने आ रहे हैं, ऐसा ही आभास होने लगा है हमें।'

'हो सकता है, पर हम निश्चित नहीं हैं अभी।'

'निश्चित होना पड़ेगा। रघुनंदन की पीढ़ी उन बातों के विरूद्ध है जिन्हें उनका परिवार मानता आया है। उज्जैन में मजदूर स्त्री की मृत्यु, उसके परिवार के प्रति शांति देवी का व्यवहार। विधवाओं और लड़कियों के प्रति असमानता का व्यवहार। अँग्रेज़ों से परिवारों की निकटता। इन सब बातों पर यह पीढ़ी प्रतिक्रिया देने लगी है।'

'आप इन सबसे अधिक निकट हैं। आप हमसे ज्यादा जानते होंगे।'

'वही तो। हमने देखा है। रघुनंदन से यह सहन नहीं होता। वह उमा के लिए भी सोचता है। अपनी स्वेच्छा से। किसी स्वामी, महापुरूष या विद्वान की प्रेरणा से नहीं। अपनी पढ़ाई से भी कुछ सीख रही होगी यह पीढ़ी।'

'प्यारे भाई, आप भी बदल रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है हमें।'

'अरे नहीं, जो देखा-सुना और समझा, वह बता दिया। गणपतसिंह जी उसका ब्याह रचाना चाहते हैं। पर, उसने साफ मना कर दिया है। वह दबाव में नहीं आएगा।'

'डॉक्टर गोपाल बुढ़ापे में तीसरा ब्याह सोच रहे हैं।'

'यही दशा पूरे देश की है। कुछ नहीं बदला है। वही अकड़, वही चापलूसी और छिछोरापन। धर्म के नाम पर पाखंड। गोपाल जी ने स्वामी दयानंद से क्या सीखा? शालिग्राम की सुनेंगे।'

'छोड़ो उसको। रघुनंदन पर ध्यान दो। उसमें जोश है, समझदारी नहीं। साथ भले मत लो, पर परामर्श अवश्य दो।'

'वह तो करेंगे ही। पर अभी जीजी बाई के प्रति सोचना है। डॉक्टर का मन बदलने से पहले कुछ करना होगा।'

'ठीक कहते हो। दूसरों के बहकावे में बहुत जल्दी आ जाते हैं वह। इन दिनों शालिग्राम जी और तिवारी जी भटका रहे हैं। तीर्थ यात्रा पर जाने का प्रस्ताव भी तिवारी जी का ही था। मना करने पर भी गए और परिवार बीमारी लेकर आ गया। अब दोषी ठहराई जा रही हैं उमा।'

'किसने कहा आपसे?'

'धनपतसिंह जी ने। यात्रा पर जाने से रोका था उन्होंने। गोपाल जी नहीं माने। माँ-बेटी की मौत पर तिवारी जी ने कहा कि उमा ने जादू-टोटका कर दिया। गोपाल जी चुप रहे।'

'प्यारे भाई, कैसे लोग हैं ये। कुछ शरम नहीं इन्हें। गाँव का अनपढ़ ऐसी बात करे तो समझ में आता है। पर ये पढ़े लिखे लोग? क्या कहें उनकी बुद्धि को।

'बहुत दुख दिए हैं उमा को। बड़े भैया सुनेंगे तो पता नहीं क्या कर बैठें।'

'आवाज़ तो उठानी होगी अब। तब ही कुछ होगा।'

'जी, ज़रा सुनिए तो।' भीतर से आवाज़ आई।

'जाइए, भौजी बुला रहीं हैं आपको।'

'अरे भागवान, बाहर आ जाओ। अपने चौबे जी हैं, बस।'

'हम बस इतना कह रहे हैं कि भोजन कर लें।'

दोपहर का समय। हवा चल रही थी। ठंड कुछ ज्यादा ही है इस बार। गुरुजी ने नाक-कान तक खींच कर रजाई ओढ़ ली। नुनसाई, इटौरा और जखौली में रास्ते-पगडंडी सूने हो जाते थे ऐसे समय। यहीं हमेशा चहल-पहल रहती है। पिछली शाम इसी समय डॉक्टर गणपत आए थे। महामारी के बारे में बता रहे थे। भौजी चिंतित हो रही थीं। पता नहीं क्यों। पर जब हैजा, प्लेग, माता और तपेदिक से हुई मौतों पर गणपतसिंह ज़ोर देकर बोले, तब उन्होंने प्यारे भाई को बुला लिया- 'जी सुनिए तो जरा।'

अक्सर ऐसा होता रहता है यहाँ। गुरुजी के चेहरे पर मुस्कान आ गई। वह उठकर बैठ गए।

'कल माघ पूर्णिमा है। शिप्रा स्नान का मन है। चलेंगे?' भौजी कह रही थी।

'स्नान यहाँ ही हो जाएगा।' प्यारे भाई ने कहा।

'कहाँ जाएँ यहाँ! जो है, उसे नदी मानने का मन नहीं होता।'

'यों तो बहुत कुछ मानने का मन नहीं होता, पर मानना पड़ता है।'

बात आई-गई हो गई। लेकिन गुरूजी सोच में पड़ गए। बात बहुत छोटी है और छोटी-छोटी बातें मिलकर ही समस्या बन जाती हैं। अक्सर। स्त्री की बात को हम अनसुना करते रहते हैं। फिर कितने ही आँसू अंगार बन जाते हैं।

एक षड़यंत्र में भोला महाराज और गोवर्धन पंडित मारे गए। षड़यंत्र अब भी हो रहे हैं। भीतर-बाहर-सब ओर। निहत्था ही सही, अकेला, लेकिन लड़ना है। गुरुजी सोच रहे थे, लेकिन उमा जीजी का सवाल रास्ता रोक रहा था। करवट बदली ही थी कि दस्तक हुई। सामने प्यारे भाई खड़े थे। दो व्यक्ति और थे जिन्हें पहले कभी देखा नहीं था। लगता है काफी देर तक हम भीतर ही लेटे रहे। गुरुजी ने सोचा।

'कहाँ रहे अब तक प्यारे भाई?' गुरुजी ने पूछा।

'गोपाल जी के खेतों की ओर गया था। खेत-मजदूरों को खर्चा-पानी बाँटना था। वहीं बतियाते रहे। गाँव में भी हवा बदली हुई है चौबेजी।'

'कैसे?'

'जमीदारों का जुल्म, राजा-ठिकानेदारों की ज्यादती और अंग्रेज़ों का अत्याचार। गरीब कहाँ जाए। हवा गरम है। ठंड का असर कम है, कुछ लोगों के कारण।'

'कौन लोग हैं?'

'पहले भागीरथ जी जाते रहते थे। अब उनके बेटे हैं। अकबर खान के शिष्य हैं। उन्होंने ही बदलाव किया है।'

'यह तो होना ही था। गाँव बदल रहा है, खुशी की बात है।'

'कैसी बात कर रहे हो भाई लोगों।' एक आगंतुक अपरिचित बोला।

'आप कौन?' गुरुजी ने पूछा।

'गाँव के ही लोग हैं। डॉक्टर गोपाल के खेतों के पास थोड़ी सी ज़मीन है इनकी भी। गाँव में पंडिताई का भी काम है। ये जो बड़े हैं इनका। रामगोपाल जी हैं ये। इनके बड़े भाई यहां एक मंदिर में पुजारी हैं। उसी नदी किनारे मंदिर है, जिसे आपकी भौजी नदी नहीं मानतीं।'

'तो अपने भाई के यहाँ जाना होगा शायद। इसीलिए साथ आए हैं।'

'नहीं, इन्हें आपसे मिलवाने लाए हैं हम। भागीरथजी गाँव में आपकी बात किया करते थे।'

'पर अभी तो ये हमारी बात पर नाराज़ हो रहे थे।'

'नहीं भाईजी, वह अकबर खान का नाम लिया। यह हमें अच्छा नहीं लगा।'

'क्यों? अकबर खान भी भागीरथ जी के साथ थे। हमारे भोला महाराज और गोवर्धन पंडित के साथ वह भी शहीद हुए थे।'

'भाईजी, गाँव के ही कुछ लोग अकबर खान के चेलों का विरोध करते हैं। वह कहते हैं कि ये लोग फिरंगियों के भेजे हैं।' दूसरे आगंतुक ने कहा।

'आप लोग इस बहकावे में न आएँ। अकबर खान हमारे साथी थे। उनके शिष्य भी हमारे आन्दोलन से जुड़े हुए हैं। यह मानकर चलें आप। हम उनसे मिले नहीं हैं, पर विश्वास है हमें। पर प्यारे भाई सिर्फ हमसे मिलना ही तो एकमात्र काम नहीं होगा।'

'हाँ, काम तो और भी है। वह यह कि हम इनके साथ मंदिर चलेंगे। वहीं इनके बड़े भाई पंडित कृष्णगोपाल से मिलना है।'

जब ये लोग मंदिर पहुँचे, वहाँ प्रवचन चल रहा था। कृष्णगोपाल कह रहे थे- 'ये भूख बड़ी दुखदायी है। मिटती नहीं कभी, बढ़ती जाती है। किसी को धन संपदा की भूख, किसी को ज़मीन की। कोई सोना इकट्ठा कर रहा है तो कोई कुर्सी की ओर भाग रहा है। किसी का मन एक स्त्री से नहीं भरता, कोई पर-स्त्री पर दृष्टि डालता है। पर यह जो पेट की भूख है, बड़ी विचित्र है। राजा और रंक सभी को लगती है। राजा अन्न खाता है और

फेंकता है। रंक है जिसे दो जून की रोटी भी नहीं मिलती। पानी पीकर ही सोने का जतन करता है। हमें इस रंक के भोजन की ओर देखना है। हमें नहीं, इन भूखों की रोटी के लिए कुछ देते रहिए। ईश्वर कल्याण करेंगे।'

पंडित कृष्ण गोपाल उठे तो सामने अपने भाई के साथ लोगों को देखकर फिर बैठ गए। प्यारे भाई को देखा तो पहचान गए। प्यारे भाई ने गुरुजी का परिचय दिया।

पंडित ने कहा- 'सुनते रहे हैं आपके विषय में। आज दर्शन हो गए।'

'दादा, उज्जैन से डॉक्टर साहब के अरदली फिर आए थे। वह बाज़ार भाव से दोगुना मूल्य चुकाने को तैयार हैं। आपका क्या निर्णय है।'

'रामगोपाल, तुम्हारी कोई नौकरी नहीं है। गाँव की ज़मीन ही सहारा है। पंडिताई से भी क्या मिलता है हमें। गिरिधर की नौकरी से भी कितना मिलता है। बड़ा परिवार है, वैसी ही आवश्यकताएँ हैं। सोच लो ज़मीन न रही तो क्या करेंगे हम सब ।'

'पंडितजी, डॉक्टर साहब रामगोपाल की नौकरी के लिए कुछ करेंगे। ज़मीन से हुई फसल से भी आपको कुछ न कुछ मिलता रहेगा।' प्यारे भाई ने कहा।

'ठीक है, प्यारेलाल जी हमें आप पर पूरा विश्वास है।'

वहाँ से लौटते हुए गुरुजी सोचते रहे कि जो कुछ हुआ या अब होगा, उससे हमारा क्या लेना-देना, फिर हमें साथ क्यों ले गए प्यारे भाई।

प्यारे भाई ने घर पहुँचकर कहा 'चौबेजी, इसी परिवार से एक बच्चा गोद लेने की बात की जा सकती है। छोटे भाई गिरिधर गोपाल के यहाँ बच्चा अभी छोटा है। बात करें पंडित कृष्णगोपाल से ?'

'आप, परिवार से अच्छी तरह परिचित हैं। यदि आप सोचते हैं कि बात बन जाएगी, तो आगे बढ़ें।'

'तो कल ही कृष्णगोपाल जी से बात करते हैं।' प्यारे भाई ने विस्तार से बात समझाते हुए कहा- 'गिरिधर और कृष्णगोपाल जी शहर में एक साथ रहते हैं। रामगोपाल गाँव में। पक्का मकान है। तीनों के परिवार बड़े और आवश्यकताएँ उतनी ही बड़ी। आय सीमित और व्यय असीमित। इसीलिए लगता है मान जाएँगे। बड़ा घर, बड़े लोग हैं। यह प्रलोभन भी हैं। पर उन्हें यह विश्वास दिलाना होगा कि उनकी ज़मीन बची रहेगी।'

'यह तो राजनीति है। रिश्तों में विश्वास सीधी-सच्ची बातों से बनता है।'

'फिर भी, यदि डॉक्टर साहब ज़मीन के मामले में कुछ दिन चुप बैठे रहें, यही ठीक रहेगा।'

प्यारे भाई ने गणपतसिंह से बात की। गुरुजी ने धनपतसिंह के कानों में बात डाली। चार लोगों की समझाइश का परिणाम सुखद रहा। डॉक्टर गोपाल ने ज़मीन पर दबाव बनाना बंद कर दिया। फिर प्यारे भाई पंडित कृष्णगोपाल से मिले।

'गिरिधर का बच्चा बहुत छोटा है अभी।' पंडित ने कहा।

'पंडित जी, इसीलिए अभी ही उचित रहेगा। बच्चा बड़ा हुआ, तब उसका मन नये घर में नहीं लगेगा।'

अंततः परिवार राज़ी हो गया।

मि. फिलौज और मजिस्ट्रेट अकबर हुसैन की मौजूदगी में कानूनी कार्यवाही पूरी हुई। पंडित शालिग्राम और अनोखेलाल ने धार्मिक विधि-विधान संपन्न किया। बच्चा उमा रानी की गोद में दे दिया गया। दत्तक के रूप में अपना पुत्र पाकर उमा प्रसन्न थीं। डॉक्टर गोपाल के मन से एक बोझ उतर गया था। प्यारे भाई और गुरुजी सोच रहे थे कि कितना विचित्र है मनुष्य का स्वभाव।

'जीजी बाई के मुख पर प्रसन्न्ता है। एक अभिलाषा पूर्ण हुई है हमारी भी।' गुरुजी ने कहा।

'हाँ चौबे जी, लेकिन वही प्रसन्नता डॉक्टर साहब के चेहरे पर नहीं है। वह तटस्थ हैं।'

बहुत समय बाद, हवेली में फिर एक उत्सव का माहौल था। पुत्र के जन्म की दूसरी वर्षगांठ थी। नामकरण भी होना था। अब तक वह मुन्ना या लल्ला ही था। रघुनंदन सिंह बहुत खुश थे। सब लोग आमंत्रित थे, हमेशा की तरह। मि. फिलौज, धनपतसिंह और चतुर्भुज तिवारी सपरिवार आए थे। तिवारी जी की सबसे छोटी बिटिया लक्ष्मी बच्चे को घूर रही थीं। इनसे बड़ी गायत्री भी पिछले दिनों चल बसी थी। सबसे बड़ी दो बेटियाँ बुंदेलखंड ब्याही थीं। लग रहा था कि तिवारी जी का परिवार औपचारिकतावश वहाँ है। मन से खुश नहीं है वह। रघुनंदन भी समझ रहे थे। इसलिए वह बड़ी माँ के आस-पास ही थे। सेठ गंगाधर, सेठ जुगलकिशोर, चंदन सेठ और मुंशी मनसुखलाल भी उपस्थित

थे। पर उमा रानी की आँखें जिन्हें खोज रही थीं, वे अब तक नहीं आए थे। चौबे जी, प्यारे भाई और भौजी। तभी नत्थू बा ने आकर सूचना दी 'मेहमान आ गए हैं मालकिन।'

'नत्थू बा मेहमान नहीं हैं। हमारे भैया लोग और भौजी हैं।'

'आप लोगों की ही प्रतीक्षा थी। आइए।'

तीनों ने बच्चे का तिलक किया। डॉक्टर गोपाल का तिलक किया और बच्चे सहित बहिन-बहनोई को उपहार दिए।

प्यारे भाई ने बच्चे का अन्न प्राशन किया।

'चौबे जी, अब बच्चे का नामकरण भी कर दीजिए।' डॉक्टर गोपाल ने कहा।

चौबे जी ने भांजे को गोद में लिया और मंत्रोच्चार के बाद बोले- 'भोलेनाथ की नगरी है और उमा रानी के पुत्र हैं, इसलिए नाम हुआ उमाशंकर।'

तभी ग्वाड़ी की मंडली की ढोलक बज उठी। गाना-बजाना शुरू हुआ।

'ठुमक चलत रामचंद्र बाजत पैजनियाँ...........।'

रघुनंदन ने अपनी बड़ी माँ से भी आग्रह किया। उमा ने भी गाया।

'धूरि भरे अति सोभित श्याम जू......।'

एक कुर्सी पर बैठे थे उमाशंकर। सिर पर गोल टोपी थी। आभूषणों से सज्जित मोहक छवि को उमा रानी और भौजी निहार रही थीं।

जहाँ जिस आँचल में ममता की छांह मिले, बच्चा वहीं खुश रहता है। उमा रानी, उमाशंकर को वह सुख, खुशी और प्यार दे रही थीं। प्यारे भाई और चौबे जी मामा की ममता बरसा रहे थे। रघुनंदन से बड़े भाई और काका का प्यार ही नहीं, सुरक्षा भी मिलती थी। क्योंकि जब से उमाशंकर इस घर में आए, लक्ष्मी ने भी अपना डेरा वहाँ जमा लिया था। जब-तब उमाशंकर के आगे-पीछे घूमतीं, परेशान करती थीं। समझना मुश्किल था कि बाल-सुलभ व्यवहार कर रही हैं या किसी की सिखाई-पढ़ाई राह पर चल रही हैं। उमाशंकर गिरते-पड़ते और रोते तो, रघुनंदन लक्ष्मी को डाँटते थे। किसी न किसी बहाने, कुछ न कुछ होता ही रहता था।

लक्ष्मी के हवेली में रहने से तिवारी परिवार का आना-जाना लगा रहता था। शिकायतें होतीं, रोना-धोना मचता। बहस और झगड़ों के बीच उमाशंकर बड़े हो रहे थे। एक दिन, चौबे जी और प्यारे भाई आए। स्लेट-पेंसिल और अक्षर ज्ञान की किताबें लाए थे वे।

'कल सोमवार है। उमाशंकर की पाटी-पूजा होगी।' प्यारे भाई ने कहा।

'पाटी-पूजा आप ही करेंगे भैयाजी।' उमा ने चौबेजी से कहा।

पर, दूसरे दिन ही लक्ष्मी ने स्लेट तोड़ दी। पुस्तक भी फाड़ दी। रघुनंदन ने देखा और बुरी तरह डाँटा। यह रोते हुए डॉक्टर गोपाल के पास पहुँचीं। गोपाल ने रघुनंदन को समझाया।

'यह बाई साहब स्लेट तोड़ दें, पुस्तक फाड़ दें उमाशंकर की, तब कुछ तो करना ही पड़ेगा और यह एक दिन की बात नहीं है। रोज़ होता है यह। बिना बात बच्चे को मारना, धक्का देना। यह क्या बात हुई। आज पाटी-पूजा होनी थी उसकी।'

'कोई बात नहीं। दूसरी स्लेट और पुस्तक मंगवा लेते हैं।'

कुछ देर बाद ही पाटी-पूजा हुई। रावल जी के स्कूल में दाखिला भी हो गया। लेकिन लक्ष्मी के रवैये में कोई फर्क नहीं आया था। उमा ने भी कई बार शिकायत की कि रसोई में अक्सर दूध गिरा होता है। नाश्ता जूठा करके छूटा होता है। ऐसा कब तक चलेगा।'

'हाँ, ऐसा कब तक चलेगा।' तिवारीजी ने भी कहा एक दिन। और यह भी कह दिया कि 'रघुनंदन को उनके घर भेज दें या हम लक्ष्मी को ले जाते हैं।'

'कोई कहीं नहीं जाएगा। ऐसा करते हैं कि लक्ष्मी को भी दाखिला दिला देते हैं स्कूल में।'

'कैसी बात करते हैं आप। लड़की को स्कूल भेजें?'

'मैं कहीं नहीं जाऊँगी। न स्कूल, न माँ के घर। यह मेरी जीजी का घर हैं। यही रहूँगी मैं।' लक्ष्मी ने तमककर कहा।

इस सबसे बेखबर, उमाशंकर कभी स्लेट तो कभी कागज़ पर कुछ न कुछ बनाते रहते। खिलौने से खेलने की जगह टूटे-फूटे कबाड़ में कुछ टटोलते रहते थे।

'पूत के पाँव पालने में दिख रहे हैं।' उमा खुश होकर कहतीं।

निजातपुरा, कोतवाली मार्ग पर तीन मंज़िला मकान बन चुका था। दो मंज़िल रिहायशी, तीसरी मंजिल भंडार घर। हवेली में तलघर, यहाँ तिमंजला। ऊपर-नीचे चार-चार कमरे।

दो बड़े हॉल। दो बरामदे। दूसरी मंजिल पर सड़क की तरफ का एक कमरा तीन खिड़कियों वाला। हवादार। पीछे की ओर छत। एक भव्य बंगला बना था। अस्पताल का नया भवन पहले ही तैयार हो चुका था। नदी मार्ग का अस्पताल भवन सेठ जुगलकिशोर ने खरीद लिया था। डॉक्टर धनपतसिंह का निवास वहीं था। नये अस्पताल भवन के सामने प्रसूति गृह बन रहा था। शिलान्यास के अवसर पर महाराजा सिंधिया आए थे। माधव कॉलेज के नये भवन का आश्वासन देकर गए थे। महाराज का वापस ग्वालियर पहुँचकर ही देहांत हो गया था।

इन्हीं दिनों प्यारे भाई और गुरुजी हरप्रसाद चौबे को आखिरी बार देखा गया था। प्यारे भाई बुंदेलखंड लौट गए थे। चौबेजी कहाँ गए, कोई नहीं जानता। बातें होती रहती थीं उनकी। कोई कहता कि तात्या की तरह ही अदृश्य हो गए। किसी ने कहा कि वह सन्यासी हो गए हैं। फिर खबर आई कि प्यारे भाई नहीं रहे। बड़े भाई पहले ही जा चुके थे। भौजी अकेली रह गई थीं। लड़कियाँ सुसराल में, लड़के झाँसी बस गए। उमा के लिए एक बार फिर खालीपन पसर गया था। गोपाल जी से बहुत कहा कि एक बार गाँव हो आएँ। उन्हें कभी फुरसत नहीं रही। धर्मदास, जगजीवन, गोवर्धन पंडित और भोला महाराज के जाने से जो सूनापन घिर आया था, उसका अहसास गहरा था। अब उमाशंकर ही एक सहारा हैं। लेकिन यह भी सोचतीं कि अब जीवन कितना शेष है, पता नहीं।

प्यारे भाई ने विदा होते समय कहा था 'एक बार उमाशंकर को साथ लेकर नुनसाई, जखौली और लौना गाँव अवश्य आना।' लेकिन अब वही नहीं हैं वहाँ। गुरुजी का पता नहीं। किसके पास जाएँ?

एक दिन, लक्ष्मी चुपचाप अपने पिता के घर चली गई। क्यों और कैसे हुआ यह, उमा समझ नहीं पाईं। डॉक्टर गोपाल से पूछा। वह खामोश रहे।

भोला महाराज, गोवर्धन, भागीरथ और खान साहबान के गुज़रने के बाद इस अशक्त जनपद को जगाने का काम चौबे गुरुजी ने रुकने नहीं दिया था। लेकिन अब कोई नहीं है यहाँ। रघुनंदन और उनके साथी दिशाहीन हो रहे थे। सेठ गंगाधर और मुंशीजी तो हरकारे थे। अपने मूल व्यवसाय में लौट गए।

'समय हमेशा एक समान नहीं रहता है। बदलाव आएँगे और नये लोग, नई दिशा देंगे।' चौबे गुरुजी कहा करते थे।

फिर बदल रहा था शहर। सर दिनकर राव ग्वालियर स्टेट में बड़े पद पर थे। उन्हें फिलौज और जॉनसन का सहयोग मिला। उज्जैन में स्कूल-कॉलेज खुले। पूना से विद्वान आते रहे। नारायण भार्गव, पाटणकर, डेकणे, कुलकर्णी और जगमोहनलाल पुनर्जागरण की प्रेरणा बने। युवाओं में जोश पैदा हुआ। पर, डॉक्टर गोपाल जहाँ थे, वहीं रहे। इन विद्वानों के सामीप्य से भी उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता। तिवारी परिवार उनके गुण गाता था। वह इसी में खुश थे।

बदलते हुए शहर में उमाशंकर बड़े हो रहे थे। रावलजी के स्कूल के बाद उन्हें वर्नाक्यूलर स्कूल में दाखिला मिला। बेपरवाह डॉक्टर गोपाल के मन में चंचलता का ज्वार फिर उठ रहा था। पंडित चतुर्भुज तिवारी, शालिग्राम, अनोखेलाल और घाटी-बस्ती के कुछ पुराने लोगों की बैठकें शुरू हो गई थीं।

'डॉक्टर साहब अपने वारिस की बात भूल गए हैं आप शायद।' तिवारी जी ने पुराना राग फिर छेड़ दिया था।

'जानकी पंडित को दिए हुए वचन तो याद हैं ना।' शालिग्राम ने कहा।

'गोपाल जी, आपने जन्म-पत्री पानी में बहा दी है, लेकिन उसके गणित फलित तो अपना काम करेंगे ही।' अनोखेलाल कह रहे थे।

'जानकी पंडित की भविष्यवाणी के अनुसार अभी तीसरा विवाह शेष है।' शालिग्राम ने उकसाया।

'आप लोग भूल रहे हैं शायद कुछ। हमारा एक बेटा है और वह नौ बरस का हो रहा है। अब उसका विवाह होना है, हमारा नहीं।'

'उनका विवाह भी हो जाएगा। अभी तो अपने विवाह की सोचें।'

'अनोखेलाल जी, इस उम्र में हमसे ब्याह कौन करेगा? आप किसी विधवा या परित्यक्ता के कल्याण की बात तो नहीं सोच रहे हैं?'

'नहीं, हम कुंवारी कन्या की बात कर रहे हैं। आपकी देखी हुई है। माँ-बाप सहमत हैं उनके। आपकी सहमति चाहिए।'

'किसकी बात कर रहे हैं आप?'

'अपनी लक्ष्मी की बात कर रहे हैं, डॉक्टर साहब। बस, हाँ कर दे आप।' तिवारी जी ने कहा।

'कुछ समय दीजिए हमें। उमा रानी से भी पूछना होगा।'

'अब सोचने और पूछने की आवश्यकता ही नहीं है।'

'गोपाल जी, समय बहुत निकल गया है। आपकी पत्नी के गुज़रने के बाद ही हमने आपसे निवेदन किया था। डॉक्टर साहब, दत्तक पुत्र मन की शांति दे सकता है। लेकिन धर्म और शास्त्र के नियम नहीं बदले जा सकते। अपना खून ही मुक्ति देता है। पुरखों की तृप्ति भी वही कर सकता है। आप अपने पुरखों को दिया वचन पूरा नहीं करेंगे तो उनकी आत्मा को शांति नहीं मिलेगी। फिर, आप जैसा चाहें।' शालिग्राम ने आखिरी चाल चली।

गोपाल जी सिर हिला रहे थे।

'तिवारी जी, डॉक्टर साहब सहमत हैं। आप तैयारियाँ करें।'

'पंडित जी, बापूजी को दिया वचन हमें याद है। उनकी आत्मा की शांति के लिए हम कुछ भी करने को तत्पर हैं।'

सभी को विदा कर डॉक्टर गोपाल ऊपर जाने के लिए आगे बढ़े ही थे कि सामने उमा आकर खड़ी हो गई।

'तो अब बेटे के सामने तीसरा ब्याह रचाएँगे। बाप की बारात में बेटा जाएगा बूढ़ी माँ की सौत लाने।'

'बेटे की बारात में बाप भी जाएगा।'

'बात मत बदलिए। यह सब शोभा देता है। लोग क्या कहेंगे?'

'लोगों की छोड़िए। अपनी बात कहिए। हम बापूजी को दिया वचन ही पूरा कर रहे हैं।'

'और हमको दिए सात वचन भूल गए।'

'आप बात न बढ़ाएँ।'

'बात आपने ही शुरू की है और आप ही बढ़ा रहे हैं। हमें जवाब नहीं मिल रहा है।'

'जवाब यह है कि आप उमाशंकर के लिए सोचें।'

'आप नहीं सोचेंगे। आप सिर्फ अपने बारे में सोचते थे और सोचते हैं।'

'देखिए......'

'चलिए हटिए रास्ते से। देख लिया हमने सब।' बात काटते हुए उमा बोलीं। सामने से उमाशंकर आ रहे थे।

बात उमाशंकर के ब्याह की भी चल रही थी। लेकिन विवाह पहले पिता ने रचाया। कोई नई बात नहीं थी, फिर भी लोग आश्चर्य से देख रहे थे। 'अट्ठावन बरस के वृद्ध दूल्हा बने हुए हैं, नौ बरस का बेटा बाराती है और तेरह बरस की दुल्हन।' उमाशंकर भी चकित थे। कुछ अनमने थे। वही लड़की फिर आ गई थी घर में जिसने किताबें फाड़ी थीं, स्लेट तोड़ी थी और मार-पीट की थी। अगवानी करते हुए उमा सोच रही थीं कि यह दिन भी देखना था। पर आज उन्हें लक्ष्मी का चुपचाप पिता के घर लौट जाने का अर्थ कुछ-कुछ समझ आ रहा था।

कुछ दिन बाद उमाशंकर दूल्हा बने। बारात लेकर, ग्राम सेरसा बुंदेलखंड पहुँचे डॉक्टर गोपाल। बलभद्र तिवारी की पाँच वर्षीय 'रानी बेटी' से उमाशंकर का विवाह संपन्न हुआ। बाल-विवाह। बेमेल विवाह और बाल-विवाह, दोनों के साक्षी बने थे रघुनंदन सिंह। सोच रहे थे कि किस युग में हैं हम। पाप और अपराध हो रहे हैं कोई मनो-मालिन्य नहीं। दुख-चिंता नहीं। पश्चाताप नहीं। वृद्ध वर प्रसन्न है बालिका वधू से ब्याह कर। बालिका वधू प्रसन्न है बूढ़े का हाथ थाम कर। क्योंकि वह हवेली में राज करेगी अब। पर यहाँ, उमाशंकर और रानी बेटी। दोनों बच्चे हैं। कुछ सोच पाने की स्थिति में नहीं हैं दोनों। रानी बेटी छोटी हैं। निश्चय हुआ कि गौना कुछ वर्षों बाद होगा। उमाशंकर भी पढ़ रहे थे अभी।

तिवारी जी के परिवार का आना-जाना फिर शुरू हो गया था। लक्ष्मी, अब जीजी के घर में नहीं, अपने घर में थीं। मालकिन। इन्हें समझना मुश्किल था। शंकालू और झगड़ालू थीं। न कुछ सीखी थीं, न सीखना चाहती थीं। अब उनके सलाहकार उनके छुटकन भैया गगन बिहारी थे।

'छोटी, पकड़ मज़बूत करो। बड़ी और उनके बेटे के हाथ कुछ न जाने पाए।'

'भैया, देखते जाओ। कैसे नचाते हैं दोनों को। चिंता हमें इनकी है। जब देखो तब इंदौर भागते रहते हैं। वहाँ क्या है ऐसा?'

'छोटी, वहाँ भी मकान हैं, खेती-बाड़ी है। हिसाब लेते होंगे।'

'हर दूसरे-तीसरे दिन। कुछ और ही बात है भैया।'

'अब उधर की छोड़ो और इधर की सोचो।'

बरस-डेढ़ बरस बाद वह अवसर भी आ गया। आँधी-तूफान की तरह।

लक्ष्मी देवी ने एक पुत्र को जन्म दिया। लेकिन तीसरे ही दिन उसकी मौत हो गई। तिवारी जी, तिवारिन जू, गगन बिहारी और लक्ष्मी, मिलकर हाय-तौबा मचा रहे थे। 'हे भगवान, क्या हो रहा है यह। बिटिया को खाया, पहले पाँच खाए और अब फिर खा लिया एक बच्चा। कब पेट भरेगा। कब तक चलेगा यह जादू-टोना। कोई तो करो कुछ।'

'कोई जादू टोना नहीं है। समय-पूर्व प्रसव था। बच्चा पूरी तरह विकसित नहीं हुआ था। माँ ने भी परहेज़ नहीं किए। उसी का परिणाम है यह।' डॉक्टर गोपाल ने समझाया। लेकिन कुछ असर नहीं हुआ उन पर। डॉक्टर धनपतसिंह भी चिढ़ गए थे। बोले- 'नादान से दोस्ती जी का जंजाल।'

उमा चिंतित थीं। कैसे रहें यहाँ? कुछ तो करना होगा।

'हम माँ-बेटे दूसरे मकान में चले जाते हैं। साथ रहना संभव नहीं अब।'

'जैसा आप ठीक समझें।'

उमा रानी और उमाशंकर नये मकान में रहने चले गए। सामान पहुंचाने में नत्थू बा और नानी माँ ने मदद की। दोनों ने ऊपर की मंज़िल में रहना शुरू कर दिया था। नीचे का हॉल और बाहर के दो कमरे डॉक्टर साहब के उपयोग में आते थे। निजी कार्यालय, परामर्श-कक्ष और बैठक कक्ष के रूप में। ग्वाड़ी शुरू होने से पहले एक गैरेजनुमा कमरा था, जहाँ उनका घोड़ा और घोड़ा-गाड़ी रहती थी। उन्होंने यहाँ एक गाय भी बँधवा दी थी और एक सेवक ठाकुरदास लगा दिया।

समय बीतने लगा। लेकिन अलगाव की खबर इन्दौर तक पहुँच गई थी। एक दिन, पंडित कृष्णगोपाल आए मिलने।

'डॉक्टर साहब, यदि आपको हमारे बच्चे के पालन-पोषण में कोई असुविधा हो तो स्पष्ट करें। हम आज ही उसे यहाँ से ले जाएँगे।'

'नहीं-नहीं। ऐसा कुछ नहीं है। इस मकान का भी उपयोग हो, यही सोचकर माँ-बेटा यहाँ रहते हैं। फिर हमारा काम-काज भी यहाँ ही होता है। आप चिंता न करें।'

पंडित कृष्णगोपाल संतुष्ट होकर चले गए।

लक्ष्मी देवी फिर माँ बनीं। इस बार कन्या-जन्म हुआ। गगन बिहारी ने नामकरण किया। गंगा बाई। लक्ष्मी देवी उदास थीं। गगन बिहारी और तिवारी जी ने बहुत समझाया। लेकिन लक्ष्मी के चेहरे पर प्रसन्नता नहीं आई। हारकर डॉक्टर गोपाल ने किसी भी उत्सव के आयोजन पर विराम लगा दिया। दूसरे दिन ही डॉक्टर गोपाल इन्दौर चले गए। लक्ष्मी देवी घाटी-बस्ती चली गई कुछ दिनों के लिए।

गंगा बाई के जन्म के साथ ही उन्नसवीं सदी समाप्त हुई। बीसवीं सदी की शुरूआत हुई

बीसवीं सदी इस परिवार के लिए ही नहीं, बल्कि नगर, देश और समाज के लिए भी परिवर्तनकारी सिद्ध होने वाली थी। चौबे गुरुजी अक्सर कहा करते थे यही बातें। शालिग्राम पंडित भी भविष्यवाणी कर रहे थे। डॉक्टर गोपाल शालिग्राम के अंध-भक्त हो रहे थे। उमा और उमाशंकर के प्रति सभी कर्तव्यों को भूलकर अपनी ही दुनिया में रम गए थे। अब वे आसक्ति से भरी-पूरी ज़िन्दगी के रास्ते पर चल रहे थे।

***

भाग-17

बीसवीं सदी थी। साल दूसरा, उन्नीस सौ दो। नगर को सौगात मिली तो मुखिया परिवार में भी दोहरी खुशी के अवसर आएं। शहर और घर में उत्सव का माहौल था। श्रीमंत माधवराव सिंधिया उज्जैन आए थे। कॉलेज भवन का लोकार्पण का आयोजन हुआ। ढोल-ढमाके के साथ महाराजा की शोभा-यात्रा निकली। प्रिंसीपल ढेकणे के साथ डॉक्टर गोपालप्रसाद और सूबा साहब ने उनकी अगवानी की। ढेकणे साहब गणित के विद्वान और बाल गंगाधर तिलक के सहपाठी थे। सिंधिया महाराज ने उनका भरपूर उपयोग किया था। सिंहस्थ मेले में विशेष अधिकारी, प्लैग ऑफीसर और अब प्रिंसीपल। 'एजूकेशन की रियासत में होने की मंशा यह है कि बी.ए., एम.ए. वगैरह हायर एजूकेशन की डिग्री पाए हुए बच्चों से स्टेट के कारोबार में मदद मिले और रियासत आगे बढ़े। आज के खुशगवार मौके पर बिल्डिंग खोली जाती है।' महाराजा सिंधिया ने भाषण देते हुए कहा था।

मुखिया परिवार में खुशियों के मौके हवेली में भी थे और बंगले में भी। उमाशंकर ने हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की थी और लक्ष्मी देवी ने पुत्र को जन्म दिया था। माँ-बेटे रास्ता देख रहे थे कि डॉक्टर गोपाल आएँगे। पर वह हवेली में मगन थे। उमाशंकर अपनी सफलता का समाचार देने स्वयं गए थे हवेली। लेकिन पुत्र-प्राप्ति की सूचना उन्हें नानी माँ से मिली थी। ग्वाड़ी में मिठाई वितरण डॉक्टर गोपाल और तिवारी जी कर रहे थे। उमाशंकर की सफलता पर यही काम नत्थू बा कर रहे थे।

उमाशंकर को इंजीनियरिंग कॉलेज के डिप्लोमा पाठ्यक्रम में प्रवेश मिल गया था। तब भी गोपाल जी को फुरसत नहीं थी कि ऐसे समय उनके साथ रहते। वह अपने घर और अपने काम में ही व्यस्त रहे।

माँ-बेटे लेटे हुए थे रात में, तीन खिड़की वाले कमरे में। माँ, कुछ इस तरह बालों में हाथ फेर रही थीं, जैसे वह छोटे से बालक हों। बोले, 'माँ तुम सो जाओ।' माँ बाल सहलाते गा रही थीं - 'पौढ़ि रहो घनश्याम, बलैयाँ ले हों, पौढ़ि रहो घनश्याम। अतिश्रम भयो बन गौवें चरावत, घौस परत है घाम। बलैयाँ ले हों, पौढ़ि रहो घनश्याम।'

सुबह उमाशंकर ग्वालियर चले गए थे। उनके जाने से पहले सेवक ठाकुरदास गए थे हवेली, डॉक्टर साहब को समाचार देने। वह मिले नहीं, ऐसा कहा सेवक ने। जाने के बाद उमारानी ने नत्थू बा को हवेली भेजा। नत्थू बा ने डॉक्टर गोपाल को समाचार दिया, तब वह अपने पुत्र को गोद में लिए झुला रहे थे। गंगा बेटी खेल रही थीं पास में ही। नत्थू बा की हिम्मत नहीं हुई खबर दोहराने की।

'जाओ सुन लिया है।' लक्ष्मी देवी ने कहा।

उमाशंकर जाने से पहले पिता से मिलना चाहते थे। हवेली जाकर वह कमरा देखना चाहते थे, जहाँ बचपन बीता था। माँ ने रोक लिया।

'जाते-जाते मन क्यों खराब करना चाहते हो।'

'एक बार मिलना चाहते थे।'

'किसलिए? रोज़ ही निकलते वह यहाँ से। कभी ऊपर नहीं आए। फिर लक्ष्मी बहू और उनके परिवार वाले जब नहीं चाहते कि हम वहाँ हवेली आएँ, उन बच्चों से मिलें। फिर हठ क्यों करते हो। तुम्हारे पिता को असुविधा ही होगी ऐसे में। खुशी-खुशी जाओ बेटा।'

उमाशंकर जाते समय नीचे से तीन खिड़कियों वाले कमरे को यूँ देख रहे थे, जैसे वहाँ आना ही नहीं होगा अब।

एक शुरूआत थी वह। रईसजादे बाप और रास्ता टटोलते हुए बेटे के बीच दूरियाँ बढ़ रही थीं। रूढ़ियों से जकड़े हुए बाप की खुले दिमाग वाले बेटे से एक अदृश्य लड़ाई थी और आग में घी डालने के लिए चतुर्भुज तिवारी, शालिग्राम पंडित और लक्ष्मी देवी के साथ गगन बिहारी नये मंत्रोच्चार कर रहे थे।

'पता नहीं कौन जात-कुजात को उठा लाए हैं, उस बाग़ी चौबे की सलाह से।' लक्ष्मी देवी भी भुनभुनाती रहती थीं। ग्वाड़ी चुपचाप सुनती रहती। लेकिन बच्चे बड़े हो रहे थे और मन में गाँठ बाँध रहे थे। उमा रानी किससे कहतीं अपना दुख।

सिंहस्थ मेला के बाद महामारी से जूझता शहर अपनी पहचान पाने की कोशिश कर रहा था। इस पहचान के बीच कितनी ही शख्सियतें विदा ले चुकी थीं। सेठ गंगाधर और मुंशी मनसुखलाल की मृत्यु के बाद उनका काम सेठ धनीराम और मुंशी सदासुखलाल

ने संभाल लिया था। मुखिया परिवार से उनके संबंध पूर्ववत रहे। लेकिन परिवार के लिए बड़ी घटना थी डॉक्टर गोपाल प्रसाद की सेवानिवृत्ति।

एक बड़ा उत्सव तो होना ही था। अंग्रेज़ों के कृपा पात्र, सिंधिया, होल्कर के प्रिय और अमलेटा, सैलाना, जावरा, रतलाम, माँधाता और अलीराजपुर रियासतों के खास दोस्तों में शुमार गोपालप्रसाद मुखिया की विदाई दो-चार तारीफ के बोलों और हार-फूल से हो जाए, बस। ऐसा कैसे हो सकता था। सेठ-साहूकारों और ठिकानेदारों ने बैंड बाजे बजवाए। बड़े-बड़े रईस जिन्हें आना था, वे आए। जिन्हें बुलाया गया, वे आए। हवेली पर घाटी-बस्ती के रिश्तेदारों की भीड़ थी। बंगला सूना था। दरबारी लोगों का हुजूम सब हवेली में। माइकल फिलौज, जोसेफ फिलौज, अगस्टीन फिलौज। सेठ जुगलकिशोर और सेठ चंदनलाल। और वे सारे जहाँ के पाहुन डॉक्टर गोपाल। और जिनसे अदृश्य और अपरिभाषित-सा रिश्ता था उनका, वे सभी आए। तिवारी जी का परिवार और धनपतसिंह-गणपतसिंह का परिवार।

रघुनंदन सिंह, जो अब नये बदलाव की खुमारी से बाहर आकर फिरंगियों की दासता को पवित्र मानकर स्वीकार कर चुके थे। उमा देख रही थीं और सोच रही थीं कि यहीं कहीं गुरुजी और प्यारे भाई की आत्मा भटक रही होगी।

'डॉक्टर साहब को पूरी पेंशन दी जाए।' 'डॉक्टर साहब को क्या कमी है। पचहत्तर फीसदी पेंशन ही काफी है।' डॉक्टर गोपाल ने कहा 'सरकार, न भी दें तो कोई हर्ज नहीं।' लेकिन ये तो रईसों की गप-शप थी। और भी अजब-गजब मुद्दे थे रोज़ाना की गप-शप में।

'श्रीमंत ने शहर की सुंदरता में चार चाँद लगा दिए हैं। सिर उठाता खड़ा है घंटाघर नये शहर में।' सेठ जुगलकिशोर कहते।

'सही है। फिर वह देखो, इन्दौर द्वार से देवास द्वार, नज़रबाग के बगल से होती हुई छुक छुक रेल गाड़ी। क्या तो दृश्य होता है।' सेठ चन्दनमल भी पीछे नहीं रहते।

'हाँ भाई, कोठी महल, बायजा बाई की हवेली, फ्रीगंज का पुल, क्या शान है शहर की।' डॉक्टर गोपाल कहते।

'पर अंग्रेज़ सरकार का योगदान भी कम नहीं है। अब तो सरकार ने अस्पताल भी ग्वालियर राज्य को दे दिया है।' डॉ. धनपतसिंह ने कहा।

लेकिन इस गप-शप में साधन-विहीन प्रजा के कष्टों की ओर किसी का ध्यान नहीं था। प्लेग में कितने मरे। हैजा में कितने। नई-पुरानी बीमारी-महामारी ने शहर को वहाँ पहुंचा दिया। इन्दौर-ग्वालियर में, पूना-बंबई में और कानपुर-कालसी-महोबा में लाठी-गोली से कितने मारे गए। कोई गिनती नहीं। बगावत कर रहे थे। यह कहते थे हिन्दुस्तानी रईस। डॉ. गोपाल और डॉ. धनपत के ठहाकों पर टिप्पणी करने के लिए अब कोई भोला महाराज या गोवर्धन पंडित नहीं रहा। कोई जगजीवन और हरप्रसाद गुरुजी नहीं हैं। जानकी पंडित की विचारधारा फल-फूल रही है।

उमा रानी क्या कर रही हैं। उमाशंकर कहाँ हैं, क्या कर रहे हैं, यह सोचने की आज भी फुरसत नहीं डॉ. गोपाल को। वह अपनी वंश-वृद्धि पर प्रसन्न हो रहे थे। अब वह तीन पुत्री और एक पुत्र के पिता बन चुके थे। उमाशंकर का पत्र टेबल पर रखा था और वह अपने पुत्र के साथ खेल में व्यस्त थे। गगनबिहारी ने आकर याद दिलाया तो बोले 'पढ़ो क्या लिखा है।'

'लिखा है कि कलकत्ता पहुँच गए हैं उमाशंकर।'

'क्यों?'

'ग्वालियर में पढ़ाई पूरी हुई। कलकत्ता नौकरी पर गए हैं। वहाँ रहकर होम्योपैथी की पढ़ाई भी कर रहे हैं। लिखा है, साल के आखिर तक आएँगे।'

'नत्थू से कहना कि उमा रानी तक समाचार भिजवा दे।'

वह फिर बच्चों में व्यस्त हो गए।

उत्तर और मध्य भारत में शीत लहर चल रही थी। पर, कलकत्ता में ठंड नहीं थी। उमाशंकर दफ्तर से निकलकर घर की ओर जा रहे थे।

'उज्जैन में इन दिनों कड़ाके की ठंड होगी।' कार्यालयीन मित्र पांडे से उन्होंने कहा।

'ठंड तो हमारे इलाहाबाद में भी ज़बरदस्त होगी। यहाँ मौसम अच्छा है।'

'फिर भी आप अक्सर बीमार हो जाते हैं, पांडे जी।'

'और आपकी दवाई से ठीक भी हो जाते हैं। आपका डॉक्टरी का रिज़ल्ट कब तक आएगा।'

'किसी भी दिन।'

'डॉक्टरी करेंगे या यहीं लोक निर्माण विभाग की नौकरी।'

'नौकरी नहीं छोड़ना है पंडित जी। डॉक्टरी पैसा बनाने के लिए नहीं पढ़ी है। यह तो मानव-सेवा है।'

'आपके पिताजी भी डॉक्टर हैं न।'

'हाँ। पर वह एलोपैथी के हैं। हमने होम्योपैथी पढ़ी है। हम भी एलोपैथी पढ़ना चाहते थे। वह नहीं माने। शायद ज़्यादा पैसा खर्च नहीं करना चाहते थे हम पर।'

मन की पीड़ा जुबान पर आ ही जाती थी। दोनों मित्र अपनी ऐसी बातों से दुख बाँटते रहते थे। दो-तीन दिनों में ही डाक से डिग्री प्राप्त हो गई थी। परीक्षा फल और प्रमाण-पत्र जर्मनी से आया था।

'तो अब आप हुए, डॉक्टर उमाशंकर मुखिया।' पांडे जी ने कहा।

'नहीं मित्र। हम आपसे कह चुके हैं कि यह एक सेवा-कार्य है। नाम के आगे डॉक्टर लगाना हमारा उद्देश्य नहीं है।'

होम्योपैथी के डॉक्टर के साथ ही कलकत्ता से रवानगी का आदेश भी मिल गया। कोटा शहर में नियुक्ति हुई थी। पाँडे जी का साथ छूट रहा था। बस इतना ही साथ था।

नया शहर, नया राज्य और नया परिवेश, चल पड़े उमाशंकर फिर एक अजनबी शहर को अपना बनाने।

डॉक्टर गोपाल ने पत्र लिखकर पूछा था कि कब आ रहे हो। बहू का गौना करवाना है। उमाशंकर कोटा पहुंचे। कुछ दिन ठहरकर अवकाश लेकर उज्जैन रवाना हो गए। क्रिसमस, 25 दिसम्बर 1910 को वह उज्जैन पहुँच गए।

बदला-बदला सा लग रहा था शहर। कुछ ऐसा कि तबीयत खुश हो गई। पर कलकत्ता जैसा तो बिल्कुल नहीं। हाँ कलकत्ता की गलियों से उज्जैन की गलियाँ बेहतर लग रही थीं। सड़क के किनारे से ही रेल की पटरियाँ और भागती रेलगाड़ी को वह देख रहे थे। बरसों बाद घोड़ागाड़ी पर पिता के साथ नगर-भ्रमण पर भी निकले थे उमाशंकर। सड़क किनारे बिजली के खंबे गाड़े जा रहे थे। नई सड़क पर पावर हाउस बन गया था। डीज़ल

से संचालित किया जाएगा। घर-घर पानी की सप्लाई करने की योजना भी बन रही थी। पाइप लाइन डाली जा रही थी। घरों में नल की टोटियाँ लगना शुरू हो चुका था। बहुत कुछ नया-नया लग रहा था।

दो-चार दिन रहकर उमाशंकर कोटा चले गए। एक रजवाड़े से दूसरे रजवाड़े पहुँचकर कुछ खास बदलाव नज़र नहीं आ रहा था। घर-द्वार, सड़कें, इमारतें और खान-पान सब एक जैसा ही था। एक दिन खबर मिलीं कि लक्ष्मी देवी ने एक ओर पुत्र को जन्म दिया है। नामकरण भी हो गया है। बड़े थे रामदास और छोटे प्रेमदास। चार बेटियाँ। गंगा बाई, जमुना बाई, कृष्णा बाई और सरजू बाई। डॉ. गोपाल ने फिर लिखा था कि 'तुम आए और चले गए। गौना कब करवाना है।'

उमाशंकर ने जवाब दिया 'मेरा आना संभव नहीं है। गौना आप करा लो। मैं रीवा जा रहा हूँ। वहाँ ड्यूटी ज्वाइन करनी है।'

'तुम्हारी माँ का आग्रह है कि कुछ दिनों के लिए आ जाओ।' डॉक्टर गोपाल ने फिर लिखा।

उमाशंकर उज्जैन आए। वह गौना करवाने डॉ. गोपाल, कृष्ण बिहारी, गगन बिहारी और रघुनंदन के साथ रवाना हुए। गौना-विदा करवाकर उमाशंकर अपनी पत्नी को साथ लेकर ही रीवा के लिए रवाना हुए। उमा रानी ने नई-नई गृहस्थी के लिए जरूरी सामान के साथ पुत्र और पुत्र-वधु को विदा किया।

उमा रानी देर तक, दूर जाते हुए पुत्र को देखती रहीं। डॉ. गोपाल इससे बेखबर रामदास और प्रेमदास में खो गए।

रीवा में मुखिया-परिवार की दत्तक कथा का नया पृष्ठ खुल रहा था। एक नई पीढ़ी थी। एक नया सृजन और एक नया संसार दस्तक दे रहा था। रीवा में पंडित उमाशंकर और रानी बेटी का नया जीवन शुरू हुआ।

सालों बाद जब अपने ही शहर लौटा था, तब मुझे एक ही बात परेशान करती थी। आज भी लोग हाथ में डिब्बा, लोटा या छोटी बाल्टी लिए दूसरे के घरों के पिछवाड़े जा रहे हैं। एक सदी बीतने में दो बरस ही बाकी हैं। तब भी यह हालत है। बाबूजी से कहा था तो वह हँस दिए थे।

'तब यह सोचो कि अपने जाने पहचाने घर-शहर को छोड़कर अनजानी जगह पर पहुँचने पर कैसा लगता होगा?'

'मैं तो सिर्फ यह कह रहा था कि आज भी यहाँ लोगों की आदतें नहीं बदली हैं। मैं लगभग तीस बरस बाद लौटा हूँ यहाँ और हमें आज़ाद हुए साठ बरस हो रहे हैं। पर हम यहीं ठहरे हुए हैं सोच के स्तर पर।'

'अरे भाई, हम तो नब्बे-सौ बरस पहले की बात कर रहे हैं।'

बाबूजी शायद दादाजी का समय याद कर रहे हैं। सोचा, माँ नहीं हैं आज। होतीं तो कहतीं तुम बोलते बहुत हो और असल बात पीछे छूट जाती हैं। बाबूजी जो कुछ कहते हैं उसमें तुम्हारे सवालों के जवाब ही छुपे रहते हैं।

याद आ रहे थे वे दिन जब वह बताया करते थे दादाजी के बाहर रहने के किस्से। कभी-कभी माँ भी जोड़ देती थीं कुछ बातें जो उन्होंने अम्मा, दादी और छोटी दादी से सुनीं थीं। माँ के जाने के बाद भी बाबूजी बता रहे थे कलकत्ता, कोटा, रीवा और बनारस के किस्से। कैसे थे वे लोग, कैसे थे वे दिन। काश, दादाजी आज होते!

रीवा में उमाशंकर का नया जीवन शुरू हुआ। खुला खुला घर मिला। घर के बाहर उन्होंने एक बोर्ड टाँगा था, जिस पर लिखा था 'धर्मार्थ दवाखाना। कार्यालय में वह एक इंजीनियर थे और घर पर एक डॉक्टर। सेवा भावना के कारण वह बहुत जल्दी लोकप्रिय हो गए थे। रीवा रियासत में उनका गुणगान होता था।

बचपन से आज तक, पिता के दरवाज़े कभी भीड़ जुड़ते नहीं देखी थी। वहाँ दरबार सजता था। बैठकें होती थीं। रईसों की दावतें होती थीं। चेहरे नहीं, मुखौटे जुड़ते थे। यहां जरूरतमंदों की कतारें लगतीं। भूखे को भोजन, बीमार को दवा, हर भटकते हुए चिंतित को परामर्श और सहायता निःशुल्क मिलती। रईस आते हैं लेकन दरबार जनता का सजता। देशभक्ति की शिक्षा देने में भी आगे रहते पंडित उमाशंकर।

परिवार भी बढ़ रहा था। सबसे पहले कन्या का जन्म हुआ। माँ, रानी बेटी ने नाम रखा राजकुमारी। दो बरस बाद एक पुत्र जन्मा। नामकरण किया पिता ने भानुप्रकाश। दोनों के जन्म पर एक समान उत्सव हुआ। गाँव, बुंदेलखंड से पंडित बलभद्र तिवारी अपने एक पुत्र रामशरण के साथ पहुंचे थे। नाना और मामा से उत्सव में रौनक थी। लेकिन बच्चों

के दादा डॉक्टर गोपाल को इस अवसर पर भी फुरसत नहीं मिली। उमाशंकर भूल गए थे, लेकिन रानी बेटी से रहा नहीं गया।

'आपने पत्र तो लिखा था न बापूजी को?' उन्होंने पूछा।

'तुम्हें शंका क्यों हो रही है।'

'उज्जैन से कोई नहीं आया, इसीलिए पूछा है। माँ साहब ही आ जातीं।'

'किसके साथ आती माँ?'

'क्यों, रामदास भैया नहीं आ सकते थे।'

'वह क्यों आएँगे। सोचो भला। बापूजी हर पत्र में उनकी खुराफातों के विषय में लिखते हैं। वह प्रेमदास को ही चैन नहीं लेने देते। वहाँ का हाल तुम्हें मालूम है न। हमारी विमाता उन्हें आने देतीं यहाँ।'

विश्व युद्ध के दिन थे। भारतीय सैनिक अंग्रेज़ों की ओर से लड़ रहे थे। वही अंग्रेज भारत में भारतीयों को प्रताड़ित अपमानित कर रहे थे। जलियाँवाला बाग में निहत्थों पर गोलियाँ बरस रही थीं, तभी डॉक्टर गोपालप्रसाद रीवा पहुँचे। उमाशंकर रीवा से काशी जा रहे थे। काशी नरेश का विशेष अनुरोध था उनके लिए। इसलिए डॉक्टर गोपाल बहू और बच्चों को लिवाने आए थे। पर रानी बेटी काशी ही जाना चाहती थीं। इसलिए बच्चों का उज्जैन जाना तय हुआ।

'काशी ही रहना होगा अब या वापस रीवा आओगे?'

'दो-तीन बरस के लिए ही जा रहे हैं। फिर रीवा ही लौटना है।'

'रामदास को लाहौर भेजा था। पर उनका मन ही नहीं लगा वहाँ। पढ़ाई पूरी किये बिना ही लौट आए।'

'करना क्या चाहते हैं वह।'

'पता नहीं। अभी चार बरस पहले बाढ़ आई थी। गोपाल मंदिर के आगे, एक संकरी सी गली में, मगर फँस गया था। कोई मतलब था ऐसे में वहाँ जाने का पर समझते नहीं। बस हिसाब-किताब, बहीखाता देखते रहते हैं।'

'तो कहीं किसी सेठ के यहाँ मुनीम रखवा दें। मन लग जाएगा।'

'नहीं, सोच रहे हैं कि अब हमारा ही काम संभाल लें। हिसाब-किताब का। फिर सोच रहे हैं, ब्याह भी कर दें।'

'ठीक है। माँ साहब भी जाना चाहती हैं गाँव बुंदेलखंड। बता रही थीं पिछली बार।'

'हाँ। हम सोच रहे हैं कि साथ ही ले जाएँगे उन्हें। रामदास का ब्याह होने से पहले जाना चाहते हैं।'

दूसरे ही दिन उमाशंकर और रानी बेटी बनारस चले गए। डॉ. गोपाल दोनों बच्चों को लेकर उज्जैन लौट गए। पर कोई नहीं जानता था कि आगे क्या होने वाला है।

उमा रानी प्रसन्न थीं कि उनका पोता और पोती उनके साथ हैं। सरजू बाई और प्रेमदास भी खुश हुए। उन्हें जब भी अवसर मिलता, लक्ष्मी देवी से बचकर हवेली से भाग आते थे। उमा रानी की प्रसन्नता को देखकर ही डॉक्टर गोपाल ने उन्हें गाँव - बुंदेलखंड जाने से रोक लिया।

लक्ष्मी देवी, अपनी बड़ी बहन शांति देवी से चार कदम आगे थीं। अपना सुख भूलकर दूसरों के सुख से दुखी होना उनका स्वभाव था। घर में एक पुत्री और पुत्र के विवाह की तैयारियाँ चल रही थीं। लेकिन उनके मन में कुछ और ही उधेड़बुन थी। बोलीं 'रामदास की बहू आएगी। तब हवेली में उनका डेरा रहेगा। हम इस घर में ही आ जाते हैं। आपका भी कामकाज इसी घर से चलता है। हमारा डेरा भी यहीं रहेगा।'

दूसरे ही दिन वह इसी घर में रहने आ गई थीं। ऊपर उमा रानी, नीचे लक्ष्मी देवी। रामदास को मानो अनायास और बिना माँगे ही सब कुछ मिल गया था। अब हवेली में डॉक्टर गोपाल के कमरे पर उनका अधिकार था। बहीखाते पहले ही कब्जे में ले चुके थे। उन्हें चलते-फिरते मनुष्य से कोई लगाव नहीं था। घर-मकान, धन-दौलत, आदेश-हुकूमत उनका स्वभाव था। डॉक्टर गोपाल उन्हें गृहस्थी के बंधन में बाँधना चाहते थे। इसीलिए इधर गंगा बाई की शादी हुई। बारात विदा हुई, दूसरे ही दिन रामदास की बारात बुंदेलखंड रवाना हो गई। उमाशंकर नहीं आ सके थे। रानी बेटी ने बनारस में दूसरे पुत्र को जन्म दिया था। नाम रखा था देवप्रकाश।

रामदास का विवाह धूमधाम से संपन्न हुआ। उनके श्वसुर पुलिस अधिकारी थे। साले डॉक्टर। भारी भरकम लिबास, जेवर-गहनों से लदी और ढेर सारा दहेज लिए नर्मदा देवी का हवेली में गृह प्रवेश हुआ।

रामदास अब हवेली के मालिक थे। गृह-प्रवेश के साथ ही नर्मदा देवी को मालकिन का दर्जा स्वतः मिल गया था। पर छोटापन इतना कि दूसरे घर के लिए राशन तौलकर भिजवाने लगी थीं। लक्ष्मी देवी से बढ़ावा मिलता और गोपालप्रसाद सदा की तरह मौनी बाबा बने हुए थे। एक ही परिवार, लेकिन दो घरों के बीच दीवार उठ गई थी। जो देखता-सुनता था वह यही सोचता था कि गृह-स्वामी की स्वीकृति से हो रहा है यह। नर्मदा देवी ने तो डॉक्टर साहब और लक्ष्मी देवी को भी ताना मारना शुरू कर दिया था। यहाँ रामदास मौन थे। यानी एक परिवार, दो घर और तीन कुनबे। रामदास और गोपालप्रसाद से अलग उमा रानी का कुनबा था तीसरा।

'एक चौथा कुनबा भी है, इंदौर में। सबसे ज़्यादा वही प्यारा है इन्हें।' लक्ष्मी देवी कहतीं पर उमा रानी कभी कह नहीं पाई थीं यह बात।

लक्ष्मी देवी को समझ नहीं आई। कलह प्रतिदिन होता। आँच उमा तक पहुँचती। डॉक्टर साहब का मौन नहीं टूटा। एक दिन बात इतनी बढ़ गई कि लक्ष्मी देवी ने अन्न त्याग दिया। फलाहार, वह भी एक समय। तीन खिड़की वाले कमरे से लगा हॉल था। उसका एक चौथाई हिस्सा अपने लिए स्वयं आरक्षित कर लिया था। चार इंच ऊँची विभाजक दीवारें नत्थू बा ने बना दी थी। उस हिस्से में उनकी पूजा और रसोई दोनों थीं। स्वयं बनातीं अपना भोजन। आरक्षित हिस्से में बाहर ज़मीन पर बिछौना था। दीवार की अलमारी में पूरी गृहस्थी। उमा रानी की गृहस्थी तीन खिड़की वाले कमरे में सिमट गई थी। वे राजकुमारी और भानुप्रकाश को सब काम सिखा रही थीं और उनसे उमाशंकर और रानी बेटी के किस्से सुनकर खुश होतीं।

डॉक्टर गोपाल, अब हर शाम प्रेमदास और भानुप्रकाश को साथ लेकर सैर पर जाते थे। ठाकुरदास घोड़ा-गाड़ी निकालते और भानुप्रकाश उनके बगल में बैठ जाते। बड़े हुए तो वह ठाकुरदास की जगह ले चुके थे।

एक दिन गाँव-बुंदेलखंड से चिट्ठी आई। उमा रानी के भतीजे के पुत्र 'कामतानाथ का ब्याह है, अब तो आ जाओ।' भौजी ने लिखवाया था। 'एक बार तो आ जाओ, जीजी। भूरेलाल भैया लिवाने आ रहे हैं।'

'इस बार तो चलते हैं गाँव। सब खुश हो जाएँगे।'

'आप अवश्य जाएँ। हम नहीं जा पाएँगे।' डॉक्टर गोपाल का जवाब था।

भूरे भाई आए बहिन को लिवा ले गए। डॉक्टर गोपाल ने उमाशंकर से कहा था कि वह स्वयं जाएँगे साथ में। समय आया तो पलट गए।

डॉक्टर गोपाल देख रहे थे कि उमा के जाते ही लक्ष्मी देवी के स्वभाव में कुछ नरमी आ गई थी। राजकुमारी ने छोटी सी उम्र में सब जिम्मेदारी संभाल ली थी। रसोईघर के बाहर वाली खिड़की पर बैठकर राजकुमारी को समझाइश देती रहती थीं। क्षणिक ही सही, लेकिन लक्ष्मी देवी में आया यह बदलाव सुखद है। ऐसा डॉक्टर गोपाल सोचते थे। पर उन्हें इस बार उमा रानी के स्वास्थ्य को लेकर चिन्ता थी। वह दमा से पीड़ित थीं।

कामतानाथ का विवाह संपन्न हुआ। नुनसाई-जखौली से मुखिया परिवार के लोग भी विवाह में सम्मिलित हुए। विवाह के बाद उमा रानी मुरलीप्रसाद के साथ जखौली पहुँची। वहाँ पहुँचकर उनका दमा बढ़ गया। मुरलीप्रसाद ने उज्जैन पत्र लिखा कि काकी का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। डॉक्टर गोपाल का न कोई जवाब पहुँचा न वह स्वयं गए। उधर उमा रानी को पेट में भी कोई संक्रमण हुआ था। दोहरी बीमारी शरीर झेल नहीं सका और उमा रानी का देहान्त हो गया। मुरलीप्रसाद ने उज्जैन तार द्वारा सूचना भिजवाई। उन्होंने ही अंतिम संस्कार किया। देवप्रकाश बहुत छोटे थे, इसीलिए उमाशंकर भी नहीं पहुँचे। डॉक्टर गोपाल ने उरई अपने दामाद को मनीऑर्डर से खर्चा-पानी भिजवा दिया। उनके दामाद जखौली पहुँचे। रूपये मुरलीप्रसाद को दिए और एकादश, द्वादश और त्रयोदश-कर्म विधिवत संपन्न करवाया।

राजकुमारी और भानुप्रकाश चिंतित थे कि दादी अब तक क्यों नहीं लौटीं।

एक दिन उन्होंने पूछा 'दादा साहब, दादी कब आएँगी?'

डॉक्टर गोपाल चुप रहे।

'मोड़ी कुछ पूछ रही है? बताते क्यों नहीं। कब तक छिपाओगे।'

'बड़ी अम्मा, आपको पता है तो आप ही बता दो।'

'बेटा, तुम्हारी दादी का जखौली में देहांत हो गया। अब वह कभी नहीं आएँगी।'

दोनों भाई-बहिन देर तक रोते रहे। फिर राजकुमारी ने पूछा 'कोई गया नहीं वहाँ?'

'हाँ बेटा, जा नहीं पाए।'

'बापूजी तो गए होंगे।'

'नहीं। देवप्रकाश अभी बहुत छोटे हैं, इसलिए वह भी नहीं जा पाए।'

'दादा साहब, आप नहीं जा पाए। दद्दा नहीं जा पाए। पर बड़े भैया तो जा सकते थे वहाँ।' प्रेमदास ने कहा।

'हाँ, जा तो सकते थे। पर यह भी सोचो कि अभी तो उनकी शादी हुई है। फिर काम की भी ज़िम्मेदारियाँ हैं। हमने ही जोर नहीं डाला।'

धनपतसिंह के यहां भी खबर पहुँची थी। दोनों भाई, डॉ. प्रकाश और रघुनंदन के साथ आए थे मिलने। रघुनंदन बहुत उदास थे। बार-बार अफसोस करते रहे कि उनके जाने से पहले वह अपनी बड़ी माँ से मिलने नहीं आ पाए। राजकुमारी और भानुप्रकाश से सब पहली बार मिल रहे थे।

'उमाशंकर के क्या समाचार हैं ? कहाँ हैं? रघुनंदन ने पूछा।'

'बनारस में हैं आजकल। काशी नरेश ने रीवा महाराज से विशेष अनुरोध किया उन्हें बुलाने के लिए।'

'और भाई प्रेमदास, आप क्या कर रहे हैं।'

'पढ़ रहे हैं भाई जी।'

'कहाँ?'

'नई पेठ के स्कूल में चौथी कक्षा में हैं। अब वहीं भानुप्रकाश भी जाने लगे हैं। पहली कक्षा में हैं भानु।'

'अच्छा-अच्छा।' यहाँ, नीचे हॉल में वार्तालाप हो रहा था। वहाँ ऊपर लक्ष्मी देवी को कुछ अच्छा नहीं लग रहा था। बड़बड़ाती हुई सीढ़ियों तक पहुँचकर चिल्लाई -

'छोटे लल्ला, वहां बहस में बैठे हो। चलो ऊपर आओ।'

'ये इंदौरियों की पटर-पटर में खूब मन लग गया तुम्हारा। अपना काम-काज भूल गए सब। अब यहीं बैठोगे।' प्रेमदास के ऊपर आने पर कह रहीं थीं लक्ष्मी देवी। प्रेमदास के पीछे-पीछे राजकुमारी और भानुप्रकाश भी ऊपर आ गए थे।

'तुम लोगों को नहीं बुलाया था हमने। क्यों आ गए। वहीं बैठते।'

'बड़ी अम्मा, क्या करते वहाँ बड़े लोगों के बीच। तो आ गए हम भी।' राजकुमारी ने जवाब दिया।

असल बात यह थी कि लक्ष्मी देवी अब भी रघुनंदन से चिढ़ती थीं। कैसे वह उमाशंकर का पक्ष लिया करते थे, अब भी याद है उन्हें। वह नहीं चाहती थी कि प्रेमदास उनसे ज्यादा घुलमिलकर बातें करें।

उमाशंकर रीवा लौट चुके थे बनारस से। फिर वही पुराना काम। दवाखाना फिर शुरू हो गया। भीड़ जुटने लगी थी फिर पुराने दिनों की तरह। देवप्रकाश को स्कूल में दाखिल करवा दिया था।

रानी बेटी अक्सर उमा रानी को याद करतीं। दोनों को बहुत दुख था कि उनके अंतिम समय वे उनसे दूर थे। लेकिन उमाशंकर रुष्ट थे कि डॉक्टर गोपाल भी नहीं गए। उनकी माँ अपनों से दूर रहकर चुपचाप चली गई।

'किसकी बात करते हैं आप?' देवप्रकाश पूछते।

'तुम्हारी दादी की बात कर रहे हैं बेटा।'

'सुनिए, बिन्नू और भानु को कब से नहीं देखा। उज्जैन चलें हम।'

'हाँ, चलना तो है। पत्र आया है। प्रेमदास ने मैट्रिक परीक्षा पास कर ली है। अब उनका विवाह होना है जल्दी ही।'

'दादा साहब ने लिखा है?'

'दादा साहब ने सिर्फ ब्याह की बात लिखी है। अपने पास होने की सूचना प्रेमदास ने दी है।'

'अब वह भी डॉक्टरी पढ़ना चाहते हैं। लेकिन यहाँ भी रामदास अड़ंगा लगा रहे हैं।'

'इस घर में किसी के चाहने से कुछ नहीं होता। होता वही है जो दूसरे चाहते हैं।'

'सही कहती हो तुम। पर कभी अच्छा भी हो जाता है और कभी नहीं भी होता।'

'कैसे कहते हो आप यह बात, हम भी सुनें।'

'वही बता रहे हैं। दादा साहब की नानी उन्हें पुरोहित पंडा बनाना चाहती थीं। बब्बा ने बुलवा लिया। वह चाहते थे कि बड़ा अफसर बनें। लेकिन डॉक्टर बन गए। पर दूसरों की मरजी से ही। हम चाहते थे कि डॉक्टरी पढ़ें, लेकिन बन गए इंजीनियर। देखना है कि प्रेमदास क्या बनते हैं। हमें चिंता भानु की है। वह क्या करेंगे वहाँ रहकर।'

बच्चों की याद में खो गई थीं उनकी माँ।

उज्जैन में स्थितियाँ कुछ अलग ही थीं। घर में भी और बाहर भी। मुखिया परिवार में ब्याह की तैयारियाँ थीं और शहर में राजनीति गरमा रही थीं। स्कूल-कॉलेज में बैठकें हो रही थीं। छात्र भी उग्र थे और शिक्षकों में भी गुस्सा था। नेता, बुद्धिजीवी, लेखक-संगठन और श्रमिक, सब साथ चल रहे थे। श्रीमंत सिंधिया का भी कुछ बातों पर अंग्रेज़ों से मतवैभिन्न था। रेसीडेंसी के अधिकारी सिंधिया से मिले।

'रेसीडेंसी बनाने के लिये उन्होंने कोठी पैलेस देने का आग्रह किया है।'

'वह हमारा रिहायशी महल था। लेकिन अब वहाँ तहसील और सूबा के दफ्तर हैं। अदालत भी वहीं लगती है। कालियादह है ही रिहायशी।'

सिंधिया ने फिर रातोंरात सारे दफ्तर कोठी महल में शिफ्ट कर दिए। बायजा बाई की हवेली में नगरपालिका और महाराजवाड़ा में स्कूल कायम कर दिया। फलस्वरूप जनता में सिंधिया के प्रति आदर बढ़ गया था। लेकिन राजघराने और अंग्रेज़ सरकार का दोस्ताना कायम रहा।

गुरुजी, भोला महाराज, गजाधर और चौबे जी अब इतिहास बन गए थे। इन चारों के जाने के बाद सेठ गंगाधर और मुंशी मनसुखलाल की उदासीनता के कारण जो ठहराव आ गया था, अब वह नहीं था। अब एक उत्साह था। जोश था। वर्षों बाद अंबाप्रसाद, नारायण भार्गव और बुज़ुर्ग व्यास जी युवा पीढ़ी के साथ खड़े थे। कुछ नये क्रांतिकारी भी थे। प्रगतिशील, क्रांतिकारी युवाओं में लाल-बाल-पाल के निधन के बाद उग्र

भावनाएँ उभर रही थीं। एक बार फिर कुछ कर गुजरने का जोश था। कहीं कोई छोटी-सी वारदात भी हो जाए, युवा सड़कों पर उतर आते थे।

गोपालप्रसाद, धनपतसिंह के परिवार के साथ मैत्री और निष्ठा निभा रहे थे। तिवारी जी का परिवार इधर की उधर करने की ज़िम्मेदारी का निर्वाह ईमानदारी से कर रहा था। इनके अलावा भी नगर में और भी परिवार थे जिनमें वफादारी की होड़ लगी रहती थी। नगर, देश और समाज में वफादार कुनबों के परिसर बन गए थे। मुखियाओं के पीछे बुंदेलखंड से ऐसे बहुत से परिवार आए थे जिनकी ग्वाड़ियाँ इस प्रकार बसी हुई थीं, जैसी बस्तियाँ किलों के परकोटों के भीतर हुआ करती थीं। यहाँ दुश्मनी, ज़मीन के झगड़े, मुकदमों की झंझट तो नहीं थी। पर एक दूसरे को नीचा दिखाने के षड़यंत्र तो थे ही। वहीं मुखियाओं के साथ ही अंग्रेज़ों के प्रति निष्ठा एक समान थी सबकी। अब मुखिया परिवार के बरतन कुछ ज़ोर से खड़क रहे थे। अपनी सल्तनत पर तो गोपालप्रसाद का एक छत्र राज्य था। लेकिन दत्तक कथा के प्रवेश के बाद उन्हें चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा था। यों यह इस परिवार का निजी मामला था। लेकिन खलनायक तिवारी जी ने बाहर भी इसे चर्चा का विषय बना दिया था। पहले शांति देवी, फिर लक्ष्मी देवी और रामदास नये परिच्छेद लिख रहे थे। गोपालप्रसाद और लक्ष्मी देवी में अक्सर बहस होती थी।

गोपालप्रसाद आकर बैठे ही थे कि तिवारी जी के पुत्र गगनबिहारी सामने खड़े हो गए।

'कहिए, क्या कहना है?'

'हमें कुछ नहीं कहना, ऊपर छोटी बुला रही हैं।'

गोपालप्रसाद ऊपर पहुंचे। गगनबिहारी सीढ़ियों पर ही बैठ गए।

'बड़े लल्ला को हमसे तो मतलब है नहीं, लगता है तुमसे भी नहीं है। सिर्फ जायदाद से मतलब है। थोड़ा तो अंकुश लगाओ। आखिर बाप हो।' लक्ष्मी चिढ़ रही थीं।

'अरे बाबा, जायदाद संभालने वाला भी तो चाहिए कोई।'

'कभी जाकर हिसाब-किताब भी देख लिया करो। लल्ला तो इधर आएँगे नहीं।'

'जाते तो हैं हम वहाँ। वह भी ज़िम्मेदार हैं। दो बच्चों के बाप हैं।'

'हमें क्या पता। कभी लेकर आए बच्चों को यहाँ, वह या उनकी घरवाली। हमें तो बच्चों के नाम भी नहीं मालूम।'

'लड़की का अनुराधा है, लड़के का कृष्णदास।'

'दादा साहब, हमें डॉक्टरी पढ़ाने के विषय में क्या निर्णय है आपका?' बीच में ही टोंकते हुए बोले प्रेमदास।

'अभी तुम्हारे ब्याह की सोच रहे हैं, फिर कुछ और सोचेंगे।'

'ब्याह, अभी उम्र ही क्या है हमारी।'

'सोलह पार हो गए हो। बबुआ नहीं रहे अब। उमाशंकर ब्याह के समय नौ बरस के थे।'

'पर रामदास भैया तो उन्नीस बरस के थे।'

'और हम चौदह बरस के थे। बाप की सुनोगे या भाई की नकल करोगे।'

'छोटे लल्ला गलत नहीं कह रहे। फिर सुनोगे तो तुम भी रामदास की ही।'

'अब बस करो तुम लोग।'

प्रेमदास नीचे चले गए चुपचाप।

उमाशंकर आ गए थे। माँ-बाप से भानु और राजकुमारी ऐसे मिल रहे थे, जैसे खोए हुए या बिछुड़कर फिर मिले बच्चे मिलते हैं। छोटे देवप्रकाश देख रहे थे भौंचक। माँ ने पास बुलाया और कहा 'तुम्हारे दादा भाई और जीजी हैं। पाँव छुओ। तभी प्रेमदास भी आ गए और अपनी शिकायत लेकर बैठ गए यहाँ भी।'

'दद्दा, मैं डॉक्टरी पढ़ने इन्दौर जाना चाहता हूँ। दादा साहब कोई जवाब नहीं दे रहे। भैया कान भरते रहते हैं उनके। आप बात करो न।'

'किससे छोटे?'

'दोनों से।'

'हमारे कहने से कोई फर्क पड़ेगा। हमें ऐसा नहीं लगता।'

प्रेमदास सोच रहे थे कि अब किससे कहें।

मुंशी सदासुखलाल भी उमाशंकर से मिले। मकान-जायदाद की बातें करते रहे।

'भैया जी, जहाज गली वाली हवेली देख लो एक बार जाकर। रामदास की नीयत ठीक नहीं है।'

'क्या करेंगे वह?'

'कुछ भी। सामने जो टाल है, उसके पास में कितनी ज़मीन थी। डॉक्टर साहब को बिना बताए उन्होंने बेच दी। इसीलिए कहते हैं, देख लो।'

यही बात जब रानी बेटी ने कही, तब उमाशंकर वहां गए। पता चला कि आधी हवेली बिक चुकी है। उमाशंकर ने आधी हवेली किराये पर उठा दी। फिर इन्दौर जाकर कोड़ियागंज वाला मकान भी किराये पर उठा दिया। रामदास ने सुना और मन मसोसकर रह गए। पिता के पास शिकायत करने गए।

'रामदास उमाशंकर के मकानों में दखल क्यों देते हो। वे जो कर रहे हैं, ठीक है।'

रामदास फिर कोई नई खुराफत सोच रहे थे। तुरंत अपने मार्गदर्शक गगनबिहारी से मिलने चले गए। अन्तत: उन्होंने उमाशंकर की हवेली का वह आधा हिस्सा भी बेच दिया।

रानी बेटी को अब राजकुमारी के ब्याह की चिंता होने लगी थी।

'अम्मा, बिन्नू के ब्याह की भी बात चलाएँ अब। दादा साहब से कहो न आप।'

लक्ष्मी देवी का मन पसीज गया। डॉक्टर गोपाल से बात करने पहुँच गई - 'छोटे का ब्याह तो हो जाएगा। राजकुमारी की चिंता कब करोगे?'

'अच्छा किया, याद दिला दी। हम बात करते हैं उमाशंकर से।'

'फिर तुरंत ही बुलवाया उन्हें। उन्होंने बताया कि बिन्नू के मामा ने एक रिश्ता बताया है। सोचते हैं कि छोटे के ब्याह के बाद बात करेंगे।'

ढलती उम्र का असर था या स्वभावजन्य उदासीनता डॉक्टर गोपाल परिवार के क्लेश-कलह में हस्तक्षेप नहीं करते थे। रामदास इसी से उदंड हुए जा रहे थे। माँ से लगाव नहीं था, लेकिन गुण उन्हीं के पाए थे। उकसाने के लिए गगनबिहारी थे। साले थे, बहनोई की ढलती उम्र को लेकर छेड़ते रहते थे।

'तिवारी जी, अपने बापूजी के विषय में सोचो। सिंधिया महाराज हमारे लिए क्या कहते हैं, कुछ मालूम है आपको।' गोपाल जी हँसकर कहते।

'क्या कहते हैं?'

'कहते हैं, डॉक्टर साहब, हम तो बूढ़े हो रहे हैं और आप पर दिनोंदिन जवानी चढ़ती जा रही है। और हाँ, महाराज हमसे छोटे हैं उम्र में।'

'जाओ, चौथा ब्याह रचा लो अपना। इस घर की रीत ही बन गई है। एक है, दूसरी ले आए। वह मरी तो तीसरी ले जाए।'

'छोटी, चुप कर। वैसे हर घर की रीत है यह। तिवारी परिवार में भी यही होता आया है।'

'तिवारी तो तुम भी हो छुटकन भैया। पहली मर गई, फिर भी ब्याह ही नहीं किया।'

गगन बिहारी चुप रहे।

ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष। मई 1927। प्रेमदास की बारात एक राजनगर से दूसरे राजनगर रवाना हुई। रईस डॉक्टर गोपाल के समधी पंडित बलभद्र चौबे सारंगढ़ रियासत के दीवान थे। डॉक्टर साहब से उम्र में छोटे, लेकिन रुतबा बराबरी का। चौबेजी के काँग्रेस नेताओं से संबंध थे। प्रजा-वत्सल होने का गुमान दोनों को था। इधर, रामदास और गगनबिहारी थे, उदंड और शातिर। उधर कन्या के मामा थे राजनीति के खिलाड़ी। इधर दो, उधर तीन। हठीले मामा, गुरीले मामा और रसीले मामा। हठीले से रामदास और छुटकन मामा की घुट रही थी। कानाफूसी के विषय थे उमाशंकर।

'इनका क्या रिश्ता है डॉक्टर साहब से।' एक ने कहा।

'सुना है, गोद लिया है।' दूसरे ने कहा।

'किससे, असल माँ-बाप कौन जात हैं।' तीसरे ने कहा।

इधर-उधर से होते हुए बात डॉक्टर गोपाल के कानों तक पहुँच ही गई। बात बढ़ना ही थी और बात बढ़ गई। गोपाल जी तमक कर उठ गए पंगत से।

'बहुत हुआ चौबेजी। प्रेमदास उठो।'

बात बिगड़ती देख रायगढ़ के दीवान पंडित देवकीनंदन मिश्र सामने आए। बात बिगाड़ने वालों को बाहर किया। चौबे जी और मिश्र जी ने डाक्टर साहब से क्षमा याचना की। तब ही विवाह संपन्न हुआ। बेटी विदा हुई।

प्रेमदास खुश थे। पर रामदास नाखुश। गोपाल संतुष्ट थे। लेकिन उमाशंकर के मन में कुछ सवाल थे। सोच रहे थे कि उनका दोष क्या है। रघुनंदन उदास। क्या हो रहा है यह? आज बड़ी माँ होतीं, यह सब सुनतीं तब कैसे सहतीं वह। प्यारे मामा और गुरुजी। क्या कहते वह? रघुनंदन यह सोचकर दुखी थे कि डॉक्टर साहब कैसे चुप रहे। यह बात कहाँ से फैली, उन्होंने यह जानने की कोशिश ही नहीं की। यही करना था तो दत्तक-कथा को जन्म ही क्यों दिया। डॉक्टर प्रकाश उनसे कहते कि हम क्यों फटे में पाँव फँसाएँ। भानुप्रकाश कुछ समझ नहीं पा रहे थे। पर यह तो जान गए थे कि वह इस घर में बाहरी हैं। नई बहू अपने घर से कुछ निश्चय कर चली थीं। उमाशंकर से उन्हें कोई मतलब नहीं था। समझ रही थीं कि कोई खतरा भी नहीं है। खतरनाक रामदास हैं। उन्हें यही सीख दी गई थी शायद। टपारे और पिटारे, भरे हुए संदूकों के साथ आई थीं। फिर जल्दी ही लौट गई। गौने की विदा तीन बरस बाद होना थी।

प्रेमदास की खुशी व्यग्रता में बदल रही थी। वह इन तीन बरसों में बहुत कुछ करना चाहते थे। मेडीकल स्कूल में दाखिले की ज़िद थी। प्रवेश-परीक्षा में दाखिल हुए। परीक्षा में पास हो गए, तब परमिशन फॉर्म लेकर पिता के पास पहुंचे। फॉर्म पकड़ा दिया उन्हें।

'क्या है?'

'फॉर्म है। आपके दस्तखत चाहिए।'

'तुम कर दो दस्तखत।' डॉक्टर गोपाल ने फॉर्म रामदास की ओर बढ़ा दिया।

'दादा साहब, मेडीकल की पढ़ाई में बहुत खर्चा आएगा। इतना खर्चा अभी हम नहीं उठा सकते हैं।' उन्होंने दस्तखत नहीं किए और फॉर्म प्रेमदास को लौटा दिया।

प्रेमदास उदास थे। वे शिकायत करने माँ के पास गए। लेकिन वे सुनकर चुप ही रहीं। फिर एक दिन। प्रेमदास ने पिता के दस्तखत स्वयं कर दिए। फॉर्म जमा करवा आए। एडमिशन भी हो गया। फिर पहुँचे पिता जी के पास। माँ साथ थीं। डॉक्टर गोपाल पहले नाराज़ हुए। फिर लक्ष्मी देवी के कहने पर मान गए। वह इस बात पर खुश थे कि प्रेमदास

के मन में पढ़ाई की ललक है। उन्होंने जो किया, वह बेझिझक स्वीकार भी किया। इसलिए जाने दिया। प्रेमदास पढ़ने इन्दौर चले गए। इन्दौर में रहने की व्यवस्था भी अपने एक मित्र के यहाँ करवा दी। कुछ समय पश्चात भानुप्रकाश भी मोटर मैकेनिक का काम सीखने वहाँ पहुँच गए।

गौने की विदा के बाद नई बहू का पुनः गृह प्रवेश हुआ। इधर इन्दौर में प्रेमदास और भानुप्रकाश कुछ समय घर पर ही भोजन बनाते रहे। समय अधिक लगता था, इससे भोजनालय जाकर खाने लगे। जब बाज़ार का भोजन स्वास्थ्य पर असर करने लगा, तब प्रेमदास उज्जैन पहुँचे।

'माँ साहब, घर पर खाना बनाने में समय ज्यादा लगता है। बाज़ार का खाना नुकसान करता है। आप कहें तो आपकी बहू को ले जाएँ। आराम मिलेगा और पढ़ाई में कोताही नहीं होगी।'

'ठीक है लल्ला। हम दादा साहब से बात करेंगे।' और एक दिन प्रेमदास अपनी पत्नी को लेकर इन्दौर पहुँच गए। जीवन पटरी पर आ गया था।

उमाशंकर ने राजकुमारी का विवाह ललितपुर के एक जाने-माने परिवार में तय कर दिया था। होने वाले दामाद रेलवे में नौकरी कर रहे थे। ललितपुर में खेती-बाड़ी थी। उनका अपना बड़ा सा मकान था। डॉक्टर गोपाल को भी रिश्ता पसंद था। विवाह उज्जैन से ही होना निश्चित हुआ।

प्रेमदास एक पुत्र और एक पुत्री के पिता बन चुके थे। रीवा में भी जयप्रकाश का जन्म हो चुका था। समय निकाल कर भानुप्रकाश रीवा हो आते थे। देवप्रकाश और जयप्रकाश को देखकर प्रसन्न होते। माँ, तीनों को देखकर तृप्त हो जाती थीं। इधर डॉक्टर गोपाल अब अस्वस्थ रहने लगे थे। रामदास को संपत्ति के मोह ने इतना जकड़ लिया था कि उन्हें न माँ की चिन्ता थी न पिता की। उन्हें तो अपनी सन्तान से भी कोई मोह नहीं था। दो पुत्रियाँ और तीन पुत्र कई दिनों तक अपने पिता को देख ही नहीं पाते थे। हवेली और बंगले के बीच सौहार्द टूट रहा था। रामदास, उनकी पत्नी और प्रेमदास की पत्नी के बीच बढ़ते तनाव के बीच डॉक्टर गोपाल और लक्ष्मी देवी मूकदर्शक थे। प्रेमदास, पढ़ाई से समय निकाल कर पिता को देख जाते थे। उमाशंकर दूर बैठे हुए सब देख-सुन रहे थे। लेकिन वह कुछ कर नहीं सकते थे। मुखिया परिवार तीन अलग-अलग दिशाओं में,

अपने हालातों से अपने जीवन को थामे हुए थे। उमाशंकर कभी-कभी हँसकर कहते- 'सुना था, बुंदेलखंड से चौथा घराना मालवा में आकर बस गया था। अब इस चौथे घराने का भी बटवारा तीन घरानों में हो गया है। एक-हवेली घराना, दूसरा बँगला घराना और तीसरा रीवा घराना। तीसरे घराने को हम दत्तक घराना भी कह सकते हैं। तीनों की डोर अलग है, जीवन-शैली अलग है और अलग ही रहेगी।'

'कुछ भी कहो, पर उज्जैन से रिश्ता तो बना रहेगा।'

'हाँ, वह तो है। भानु का मन भी वहाँ लगता है। इसलिए ब्याह तो उज्जैन से ही करेंगे।'

पंडित उमाशंकर सपरिवार उज्जैन पहुँच गए थे। मुखिया परिवार में यह पहली शादी हो रही थी जो नाती-पोतों की पीढ़ी से थी। इसलिए डॉक्टर गोपाल बहुत ही उत्साहित थे। उत्साह और प्रसन्ता का भाव अम्मा रानी माँ में भी था। बड़ी अम्मा तटस्थ थीं। रामदास तो उदासीन बने हुए थे। प्रेमदास और भानुप्रकाश शादी के काम-काज में पंडित उमाशंकर का साथ दे रहे थे। डॉक्टर गोपाल बड़ी धूमधाम चाहते थे, लेकिन पंडित उमाशंकर सादगी के पक्ष में थे। प्रेमदास और भानुप्रकाश दुखी न हों, यह सोचकर वह मौन रहे। पक्यात-फलदान और लगुन की रस्म हवेली में संपन्न की गई। ब्याह का मंडप बंगले में बनाया गया था। ब्याह संपन्न हुआ। दामाद पंडित रामेश्वरप्रसाद दुबे रेलवे में बड़े अफसर थे।

डॉक्टर गोपाल चाहते थे कि विदाई के साथ ही गौने की रस्म भी पूरी कर ली जाए। अब उनका शरीर थक रहा था, इसलिए चाहते थे कि रस्मों का पूर्ण विराम हो जाए। पंडित उमाशंकर को भी कोई आपत्ति नहीं थी।

'रस्मों का क्या है, सिर्फ नाम ही तो हैं।' दूल्हे के पिता ने कहा। राजकुमारी की विदाई धूमधाम से हुई।

रानी बेटी, 'उज्जैन से रिश्ता तो बना रहेगा', जितने उल्लास से कहती थीं, रीवा जाने के लिए उतनी ही उतावली होती थी। इधर बिटिया विदा हुई, उधर उन्होंने कहना शुरू कर दिया- 'कब चलना है।'

उमाशंकर जल्दी ही लौट गए। लेकिन उनके जाते ही डॉक्टर गोपालप्रसाद की सेहत बिगड़ना शुरू हो गई थी। अक्सर पुरानी यादों में खो जाते। चौबे गुरुजी, प्यारे भाई और

डॉक्टर धनपतसिंह-गणपतसिंह के किस्से सुनाते रहते प्रेमदास को। एक दिन जब तबीयत ज्यादा बिगड़ गई तब डॉ. दिघे ने आकर जाँच की। बड़े अस्पताल में भी जाँच की गई। डॉक्टर के अनुसार उन्हें यूरेमिया की शिकायत थी। उम्र भी हो गई थी। वह बुदबुदाते, अब शरीर थक गया है। उमाशंकर को खबर कर दो। प्रेमदास ने पत्र लिखा था। लेकिन उनके आने के पूर्व ही 96 बरस की उम्र में, 10 मार्च 1934 को डॉक्टर गोपाल का देहांत हो गया।

अंतिम क्रिया संपन्न हुई। तीसरे दिन उमाशंकर आए। लक्ष्मी देवी की इच्छानुसार पिंड दान और तर्पण रामदास के हाथों हुआ। कानाफूसी होती रही, खून के रिश्ते को लेकर। पंडित शालिग्राम के मतानुसार उमाशंकर का हक बनता था। कुछ लोग कह रहे थे दाह संस्कार तो रामदास ने किया है। उमाशंकर तो यहाँ थे ही नहीं। किसे पता कि परिवार ने उन्हें सिर्फ पत्र लिखकर औपचारिकता निभाई थी।

उमाशंकर सब देख रहे थे, सुन रहे थे। अब वह इस सबसे दूर जाना चाहते थे।

और वह चले गए।

कुछ बरस बीते और एक दिन खबर आई कि उमाशंकर बीमार हैं। भानुप्रकाश तुरंत रीवा रवाना हो गए। प्रेमदास भी गए। यह कहकर लौट गए कि फिर आयेंगे।

कुछ समय और बीत गया। उमाशंकर की तबीयत बिगड़ती गई। उन्हें भी यूरेमिया हुआ था। रक्त दोष और यूरीन इन्फेक्शन। संग्रहणी और खूनी बवासीर की तकलीफ भी थी। अन्ततः वह भी 15 मार्च 1939 को चल बसे।

मुखिया परिवार के दो व्यक्तियों का जाना, दो अध्याय, दो युगों की पूर्णता का संकेत था। रामदास अपनी हवेली में मगन रहते थे। कोई आए, कोई जाए, हमें क्या। इस भाव के साथ वह अपने बहीखातों में घिरे मुस्कुराते रहे।

***

भाग-18

देह नश्वर है। एक दिन सबको जाना है और सब चले जाते हैं। लेकिन कुछ लोग मर कर भी नहीं मरते। अनेक स्मृति-कक्षों में सदा के लिए बस जाते हैं। ऐसे ही थे पंडित उमाशंकर। रीवा की सड़कें, इमारतें और राजमहल के कुछ हिस्से उन्हें याद करते रहेंगे। सबसे ज्यादा याद आएँगे गरीब बस्तियों के उन लोगों को जिनके परिजनों का उन्होंने मुफ्त इलाज किया था। उन गरीबों के मसीहा थे वे।

अब रीवा में क्या है? भानुप्रकाश ने सोचा। वह यही चाहते थे कि दिवंगत पिता का दशगात्र, एकादश और त्रयोदशी का श्राद्ध-पूजन उज्जैन में ही किया जाए। उन्होंने माँ से कहा – 'अब यहाँ कौन है अम्मा! उज्जैन चलें।'

माँ का मन कुछ और था। उज्जैन के माहौल को उन्होंने देखा ही नहीं, भोगा भी था। फिर अब बापूजी भी नहीं रहे। एक क्षण को सोचा उन्होंने और भानुप्रकाश से कहा- 'अब वहाँ तुम्हारे दादा साहब भी नहीं हैं।' कुछ देर चुप रहे सब।

फिर अम्मा ने स्वयं सोचा कि यहाँ रहकर भी क्या होगा। अब बच्चों का ही सहारा है। सब उज्जैन चले आए।

चलते समय पास-पड़ोस विदा के लिए वहाँ खड़ा था। हर एक आँख नम थी। अम्मा की भी। 'जाओ बेटा। परवश हैं हम सब। होनी अनहोनी घटती ही रहती है। पंडितजी के बहुत उपकार हैं हम पर। उनका आशीर्वाद और इन सबकी दुआएँ आपके काम आएँगी। और क्या दें हम?' पास के मंदिर के पुजारी कह रहे थे।

'दुआएँ ही काम आती हैं भैया। पंडितजी यहाँ खाली हाथ आए थे। आप सब भी यहाँ से खाली हाथ ही जा रहे हो। यहाँ जो भी कमाया था उन्होंने, वह भी हम सबको बाँटते रहे। अपने पास कुछ नहीं रखा।' एक पड़ोसी कह रहे थे।

रानी बेटी जो सबकी रानी माँ थीं और बच्चों की अम्मा, जा रही थीं रोते हुए। साथ सिर्फ एक ग्रुप फोटो था दफ्तर का। उसे थामे पहुँचीं वहाँ, जहाँ दिखावटी चेहरे थे।

भानुप्रकाश और देवप्रकाश व्यवस्था में लग गए। सहायक कोई नहीं था, टिप्पणी करने वाले बहुतेरे। बड़ी अम्मा कह रही थीं कि 'तेरह दिन घर पर ही रहना चाहिए भानुप्रकाश को।' प्रेमदास इन्दौर में थे। रामदास अपने धंधे में व्यस्त। सिर्फ राजकुमारी थीं जो तेरहवीं के लिए आई थीं। वही बोली कि 'भानु घर बैठे रहेंगे तो काम कौन कर जाएगा।'

हालाँकि बाहर के काम पंडित बालमुकुंद के साथ देवप्रकाश ही संभाल रहे थे। भानु की देख-रेख थी।

'रीवा वाली यह कर लो, वह कर लो।' बड़बड़ाती रहती थीं बड़ी अम्मा। रीवा वाली। खून का रिश्ता नहीं था न। राजकुमारी को अच्छा नहीं लगता था। पर कहतीं किससे।

दसवें, ग्यारहवें और बारहवें की पूजा रामघाट और सिद्धवट पर संपन्न हुई। तेरहवीं घर पर की गई। ऊपर वाला हॉल वार-त्यौहार और पूजा-पाठ के लिए ही था। वहीं पिंडदान की रस्म पूरी की गई। बुंदेलखंड से उमाशंकर की सुसराल के कुछ लोग आए थे। घर के दामाद आए ललितपुर से। नदी घाटी बस्ती से कृष्णबिहारी के सुपुत्र रामप्रसाद तिवारी आए। इस परिवार की अम्मा रानी बेटी गुमसुम देखती रहीं। तीन खिड़की वाले कमरे में बैठी रहती थीं चुपचाप।

ऊपर तीन खिड़की वाला कमरा, साथ लगी कोठरी, पास में रसोईघर और नीचे हॉल के बगल में एक कमरा व गुसलखाना, बस इतना ही इस परिवार के हिस्से में था। ऊपर दो कमरे, नीचे तीन कमरे, एक हॉल, रसोई, दो बरामदे, एक आँगन और मवेशी-बाड़ा इतना सब प्रेमदास के हिस्से में। डॉक्टर गोपाल की मृत्यु के बाद रामदास ने घोड़ा बेच दिया। ताँगा रखा हुआ था। 'वह भी बिक जाएगा कभी।' बड़ी अम्मा लक्ष्मी देवी कहती थीं छोटी दादी से।

भानुप्रकाश बैठे सोच रहे थे कि कैसे चलेगा यह घर। महीने भर का राशन हवेली से भिजवा दिया जाता था। दोनों घरों के लिए। पर कब तक? उधर देवप्रकाश इंटर में पढ़ रहे थे। जयप्रकाश स्कूल में। पैसों का जुगाड़ एक समस्या थी। मोटर मैकेनिक के काम में कुछ ज्यादा कमाई नहीं थी। उन्होंने मुनीम जी से बात की।

'जहाजवाली गली का मकान था। वह डॉक्टर साहब के जीते जी आधा बेच दिया था बड़े साहब रामदास ने।' मुनीम जी ने कहा।

'अब क्या कर सकते हैं?'

'एक मकान और है कोड़ियागंज, इन्दौर में। वह उमाशंकर भैया के नाम पर है।'

'मुनीम जी, वह मकान बिकवाइए।'

मकान बिक गया। उन्हीं पैसों से भानुप्रकाश ने गोपाल मंदिर के पास, बायजाबाई की हवेली के सामने एक दुकान खरीदी। जनरल स्टोर। पास ही एक दुकान थी। मालिक लंबू मास्टर थे। उन्होंने ही पास की दुकान का सौदा करवाया। एक धंधा शुरू हुआ। आमदनी शुरू हुई। किसी के दबाव से मुक्त अब वह स्वयं मालिक थे अपने घर के। देवप्रकाश भी इंटर पास कर रेलवे की नौकरी पर बाहर चले गए थे। इनकी अम्मा को अब भानुप्रकाश के ब्याह की चिंता थी। वह सोचती थी कि उनके ब्याह के समय वह पाँच बरस की थीं और भानु के पिता नौ बरस के। भानु सत्ताइस बरस के हो रहे हैं। उन्होंने प्रेमदास से इस विषय पर बात की। वह बोले- 'रिश्ता तो है। अगर आप और भानुप्रकाश हाँ करें तो बात बढ़ाई जाए।'

'रिश्ता कहाँ से है।'

'सुंदर की माँ की भतीजी हैं। कन्या के पिता हमारे श्वसुर के सगे भांजे हैं। बिटिया को भानु भैया ने देखा भी हैं। बहुत सेवा की थी उनकी बीमारी में।'

'घर में कौन-कौन हैं?'

'कन्या के पिता, हमारे साले साहब फौज में हैं। उनके चार भाई हैं। सभी रायगढ़ में रहते हैं।'

'लड़की के घर में कौन-कौन हैं।'

'माँ हैं। तीन बहिने हैं। सबसे छोटी अभी साल-छः महीने की है। पिता रंगून में हैं।'

'आपको अच्छा लगे तो बात चलाओ।'

'बात तो चल पड़ी है भौजी। साले साहब का पत्र आया है रायगढ़ से। उन्होंने ही प्रस्ताव दिया है शादी का। कुंडली भी मिलती है।'

अम्मा ने भानु से बात की। जब भानु की रजामंदी हो गई तो प्रेमदास ने स्वीकृति दे दी रायगढ़ वालों को। हो गया विवाह। चट मँगनी, पट ब्याह। देवप्रकाश की नई नौकरी थी,

इससे यह नहीं आ पाए बड़े भाई के ब्याह में। पर जब कहीं शुभ-कार्य हो रहा हो और रामदास खामोश रहें। संभव ही नहीं था। उनका खुराफाती दिमाग सदैव सक्रिय रहता। खाली दिमाग नहीं था, पर था शैतान का घर। दो-चार चिट्ठियाँ पहुंच गई रायगढ़ भी। पंडित उमाशंकर और भानुप्रकाश का विरोध करते हुए लिखते-बोलते ही रहते थे। वैसे इस मामले में दोनों भाईयों का स्वभाव एक-सा था। रामदास खुराफात रचते तो प्रेमदास इस प्रचार में लगे रहते थे कि उन्होंने अपने दद्दा की बहुत सेवा की। उनके बच्चों को अपनाया। पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखाया और अब शादी कर रहे हैं। यही सब बातें थीं कि रानी बेटी यानी भानुप्रकाश की अम्मा का मन यहाँ नहीं लगता था। जानती थीं कि दोनों भाई दुष्प्रचार में लगे हुए हैं। मदद एक पैसे की नहीं। पर श्रेय लेने में आगे। जबकि भानुप्रकाश ने ही सब किया है। आगे भी वही करेंगे।

एक बरस होते-होते देवप्रकाश का भी रिश्ता हो गया। यहाँ भी दोनों भाई खुराफात करने और श्रेय लेने में पीछे नहीं रहे। लेकिन अम्मा प्रसन्न थीं कि पंडित उमाशंकर का परिवार बढ़ रहा था। अम्मा इसलिए भी खुश थीं कि अब दो घर हो गए हैं। जब मन होता देवप्रकाश के पास चली जाती थीं।

परिवार सबके बढ़ रहे थे। राजकुमारी तीन बेटियों की माँ बन चुकी थीं। भानुप्रकाश दो पुत्रों और देवप्रकाश एक पुत्र के पिता हो गए थे। रामदास के यहाँ छह पुत्र और चार पुत्रियाँ जन्म ले चुकी थीं। प्रेमदास भी छह पुत्रों और एक पुत्री के पिता बन चुके थे।

देश स्वतंत्र हो चुका था। शरणार्थी जगह-जगह बसाए जा रहे थे। लेकिन मुखिया परिवार सामंती परंपराओं में जकड़ा हुआ था। कहने को एक परिवार था। लेकिन तीनों घरानों की शतरंजी चालों के लिए बिछात बिछी हुई थी। रामदास सदा की तरह हमलावर थे और प्रेमदास व भानुप्रकाश अपनी सुरक्षा की घेराबंदी में प्रयत्नशील।

रामदास और प्रेमदास दोनों ने अपनी खानदानी विरासत में बहुत कुछ पाया था। 'समरथ को नहीं दोष गुसाई।' यह उनका मूल मंत्र था। इतना समर्थ बनो या समर्थ बनने का भरपूर नाटक करो, फिर जो मन में आए वह करो। रामदास समर्थ थे, इसलिए राज कर रहे थे।

डॉक्टर गोपालप्रसाद अक्सर कहते थे - 'रामदास में हमें पिता की झलक दिखाई देती है।'

'हमें तो बड़े कुंअर में उनके नाना-मामा का रूप दिखाई देता है। अब बापूजी को तो हमने देखा नहीं, फिर कैसे मान लें आपकी बात।' लक्ष्मी देवी की अपनी अलग सोच थी।

'अरे, यह राज करने वाली ठसक जो बापूजी में थी, वही रामदास में है।'

'और छोटे कुंअर'

'वह बिल्कुल हम पर गया है। मेहनती है।'

'तो फिर उसकी बात मानते क्यों नहीं। उसे डॉक्टरी पढ़ने भेजते क्यों नहीं।'

'भाग्य में होगा तो बन जाएगा।'

सच कहते थे डॉक्टर गोपाल। रामदास, सामंती ठसक, जमीदारी रुआब और धार्मिक पाखंड में रचे-बसे थे। लाहौर में क्या करते रहे। किसी को नहीं मालूम। यहाँ भी वह हमेशा रहस्यमय बने रहे। डिग्री ली नहीं और लिखते थे अपना नाम डॉक्टर रामदास मुखिया। इन सबसे अलग थे पंडित उमाशंकर। डिग्री होते हुए भी नाम के आगे डॉक्टर नहीं लगाया। लिखते रहे पंडित उमाशंकर।

दानशील, कर्मठ और स्वाभिमानी थे उमाशंकर। पिता की असलियत बहुत जल्दी जान गए थे, लेकिन फिर भी उन्हें सम्मान देते रहे। भले ही दूर चले गए, वह जान गए थे कि गोद लिए गए हैं। पर इसकी पीड़ा को जाहिर नहीं होने दिया। बच्चों को कभी नहीं बताया। बच्चों ने जाना रामदास, प्रेमदास और बड़ी अम्मा के साथ रहकर। भानुप्रकाश में भी अपने पिता के गुण थे। कर्मठता और स्वाभिमान। रामदास और प्रेमदास को वह सदैव आदर देते रहे।

अम्मा कहतीं - 'बेटा, अपने सत्कर्म ही अपना साथ देंगे। दूसरे क्या करते हैं, उसकी चिन्ता मत करो। अपने परिवार को अपना प्यार दो।'

वही करते रहे भानुप्रकाश। कभी-कभी बड़ी अम्मा के व्यवहार से विचलित हो जाते थे। स्वभाव में उग्रता भी आती जा रही थी। पर एक लकड़ी के दो टुकड़े कभी नहीं किए।

रामदास की दुनिया सबसे निराली थी। कृष्णदास, गिरिधर दास, रघुवर दास, बिहारी दास, कमलेश और गोपीचंद, उनके छह बेटे थे। चार बेटियाँ थीं, अनुराधा, गीता, कृष्णा और चंद्रकला। अनुराधा और गीता के ब्याह हो चुके थे। अनुराधा सबसे बड़ी थीं

जिनका ब्याह पंडित उमाशंकर के निधन से पूर्व ही हो चुका था। अब वह कृष्णदास के ब्याह के लिए प्रयत्नशील थे। गीता का ब्याह पिछले बरस ही हुआ था। कृष्णदास मैट्रिक पास करने के बाद ही बनारस चले गए थे पढ़ने। अब वहीं नौकरी कर रहे हैं। रामदास चाहते थे कि वह उनके काम में हाथ बटाएँ, वह पढ़ना चाहते थे। कोई अनहोनी बात नहीं थी, लेकिन इसी ने बाप-बेटे के बीच में दूरी बना दी थी। गिरिधर दास का मन पढ़ाई में नहीं लगता था। रघुवरदास पढ़ने में तेज़ थे। रामदास और नर्मदा देवी लगभग उदासीन थे इनके भविष्य के प्रति। पिता की कमाई हुई जायदाद पर कुंडली मारकर बैठे हुए थे। बाकी समय में हुक्म चलाना, दहशत फैलाना और आसपास की ग्वाड़ी के गरीबों से बेगारी करवाना ही उनकी दिनचर्या थी। पूजा-पाठ का पाखंड चलता ही रहा।

प्रेमदास और जमुना देवी इनसे अलग थे। बच्चों के भविष्य के प्रति जागरूक थे। बच्चों के नाना और मामा भी नामी-गिरामी थे। रईस भी और पढ़े लिखे भी। वकील और अफसर। वे भी सिखाते-समझाते रहते थे। लेकिन रईसी की ठसक यहाँ भी कम नहीं थी।

जमुना देवी की सख्त हिदायतें थीं - 'भूलकर भी उस काले दरवाजे की तरफ नहीं जाना है।' प्रेमदास यह तो नहीं कहते थे। लेकिन पढ़ाई पर विशेष ध्यान देते थे। सुंदर और भैरवी माँ और पिता की सीख पर ध्यान देते थे। सुंदर समझदार थे। भैरवी माँ पर गई थीं। साथ में प्रेमदास की बड़ी बहन के पुत्र और पुत्री भी यहाँ रहकर पढ़ रहे थे। बहिन की मृत्यु हो चुकी थी। रघुवरदास, सुंदर और प्रेमदास का भांजा लक्ष्मण हमउम्र थे। जयप्रकाश इन तीनों से तीन बरस बड़े थे। पर, साथ ही रहते-खेलते। लक्ष्मण और उनकी बहिन कृष्णा दोनों मामाओं की तनातनी और सख्ती से घबरा कर एक दिन चुपचाप अपने पिता के पास लौट गए।

'तुम्हारी ज्यादती के कारण ही दोनों भागे हैं।' प्रेमदास जमुना देवी से कहते।

'हमारी ज्यादती के कारण नहीं, बड़े साहब की तानाकशी से गए हैं। भागे नहीं हैं।'

'कुछ भी हो। जीजाजी पता नहीं क्या सोचते होंगे। बिना माँ के बच्चे थे। सब यही कहेंगे कि मामा अपने भांजे-भांजी को नहीं रख सके।'

'अब कुछ भी कहें लोग। परवाह नहीं। फिर लक्ष्मण बिगड़ा हुआ लड़का था। सुंदर से उसकी सोहबत बढ़े, हम नहीं चाहते थे।'

इसी बात को लेकर दोनों में बहुत तकरार होती थी। जब बात बहुत बढ़ जाती, तब बड़ी अम्मा कहतीं - 'भानु, जरा जाकर देखो दोनों को। तुम्हारी बात छोटे कुंअर मान जाएँगे।'

भानुप्रकाश दोनों को समझाने का प्रयत्न करते थे।

जयप्रकाश की अम्मा इन दिनों भेलसा में थीं। देवप्रकाश वहां पदस्थ थे। छुट्टियाँ शुरू होते ही उन्होंने पत्र भिजवाया कि यशोदा बहू और बच्चों को भेलसा भेज दो।

बड़ी अम्मा अपनी पूजा में बैठी हुई सब पर नज़र रखती थीं। भानुप्रकाश, देवप्रकाश का पत्र पढ़ रहे थे, वह उन्होंने सुन लिया। भानुप्रकाश के जाते ही उनके सवाल-जवाब शुरू हो गए।

'जसोदा, कौन सा महीना चल रहा है'

'बड़ी अम्मा अभी समय है। सावन में उम्मीद है।'

'सोच लो। छोटे कुंअर से भी पूछ लेना।'

'वहाँ भी देखभाल हो जाएगी। अम्मा हैं, सुमित्रा हैं।

जयप्रकाश सबको लेकर भेलसा चले गए। प्रेमदास ने सुना तो बड़े नाराज हुए।

'भानु भैया, यहाँ डॉक्टरी देखभाल बेहतर हो जाती। वहाँ कौन है।'

'अम्मा का मन है कि इसी बहाने दोनों बहुएँ साथ रह लेंगी। कमल को भी दो भाइयों का साथ मिलेगा। बच्चे खुश रहेंगे।'

'भानु, सुमित्रा की बिटिया अभी छोटी है। फिर भौजी अकेली कितना कर पाएँगी। हमसे तो पूछा होता एक बार।' प्रेमदास ने प्यार और बड़प्पन दिखाया।

प्रेमदास एम.बी.बी.एस. नहीं थे। पर डॉक्टर तो थे। मेडीकल स्कूल की एल.एम.पी. डिग्री थी उनकी। पर मेहनती थे। अपने पिता का यही गुण पाया था विरासत में। बड़ी अम्मा खुश रहती थीं उनसे। इसीलिए बोलीं - 'भानु, कुंअर ठीक कह रहे हैं। एक बार पूछ लेना था।'

अभी स्कूल-कॉलेज खुलने में समय था। लेकिन परीक्षाफल आना शुरू हो गए थे। जयप्रकाश इंटर पास हो चुके थे। सुंदर और रघुवरदास भी मैट्रिक में पास हुए थे। जयप्रकाश आर्ट्स के विद्यार्थी थे। सुंदर और रघुवर साइंस के। दोनों घर पर तो नहीं,

लेकिन स्कूल में मिलते थे देर तक बतियाते रहते थे। कभी-कभी स्कूल से निकल कर माधव कॉलेज या नई सड़क पर शर्मा आर्ट्स की दुकान पर वे जयप्रकाश से भी मिलते। जयप्रकाश को ड्राइंग का शौक था और पेंटर शर्माजी उनके परम मित्र थे। तीनों यहाँ बैठकर भविष्य की योजनाओं पर विचार करते थे। रघुवरदास और सुंदर ने जयप्रकाश से कहा था हम तो डॉक्टरी पढ़ना चाहते हैं। देखो, बाहर जा पाते हैं या नहीं। जयप्रकाश कुछ अलग स्वभाव के थे। धर्म-कर्म में मन लगता था, तो देश की राजनीति भी प्रभावित कर रही थी। वह हिन्दू समाज के प्रभुत्व वाली संस्था की गतिविधियों में भी दिलचस्पी ले रहे थे। भानुप्रकाश को उनकी यह गतिविधि पसन्द नहीं थीं। वह गाँधीवादी थे। लेकिन प्रेमदास गाँधी-नेहरू की प्रशस्ति जिस प्रकार करते, वैसी ही सिंधिया राजघराने की भी। परिवार पर अंग्रेजों की कृपा दृष्टि का स्तुति-गान भी उनका स्वभाव था।

'नई उम्र है। नौकरी और ब्याह के बाद बदल जाएँगे जयप्रकाश भी।' भानु भैया के उग्र होने पर प्रेमदास उन्हें समझाते थे।

बरसात शुरू हो चुकी थी। जयप्रकाश भेलसा से लौट आए थे। भानुप्रकाश यह जानकर खुश थे कि अम्मा ऐसे समय में पत्नी के साथ थीं।

'अम्मा कैसी हैं।' उन्होंने पूछा।

'अम्मा, अपने तीन बाल-गोपाल में प्रसन्न हैं। मगन है।'

'मकान की क्या व्यवस्था हुई।'

'अभी किराये के मकान में ही हैं। रेलवे के क्वार्टर की उम्मीद नहीं है। पर मकान अच्छा है। बाज़ार और अस्पताल पास ही है।'

'हाँ, एक बात बताना है तुम्हें। ललितपुर से चिट्ठी आई है। जिज्जी के यहाँ लड़का हुआ है। सोचते हैं कि रक्षाबंधन पर हो आएँ वहाँ। भांजे को भी कुछ दे आएँगे। तुम चलोगे।'

'भैया, उसी समय अम्मा ने बुलाया है।'

'तो ठीक है। भैरवी से राखी बंधवाकर भेलसा चले जाना।'

'जी, ठीक है।'

पर जयप्रकाश को पहले ही जाना पड़ा। भानुप्रकाश रक्षाबंधन से पूर्व ललितपुर चले गए थे।

रक्षाबंधन के दिन ही यशोदा बहू ने कन्या को जन्म दिया। जयप्रकाश ने ललितपुर, उज्जैन और रायगढ़ चिट्ठी लिखकर शुभ समाचार दिया। लिखा, देवी हुई है।

'पूर्णिमा के दिन कन्या आई है बड़ी अम्मा।' प्रेमदास ने कहा।

'फिर तो पूनम नाम ही ठीक रहेगा।' जमुना देवी ने कहा।

किसी को पता नहीं था कि जयप्रकाश नामकरण कर चुके हैं और घर में सबको ही पसन्द आया है नाम।

'पूर्णिमा के दिन जन्म हुआ है। नाम हुआ 'शुभ्रा'। ठीक है ना अम्मा।'

अम्मा ने भी अपनी स्वीकृति दे दी। भानुप्रकाश ने भी सहमति सूचक पत्र लिखा था।

अनन्त चतुर्दशी से पूर्व यशोदा बहू अपने बच्चों के साथ लौट आई थीं। अम्मा भी साथ आई थीं।

बरसात के बाद मौसम बदलने लगा था। इस बार ठंड का असर बहुत पहले से अनुभव हो रहा था। दीवाली भी कड़कती ठंड में मनाई गई थी। यशोदा बहू, दीवाली के पहले से ही कुछ अलग ही अनुभव कर रही थीं। अनमनी सी रहने लगी थीं। कुछ दिन ऐसे ही निकल गए।

'बेटा, बहू की तबीयत ठीक नहीं रहती है।' अम्मा ने कहा एक दिन।

भानुप्रकाश ने देखा, तेज़ बुखार था। दिन भर खाँसती रहती थी। प्रेमदास ने भी देखा और बड़े अस्पताल में भी दिखाया। वहाँ थूक और खून की जांच हुई थी । पता चला कि फेफड़े संक्रमित हो चुके हैं।

'हमने पहले ही कहा था कि भेलसा मत भेजो।' प्रेमदास ने कहा।

'भैया, इसमें भेलसा कहाँ से आ गया।' अम्मा विचलित हो गई थीं।

'नाराज़ मत होना भौजी। कहीं तो कोई असावधानी हुई है। अब इलाज लंबा चलेगा।'

प्रेमदास इलाज करते रहे। विशेषज्ञ की राय लेकर दवाओं का इंतज़ाम होता रहा। वह इलाज भी करते थे और निरंतर बड़बड़ाते रहते थे। भानुप्रकाश चिंतित थे। । बच्चे समझ नहीं पा रहे थे कि उनकी माँ को क्या हुआ है। अपनी दादी के पास सहमे सिकुड़े बैठे रहते थे।

भानुप्रकाश ललितपुर से लौटते समय बड़ी भांजी नयना को साथ ले आए थे। अम्मा को नयना से बड़ा सहारा मिला था। नयना की भैरवी से अच्छी पटती थी। कभी-कभी हवेली जातीं। यहाँ कृष्णा उनकी पक्की सहेली बन गई थी। अम्मा को आश्चर्य हुआ कि नयना और कृष्णा की दोस्ती पर नर्मदा देवी खामोश रहीं।

यशोदा बहू को नीचे हॉल के बगल वाले कमरे में रखा गया था। प्रेमदास ने घर को ही अस्पताल बना दिया था। जल्दी ही खर्च की समस्या आने लगी तो भानुप्रकाश ने अपनी दुकान बेच दी थी। यशोदा के इलाज़ में कोई कमी नहीं आने दी। इलाज लंबा चला, लेकिन यशोदा बहू पूर्णतः स्वस्थ हो गई थीं।

रामदास अपने बड़े बेटे कृष्णदास के विवाह में ही व्यस्त रहे। उन्हें वैसे भी किसी से कोई लगाव नहीं था। एक दिन भी मरीज़ की जानकारी लेने की तकलीफ नहीं की उन्होंने। नर्मदा देवी अपनी पहली बहू की अगवानी में लगी हुई थी। अम्मा, दादी रस्मों में हो आई थीं। प्रेमदास के बहुत आग्रह करने पर जमुना देवी भी एक बार गई थीं हवेली। नर्मदा देवी, 'क्या लाई हो अपने मायके से', ऐसे कटाक्ष कर अगवानी कर रही थीं। और इधर परिवार में सबसे बड़ी और बुजुर्ग थीं बड़ी अम्मा। उनकी अपनी दुनिया थी जिसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार किसी को नहीं था। अपनी सीमित जगह पर लेटी-बैठी रहती थीं। कभी-कभी गगनबिहारी आ जाते, तब वह खुलकर हँसती, बोलतीं और इधर-उधर की खबरें जान पाती थीं। यों रामदास और नर्मदा देवी को उनसे कोई मतलब ही नहीं था। उन्हें मतलब नहीं था, इसीलिए उनकी औलादें भी उदासीन थीं।

कृष्णदास के ब्याह के बाद आई थीं नर्मदा देवी बड़ी अम्मा के पास। अपनी बहू को लेकर। तभी जमुना देवी, यशोदा बहू और दादी भी पास आकर बैठ गई थीं। पहली बार नर्मदा देवी ने मुँह खोला यह जानने के लिए कि यशोदा बहू की तबियत अब कैसी है।

'अब तो ठीक है। पर कमज़ोरी अधिक है।' दादी ने कहा।

बड़ी अम्मा यों तो रीवा वाली ही कहती थीं। पर उस दिन पहली बार बोलीं - 'रानी बाई, भानु ने जसोदा की बहुत सेवा की है। ठीक तो होना ही था।'

'भानु के काकाजी ने भी इलाज में कोई कसर नहीं छोड़ी।' जमुना देवी ने तुरंत अपनी बात कही।

अपना-अपना स्वभाव, अपने-अपने तर्क। भानुप्रकाश अक्सर सोचते और अपनी अम्मा से कहते भी थे कि 'बड़े साहब और बड़ी काकी एक बार भी नहीं आए समाचार लेने के लिए। बहू को मिलवाना था बड़ी अम्मा से। सो चली आईं काकी।' 'सबके अपने-अपने स्वार्थ हैं बेटा। कोई किसी का सगा नहीं।' अम्मा ने कहा।

उस दिन बहुत देर तक बैठी रहीं नर्मदा देवी। नई बहू कुछ समय के लिए यशोदा के साथ बैठी रहीं, तीन खिड़की वाले कमरे में। वहीं बच्चों से मिलीं। बहुत बातूनी थीं वह। लगातार वही बोलती रही - 'जिज्जी, यह हमारी सास पता नहीं किस मिट्टी की बनी हैं, दिन रात ताना मारती रहती हैं, और ससुर जी, पलभर को भजन-कीर्तन, दूसरे ही पल गाली-गलौज। इन्हें भी दिन भर कोसते रहते हैं।' यशोदा बहू चुपचाप सुनती रहतीं।

इसके बाद जब उज्जैन आती तो मिलने आती थीं। यशोदा जिज्जी और जमुना काकी के पास उनका बहुत मन लगता था। बतलाती थीं अक्सर कि' यहाँ से जाने के बाद बहुत कोहराम मचता है हमारे यहाँ।'

'क्यों?' जमुना देवी पूछतीं।

'काकी उन लोगों को हमारा यहाँ आना पसंद नहीं।'

'तो मत आया करो।'

'क्यों नहीं आएँ। कहीं भी आना-जाना हमारी मर्जी की बात है।'

फिर एक दिन। वह आई और कहने लगीं - 'आज हमने एक फैसला कर लिया है। हर समय की किटकिट-चखचख सहन नहीं होती।'

'बहू रानी जल्दबाजी ठीक नहीं होती। एक फैसला लेने से पहले कई बार सोचना पड़ता है।' जमुना देवी का परामर्श था।

'काकी कई बार सोचा है। उनका बार-बार यही कहना होता है कि यहाँ क्यों आ जाती हो। क्या है यहाँ तुम्हारा। हमने भी कह दिया कि अम्मा अब नहीं आएँगे।' पूछती हैं - 'कभी नहीं?' हमने भी कह दिया कि 'अब आपकी तेरहवीं पर आएँगे।' इतना कहकर वह तुरंत चली गईं।

यशोदा बहू कुछ नहीं बोलीं। चुपचाप सुनती रहीं। उन्हें पता था कि बड़ी अम्मा की सब पर नज़र है। पता नहीं कब क्या बखेड़ा हो जाए। भानुप्रकाश को सब कथा सुनाई तो वह भी दुखी हुए। कृष्णदास जब भी उज्जैन आते, तब उनसे मिलने अवश्य आते थे। उन्हें भी अपने पिता से शिकायत थी। भानुप्रकाश सुनते रहते थे। ग़लत परामर्श कभी नहीं दिया। बस यही कहते - 'भाई, बड़े साहब ने हमारा हक भी हमसे छीन लिया। अब हम उनसे क्या कहें, तुम्हारे बारे में।'

भानुप्रकाश रामदास का भी आदर करते रहे और प्रेमदास का भी साथ देते रहे। दुकान बिक गई थी। सत्ती द्वार के पास रामशंकर जी शाह की दुकान पर मुनीम का काम कर रहे थे। रामशंकर भाई ने भरोसा दिया था कि 'वह बम्बई के एक सेठ को जानते हैं। यहाँ भी उनका कारोबार है। वह उन्हें लिखेंगे कि आपको कोई काम दें।'

रामदास के व्यवहार से पूरा परिवार दुखी था। नर्मदा देवी उनसे भी दो कदम आगे थीं। राशन के सामान को लेकर अक्सर नर्मदा देवी और जमुना देवी में कहासुनी होने लगी थी। पीछे से रामदास के ताने। जमुना देवी एक दिन परेशान होकर बोलीं - 'भानु, अपने काकाजी से कहो कि अब बटवारे की बात करें अपने बड़े भाई से। कब तक मंगतों की तरह माँगते रहें।'

भानुप्रकाश ने प्रेमदास से बात की तो वह बोले - 'मुनीम जी से सलाह कर लो। हम कोई विवाद नहीं चाहते।'

'बटवारा चाहिए तो कानूनी लड़ाई लड़ो। दादा साहब कोई वसीयत नहीं कर गए हैं। छोटे नौकरी कर रहे हैं न। हमने तो कोई नौकरी नहीं की। जायदाद को संभाला है। फिर भी सबको खाना दे रहे हैं।' रामदास ने मुनीम जी से कहा।

वकील अम्बाप्रसाद डॉ. गोपाल के मित्र थे। मुनीम जी उनसे मिले। वकील साहब ने बटवारे का मुकदमा दीवानी अदालत में लगा दिया।

एक दिन रकम-सामान के कागज़ तैयार हो रहे थे। वकील अम्बाप्रसाद, वकील सक्सेना, गगन बिहारी, रामदास, प्रेमदास, भानुप्रकाश और मुनीम जी बैठे हुए थे। एक कागज़ रामदास और दूसरा प्रेमदास के नाम का बनाया जा रहा था।

'एक तीसरा कागज़ और बनाइए वकील साहब।' मुनीम जी ने कहा।

'तीसरा?'

'हाँ, तीसरा भानुप्रकाश के नाम का बनेगा। पंडित उमाशंकर डॉक्टर साहब के बड़े पुत्र थे।

प्रेमदास चुप रहे। लेकिन रामदास कहाँ चुप रहने वाले थे।

'दादा साहब दो मकान कर गए थे दद्दा के नाम। अब उनका कोई हिस्सा नहीं बनता।' रामदास ने कहा।

'पर, यहाँ सिर्फ मकान की बात नहीं हो रही है। फिर एक मकान तो तुमने ही बेच दिया। भानु भैया के हिस्से एक ही मकान आया। और मकान के अलावा भी तो है जायदाद।'

'घर-गृहस्थी का सामान है। बड़ी माँ की गृहस्थी तो दद्दा को ही मिली थी। भानु को अब क्या दें। फिर भी हमने जो कहा है वह ये मानते ही नहीं।'

'क्यों भानु भैया?'

भानुप्रकाश चुप रहे। वकील साहब के सामने क्या घर की पोल खोल देते। बाद में उन्होंने मुनीम जी को बताया कि 'रामदास काका ने एक शर्त रखी थी उनके सामने।'

'कैसी शर्त।'

'यही कि हम प्रेमदास काका का साथ छोड़ दें तो वह दोनों मकानों के बीच की खाली ज़मीन देने को तैयार हैं। लेकिन घर-गृहस्थी के सामान के बारे में वह अड़े हुए थे।'

'तो बड़ी माँ का क्या हिस्सा मिला?'

'अम्मा से पूछा था। उन्होंने कहा कि कुछ नहीं मिला। सिर्फ इन्दौर का मकान ही मिला था।'

'तुम मुकदमा कर सकते हो।'

'अम्मा राजी नहीं हैं। कहती हैं कि राजी खुशी कुछ मिले तो ठीक। कोर्ट-कचहरी नहीं करना है हमें।'

'फिर ठीक है भैया। होने दो दोनों में बटवारा। लेकिन उम्मीद कम है कि रामदास इस विषय में ईमानदार हैं।'

और 15 मई 1949 को अदालत में दोनों भाइयों के बीच बटवारा हो गया था। मुनीम जी जैसा सोच रहे थे, वही हुआ। जेवर, रकम, नकदी और अन्य सामान का एक चौथाई हिस्सा ही प्रेमदास को मिला। वह भी उन्होंने अदालत में अपने हाथों नहीं लिया। भानुप्रकाश को आगे कर दिया। दो-दो मकान दोनों के हिस्से आए। खेत और तालाब का जिक्र ही नहीं किया। काले दरवाज़े के एक ओर की ग्वाड़ी का स्वामित्व रामदास और दूसरी ओर की ग्वाड़ी का प्रेमदास को मिला।

बटवारे ने अलगाव का बीज बो दिया था। दोनों भाइयों से ज्यादा नर्मदा देवी और जमुना देवी के बीच एक लकीर खिंच गई थी। बड़ी अम्मा, लक्ष्मी देवी बड़बड़ाती रहतीं।

'बटवारा हो गया। हम किसके हिस्से में गए हैं।'

'छोटे साहब के साथ रहती हैं आप तो उन्हीं के हिस्से में आई हैं। दोनों मकान मय सामान बट गए हैं।' भानुप्रकाश ने कहा।

'तो अब हम भी सामान हो गए।'

'अदालत तो यही मानती है बड़ी अम्मा। बड़े साहब का भी यही मानना है।'

अलगाव के बावजूद प्रेमदास बड़े भाई के पास जाते रहते। जमुना देवी नहीं गई। एक तरफा ही रहा सब। भानुप्रकाश प्रेमदास का साथ निभाते रहे।

सब कुछ बदल रहा था। खेत उजाड़ हो रहे थे। इन्दौर के खेत कब बिक गए, पता ही नहीं चला। उज्जैन में भी खेत से लगा तालाब सूख रहा था। कचराघर बना हुआ था। आसपास के मोहल्ले वाले कूड़ा-करकट और कबाड़ यहीं फेंकते। कुएँ के पास बची ज़मीन पर अनाज की खेती हो रही थी। जमुना देवी देखती और टिप्पणी करतीं।

'राशन तो भेजना चाहिए। दादाजी कितना अनाज पैदा कर रहे हैं।'

'तुम्हें लगता है तो कहो उनसे।' बड़ी अम्मा कहतीं।

'कहलवाया था। कहते हैं कि कोई हक नहीं तुम लोगों का। बटवारा कर दिया है। अब अपना-अपना देखो।'

'तो देखो फिर। कब तक दूसरों के आसरे रहोगे।'

भानुप्रकाश के काम बढ़ गए थे। अपने घर के राशन-पानी का इंतज़ाम। प्रेमदास के घर के लिए भी हाट-बाज़ार। अब एक नई ज़िम्मेदारी भी आ गई थी। 'भानु भैया, ये रसीद कट्टे संभालो। ग्वाड़ी वालों से किराया वसूली तुम्हारा काम है।' प्रेमदास ने कहा।

प्रेमदास के यहाँ गाय-भैंस थीं। भानुप्रकाश के यहाँ कलिया माँ आती थीं दूध लेकर। दादी ने कह दिया था कि यह स्वयं दें तो ठीक। माँगना नहीं है किसी से।

रामशंकर जी घर आए एक दिन। उन्होंने बताया कि 'माल रोड पर एक जिनिंग फैक्ट्री है, सोना प्रेस। बम्बई से मालिक आए हैं। मिल लो।'

भानुप्रकाश को नौकरी का कोई अनुभव नहीं था। लेकिन दुकानदारी करते हुए ग्राहक को पहचानने और उसे प्रभावित करने का गुण था। सेठ पदमसी भाई भी पारखी थे, फिर रामशंकर जी की सिफारिश की भी अहमियत थी उनके लिए। उन्हें यहाँ रहना नहीं था। एक विश्वस्त और इलाके की जानकारी रखने वाला व्यक्ति चाहिए था।

और वह उन्हें मिल गया। पदमसी भाई प्रेमजी भाई भले आदमी थे। सोना प्रेस का मैनेजर बना गए भानुप्रकाश को।

मालवा और निमाड़ कपास उत्पादक क्षेत्र थे। जिनिंग फैक्ट्री में रुई की गठानें बनतीं और मिलों को सप्लाई होती थीं। इलाके में हथकरघे बहुतायत में थे। पावरलूम का व्यवसाय भी पनप रहा था। वहाँ भी खपत थी गठानों की। माल रोड़ पर ऐसे कॉटन प्रेस बहुतायत में थे। फैक्ट्री के अलावा भी काफी खुली ज़मीन थी। एक पुराना बंगला था। खेत थे। भानुप्रकाश ने मैनेजरी के अलावा खेती और खुली ज़मीन का भी उपयोग किया। इमली, बैर, जामुन और जामफल के पेड़ थे। कुछ और फल-फूलदार पौधे लगवाए। बंगले के बगल की ज़मीन पर गौशाला कायम की। गाय-भैंस भी पाल ली थी उन्होंने।

जयप्रकाश ग्रेजुएट हो गए थे। नौकरी की तलाश कर रहे थे। देखते रहते थे, हवेली और बंगले के बीच दिनोंदिन बढ़ती दूरी। वैमनस्य और तनाव। इसी बीच जयप्रकाश को

रेलवे में गार्ड की नौकरी मिल गई। नियुक्ति पर वह राजूर चले गए। अम्मा उनके साथ ही गई। यों भी वह कभी उज्जैन और कभी देवप्रकाश के साथ रहती थीं। अब छोटा बेटा अकेला रहेगा, घर से दूर, यही सोचकर वह साथ चली गईं।

रामदास के बड़े पुत्र मैट्रिक पास करते ही बनारस चले गए थे। दूसरे यहीं बाबू हैं कलेक्टर आफिस में। तीसरे, रघुवर दास, प्रेमदास के बड़े पुत्र सुंदर के साथ ग्वालियर मेडीकल कॉलेज पढ़ने चले गए। रामदास के पुत्रों और प्रेमदास के पुत्रों के बीच ठीक वैसे ही तनानती रहती थी, जैसी रामदास और प्रेमदास में। आग में घी डालने का काम, बड़ी अम्मा, नर्मदा देवी और जमुना देवी करती रहती थी। भानुप्रकाश और यशोदा बहू तटस्थ बने रहते थे। एक पक्ष तनाव पैदा करता रहा, दूसरा तनाव बढ़ाता रहा और तीसरा तटस्थ रहकर मौन बना रहा। कुछ इसी प्रकार जीवन घिसट रहा था अपनी-अपनी पटरी पर।

'यशोदा, आज ज़रा हमारे यहाँ की रसोई भी देख लेना।' 'यशोदा, हम पूजा कर रहे हैं, ज़रा छुटकी को नहला देना।' 'यशोदा, हम नहा रहे हैं, ज़रा अपने फूफाजी को कलेवा दे देना।' 'यशोदा, ज़रा भानु भैया को कहना कि श्याम और विजय की कॉपी-किताब पर कवर चढ़ा देंगे।' आदि आदि काम अक्सर जमुना देवी बताती रहती थी। लेकिन जब कभी यशोदा को कोई असुविधा हो, कोई ज़रूरत हो या मदद चाहिए हो, जमुना देवी नीचे से ऊपर नहीं आती थीं। भानुप्रकाश इन स्थितियों में चुप रहते, कुछ नहीं कहते थे। यशोदा भी कर्तव्य समझकर सब करती रहतीं। माँ ने यही सिखाया था। बड़े और भरे-पूरे परिवार से आई थीं।

'आज नवमी का कन्या-भोज है।' 'आज दादा साहब का श्राद्ध है।' आज फलाँ त्यौहार है, किसी की लगुन-पक्यात है या कोई और रस्म। नर्मदा देवी का आदेश आ जाता। 'थोड़ा पहले से आकर देख लेना यशोदा, रसोई संभालना है यशोदा।' यशोदा हवेली पहुँच जातीं। नर्मदा देवी कभी झाँकती नहीं थी वहाँ। यशोदा इस तरह पीसती थीं।

दादा साहब और पंडित उमाशंकर का श्राद्ध एक ही तिथि पर होता था। प्रेमदास अपनी ओर से भी दादा साहब की तिथि पर होम-धूप करते। पिंडदान व पूजा हवेली में होती थी। यशोदा की ड्यूटी दोनों जगह पर। घर में श्वसुर के श्राद्ध का तो करना ही होता था। 'भांजी नयना न होती तो अकेले कैसे कर पाते हम।' सिर्फ यही बोलती थीं वह।

बड़ी अम्मा नियम से रसोईघर के बाहर खिड़की पर बैठ जाती थीं और नुक्ता चीनी करती रहतीं। मीन मेख निकालती रहती। कभी उनके भी काम करने होते।

'जसोदा, जरा राजगिरा साफ कर देना।' 'जसोदा, जरा मैथी की भाजी साफ कर देना।' 'जसोदा, पहले कमरा लीप दो, फिर दूसरा काम करना।'

सुबह चार बजे से बड़ी अम्मा की खटर-पटर शुरू हो जाती। पाँच बजे कलिया माँ आवाज लगातीं दूध के लिए। फिर नल आ जाते। पानी भरो।

'चकरघिन्नी बने हुए हैं हम।' एक दिन कहा था यशोदा ने, भानुप्रकाश से। सुन लिया बड़ी अम्मा ने और कोहराम मचा दिया था। प्रेमदास से कहा। प्रेमदास ने हवेली जाकर रामदास से कहा। गगनबिहारी आए। बड़ी अम्मा ने उनसे भी कहा।

अगले बरस, भानुप्रकाश बिहार गया जी गए। यहाँ अपने पिता पंडित उमाशंकर का पिंड दान कर दिया। उज्जैन में फिर सिर्फ एक ब्राह्मण को बुलाकर भोजन करवा देते या सीधा (अन्नदान) दे देते थे।

बच्चों की छुट्टियाँ थीं। देवप्रकाश बेरछा में थे और जयप्रकाश राजूर पदस्थ थे। दामाद और राजकुमारी उन दिनों धौर्रा में थे। नयना का मन छुट्टियों में बेरछा जाने का था। देवप्रकाश आकर ले गए थे। यशोदा बहू कहीं जाना नहीं चाहती थीं। क्योंकि जून के महीने में राजकुमारी जिज्जी को उज्जैन आना था। जयप्रकाश लिख रहे थे कि छुट्टियों में बच्चे राजूर आ जाएँ। अम्मा चाहती हैं। जून में सब साथ ही लौट आएंगे। भानुप्रकाश सबको राजूर छोड़ आए थे। वे सब लौटकर आएँ, उससे पहले ही राजकुमारी उज्जैन आ गई थीं। एक मरे हुए बच्चे को जन्म देने के बाद उनका भी देहांत हो गया। अंतिम संस्कार उज्जैन में ही हुआ। अम्मा और बच्चों को लेकर जयप्रकाश आ गए थे। देवप्रकाश नयना को लेकर पहुँचे। नयना अपनी माँ को देख नहीं पाई थीं।

बरसात भर अम्मा उज्जैन में ही रहीं। दीवाली बाद उन्होंने ज़िद पकड़ ली कि 'उज्जैन से जाएँगे अब। राजूर में छोटा अकेला है।'

'अम्मा, जयप्रकाश की शादी की बात चल रही है। गर्मी में उनकी शादी है, फिर ठंड में नयना की शादी करना है।' भानु ने कहा।

'बेटा, शादी के समय हम लौट आएँगे। अभी तो जाने दो।'

'क्यों ज़िद करती हो भौजी। मत जाओ अभी।' प्रेमदास ने भी कहा।

नहीं मानी वह। जयप्रकाश को बुलवा लिया था। देवप्रकाश भी आ गए थे। यह सोचकर कि दो-चार दिन अम्मा के साथ रहेंगे।

भानुप्रकाश ने सोचा कि सब यहाँ हैं। एक ग्रुप फोटो हो जाए अम्मा के साथ। उनके जाने से एक दिन पहले, वह सबको लेकर 'मालव कला मंदिर' पहुँचे। फोटो हुआ। रानी माँ, तीनों भाई और दोनों बहुएँ। भानुप्रकाश के चार और देवप्रकाश के तीन बच्चे। नयना और भैरवी।

दूसरे दिन जयप्रकाश लौट गए राजूर। माँ उनके साथ गई थीं।

अम्मा, रानी माँ ऐसी गई इस बार कि फिर नहीं लौटीं। एक महीने बाद ही तार मिला कि 'अम्मा नहीं रहीं।' हैजा हो गया था उन्हें। जयप्रकाश ड्यूटी पर थे तब। पड़ोसी बैठे रहे शव के पास। ड्यूटी से लौटकर जयप्रकाश ने अंतिम संस्कार किया भारी मन से। भानुप्रकाश और देवप्रकाश जब राजूर पहुँचे, माँ नहीं थी वहाँ। दर्शन के लिए अस्थि कलश था जिसे लेकर तीनों भाई उज्जैन लौट आए।

जीवन बदल रहा था। हर तरफ। घरों में, शहर में, देश और दुनिया में। बटवारा जहाँ हुआ, वहाँ बदलाव कुछ इस तरह हुआ कि जीने के तौर-तरीके ही बदल गए। एक बदलाव लाया था दूसरा विश्व युद्ध। दुनिया दो खेमों में बँट गई थी। अब शीत युद्ध चल रहा था। देश स्वतंत्र था। दस बरस हो रहे थे। पर लगता नहीं था कि आज़ादी के मायने भी कोई समझ पाया हो। राजनीति अब भी वैसी ही थी। कुछ तो बदला था पर हवा नहीं बदली थी। बस गुलाम देश अब आजाद है। शासक अब सफेद झक कुरता-टोपी में अलग ही दिखाई दे जाते थे। रास्ते रुक जाते हैं अब भी पहले की ही तरह। राज्य भी बदल गए हैं। बटवारा वहाँ भी हुआ। दो रियासतें मध्य भारत बनी थीं। अब बन गया है मध्यप्रदेश। लेकिन रियासतों की ठसक अब भी बनी हुई है। पुराने रजवाड़ों में भी, शहर में भी और नयी कुरता-टोपीधारी जमात में भी।

डॉक्टर गोपाल प्रसाद मुखिया को अब कोई नहीं जानता। बड़े अस्पताल के सर्जिकल कक्ष में सिविल सर्जन के पास यदि कोई जाए तो दाढ़ीदार और पगड़ीधारी बुजुर्ग की फोटो देखता है। जिज्ञासावश कोई पूछ ले तो पता चलता है कि यह उज्जैन के पहले डॉक्टर थे। रामदास मुखिया एक साधारण नागरिक की हैसियत रखते हैं। डॉक्टर प्रेमदास

मुखिया ने अपनी मेहनत और लगन से अपनी पहचान बनाई है। वह बड़े अस्पताल में सहायक मेडीकल ऑफीसर रहे। रघुवरदास और सुंदर भी डॉक्टर हो गए हैं।

हवेली और बंगले की आबोहवा भी बदल चुकी है। लेकिन बड़ी अम्मा में कोई बदलाव नहीं आया। बच्चों के लिए वह बूढ़ी अम्मा बन गई हैं। ग्वाड़ियों में भी बदल रहा है बहुत कुछ। ज़्यादातर लोग मिलों में श्रमिक हो गए और कुछ श्रमिक संगठनों में नेता भी। लेकिन रामदास और प्रेमदास का दबदबा अपनी-अपनी ग्वाड़ियों में अब भी कायम है। बटवारे की कटुता घटी नहीं, बढ़ गई है। लेकिन सबके चेहरों पर मुखौटे बरकरार हैं।

नत्थु बा और नानी माँ अब नहीं हैं। रामदास की ग्वाड़ी में। एक ठाकुर बब्बा हैं काम के लिए तीनों घर पुकारते हैं और ठाकुर बब्बा कभी ना नहीं कहते हैं। कलिया माँ अब नहीं आतीं।

बहुत से लोग अब कहानी-किस्सों के पात्र बने हुए हैं। ऐसा तो होता ही है। ऐसा तो होना ही था।

***

भाग-19

कहाँ गए वे दिन। बचपन के अपने वाले दिन। किस-किसका, कितनों का कितना बचपन। कैसा था? कुछ याद है, कुछ याद नहीं। ऐसा लगता है जैसे कोई एक कीमती चीज़ तलघर में गिर गई और उसे उठाने हाथ नहीं पहुँच रहे तल तक। सीढ़ियाँ, पता नहीं कहाँ गायब हो गई हैं।

अतीत को खंगालते रहने की एक आदत बन जाती है जब, एक सोच गहरा होता जाता है। जितना सोचो, नये-नये नाम याद आते हैं। नये-नये चेहरे दिखाई देते हैं और पास जाने पर गायब हो जाते हैं। पर, तलाश खत्म नहीं होती। एक नया अनुभव दे जाती है हर तलाश। इकट्ठा अनुभवों को सहेजकर और थककर बैठ जाता हूँ।

दादाजी पंडित उमाशंकर के साथ यही हुआ होगा। बाबूजी भानुप्रकाश के साथ भी हुआ होगा। शायद। दादाजी के पीछे की दुनिया में प्रवेश करने का मन नहीं होता। उस दुनिया में ही ज़ख्म पाए थे उन्होंने। बाबूजी, सब कुछ जानने के बाद भी उस दुनिया के साथ रिश्ता निभाते रहे। माधव अब तक निभा रहे हैं। बाबूजी की तकलीफ को मैंने भी देखा है, इसीलिए उनके समर्पण को कभी समझ नहीं पाया। बचपन से चलकर बुढ़ापे तक पहुँचा हूँ जब, आत्मा तक फैलती खरोंचें दर्द दे रही हैं।

'आप जितना सोचते हैं, कोई नहीं सोचता होगा।' निर्मला कहती है।

'ऐसा कैसे कह सकती हो तुम?'

'सोचो, हम लोग रतलाम में थे। गोपूजी भी तीन बरस रहे थे वहाँ। हमारी भेंट होती थी न तब।'

'हाँ, पर कितनी बार?'

'फिर भी, संभव है कि बचपन की बातें भूल गए हों वह।'

'भूले होते, या उसे सच नहीं मान रहे होते तो रिश्ते रोज़ाना के सौहार्दपूर्ण मेल-जोल में बदल गए होते। ऐसा नहीं हुआ। एक दूरी और खिंचाव अब भी है। कितना आते हैं ये लोग, हमारे यहाँ। सुंदर, रमेश, सुरेश, महेश और श्याम। गोपू भी। भैरवी और दूसरी

बहनें आईं कभी? भूले से भी एक बार भी नहीं आए। फिर भी, सब चाहते हैं कि हम उनके दरवाज़े पहुँचते रहें। उनके ताने सुनें और आदर देते रहें। क्यों?'

आज बूढ़ी अम्मा नहीं है। दोनों बाबा और दादियाँ भी नहीं हैं। बाबूजी, माँ, दोनों काका और काकी नहीं हैं। शेष सब अपने दायरों में सिमट गए हैं। रिश्ते बनते हैं एक रणनीति के तहत, निभाए जाते हैं एक रणनीति के साथ। अपनेपन की मिठास गायब है। अपने-अपने तर्क, अपने-अपने बहाने हैं सबके। सुविधा-असुविधा की वजहें हैं। बूढ़ी अम्मा और दूसरे बुजुर्ग थे, हर घर में, तब एक किस्म का तनाव रहता था, अब किस्में बदल गई हैं। तौर-तरीके बदल गए हैं। बच्चे पहचानते ही नहीं हैं एक-दूसरे को। एक-दूसरे के अभिभावकों को भी। तब क्या होता था। याद करता हूँ कि छोटे काका हर दशहरा, सिर्फ एक बार ही तो आते थे उज्जैन। बड़े काका और भी कम। ननिहाल जाना तो और भी सीमित अवसरों पर होता था। मैं तो शायद तीन या चार बार ही गया होऊँगा। फिर भी एक लगाव था। अब तो एक शहर में रहकर भी दूरियाँ बढ़ गई हैं।

हवेली जाना छूट गया। हवेलीनुमा बंगला अब है नहीं। जब जाना होता था, सामने ही दादा साहब की तस्वीर से मिलना होता। फिर बूढ़ी अम्मा भी जुड़ गई। दोनों बाबा भी। उन तस्वीरों में कोई भाव ही नज़र नहीं आया। भावनात्मक लगाव कैसे होता।

फिर दत्तक-कथा के रहस्य खुलते गए। पूरा सच किसी ने नहीं बताया कभी। बाबूजी कुछ कहते-कहते रुक जाते थे। अंतिम बार माँ के गुज़र जाने के बाद बोले थे वह। उनके न रहने के बाद हम भाई-बहिन उस कथा की व्यथा में डूबे रहे। अब वह भी नहीं। छोटे काका से पूछने का कभी अवसर ही नहीं मिला। बड़े काका से जब भी पूछा तो वह सिर्फ इतना ही बताते थे कि उनका जन्म बनारस में हुआ था। फिर रीवा रहे। हम तो अपने पिता के गुजर जाने के बाद उज्जैन आये।

वंश-ग्रंथ की तलाश अधूरी ही रही। बचपन में जितना कुछ पढ़ पाया था, वह उबाऊ था।

बुंदेलखंड से आए बब्बा जानकी पंडित के प्रशस्ति गान से चलकर दादा साहब की उपलब्धियों तक पन्ने रंग दिए छोटे बाबा ने लेकिन यह कहीं नहीं लिखा कि बब्बा उज्जैन क्यों आए थे। बूढ़ी अम्मा कुछ और ही कहती थीं और बाबूजी कुछ और। मुझे

जानना है कि उन्होंने दादाजी के विषय में क्या लिखा था वंश-ग्रंथ में। बचपन के ताने आज तक पीछा कर रहे हैं।

'क्या सोच रहे हो?' निर्मला पूछती है।

'यही कि, शायद दोनों बाबा साहब के अहंकार को बाबूजी के तीन खिड़की वाले कमरे से अलग हो जाने से ठेस लगी होगी। बर्दाश्त नहीं कर पाए होंगे।'

'क्यों?

'क्योंकि तब उनकी यह बात झूठी पड़ जाती थी कि उन्होंने अपने बड़े भाई के परिवार को अपना मानकर पैतृक हिस्सेदारी से जोड़ा था।'

'ऐसा तुम सोचते हो। शायद।'

'उसकी वजह है। उनकी खुराफातें इसके बाद ही बढ़ गई थीं। बाकी लोग क्या सोचते हैं, बताते हैं कभी?'

'कैसी खुराफातें?'

'घर का कोई रिश्ता तय होते ही उन दोनों के पत्र वहाँ पहुँचने लगते थे। हमारे परिवार के बारे में कुछ ऐसी अनर्गल बातें लिखी जातीं कि सामने वाला रिश्ता तोड़ दे। फिर अपनी वाहवाही कि हमने एक अजनबी परिवार को सहारा दिया। अपनाया। और ये सब बातें मुझे माँ-बाबूजी ने ही बताई थीं।'

'पर रिश्ते तो हुए?'

'हुए, वह एक अलग बात है। और ऐसा नहीं है कि एक बार में ही सारे रिश्ते तय हो गए। दो रिश्ते उन परिवारों में हुए जो छोटे बाबा से जुड़े हुए थे। यहाँ वह अपने प्यार और बड़प्पन का परचम लहराते थे।'

'चलो छोड़ो। भूलो पुरानी बातें। जब हम भी कहां जाते हैं किसी के यहाँ, बिन बुलाए। बिना बात अभिवादन के लिए पहुंचना हमें भी पसंद नहीं है। आना है आए, न आना हो तो न आए कोई।'

'छोड़ दिया है। उम्र हो गई है अब हमारी भी। कहाँ, किसके दरबार में सलाम ठोकें और क्यों।'

बातें कहाँ रुकती हैं। कब रुकी हैं।

एक सप्ताह से लगातार बारिश हो रही है। एक अजीब-सा डर होता है उस बारिश में। माँ बरसात में ही गई थीं। पिता भी। छोटे काका भी बरसात में ही गए थे। छोटे बेटे का आघात बारिश में ही लगा था। उसका जाना आज किसी को याद नहीं। उसे बारिश में भीगना अच्छा लगता था। उसे मेनिनजाइटिस हुआ था, पाँच महीने की छोटी सी उम्र में। डॉक्टर तीन दिन तक निमोनिया का इलाज करते रहे। छोटे बाबा की एक बिटिया को भी मेनिनजाइटिस हुआ था। यह चार बरस की उम्र में गुज़र गई थी। यह बात सन् 1936-37 की थी शायद।

मेरा छोटा बेटा आपातकाल के दौर में पैदा हुआ था। विजय ने बताया था एक बार कि घर में कुछ लोग उसे आफत कहते थे। इतनी क्रूर मानसिकता। 'ईश्वर यदि तुम हो कहीं तो इन्हें माफ करना।' तब मैंने कहा था।

छोटे बाबा मेरे घर पर आए थे रतलाम। पहली और आखिरी बार। उन्होंने बहुत सी सावधानियाँ बताई थीं। इस गंभीर बीमारी के होने और बाद के परिणामों के बारे में भी बताया था। वह परिचित थे इन सारी बातों से। उन बातों ने मुझे बहुत कुछ सिखाया था। मैं मानता हूँ आज भी। लेकिन मेरे बच्चे को आफत, पागल और अछूत मानने वालों को कैसे माफ कर दूँ। क्या मिला मुझे, एक बड़ी दुर्घटना। अचानक एक दिन वह हमें बड़ा सदमा दे गई थी। इसके बाद कई दिन हम दोनों इन्सोमनियाँ से ग्रस्त रहे थे।

ग्यारह बरस की ज़िन्दगी जिया था वह। इन ग्यारह बरसों में उसने हमें जीने का मकसद दिया था। कितने ही रिश्तों के बंधन से बाँधता रहता था वह, कई-कई जानी-अनजानी जगहों पर। पर उसे क्या मिला। वह जितना नज़दीक जाता किसी रिश्ते के, कुछ अधिनायक हाथ उसे रोक लेते थे। उन आँखों से उपेक्षा बरसती थी। पर वह सबसे बेखबर प्यार चाहता था और प्यार बाँटता था। जान नहीं पा रहा था कि बाकी लोग उसे क्या समझते हैं और क्या कहते हैं। दूरियाँ बना रहे थे सब। एक बार तो मैं भी सब छोड़कर, उसके साथ निकल आया था। फिर एक महीने बाद ही वह हादसे का शिकार हो गया। 'दावागीर था वह, दावा निकाल कर चला गया।' माँ ने कहा था।

सब कुछ भूल जाते हैं लोग। उसे भी भूल गए होंगे। उसके न रहने पर बड़े बाबा का पत्र मिला था मुझे। कोई संबोधन नहीं। कोई हस्ताक्षर नहीं। सिर्फ दो बोल संवेदना के। 'ऐसा परिवार में कभी नहीं हुआ। ओम शांति।'

पत्र पाकर मुझे आश्चर्य हुआ। क्षुब्ध भी हुआ। यदि आप मुझे मेरे नाम से याद करना नहीं चाहते और अपने मजमून को अपना हस्ताक्षर भी देना नहीं चाहते तो इस सब का औचित्य ही क्या है। मुझे याद नहीं कभी उन्होंने प्रत्यक्ष कभी कोई बात भी की हो मुझसे। औरों का मुझे पता नहीं। मुझे बड़ी विचित्र सी यादें हैं उनकी।

मेरी नानी की मृत्यु उज्जैन में हुई थी। मैं उस समय रतलाम में था। सुबह की ट्रेन पकड़कर उज्जैन आ रहा था। सुबह साढ़े दस बजे पहुँच गया था घर। मालूम हुआ कि बड़े बाबा साहब की जिद। जल्दी ले जाने की। बाबूजी को तो मानना ही था। विरोध कभी किया नहीं उन्होंने। माँ कहती रहीं कि प्रभास को आ जाने दो। निर्मला और बच्चों को छोड़कर चक्रतीर्थ पहुँचा तो चिता तैयार हो चुकी थी। अग्नि दी जा चुकी थी। क्या मिला उन्हें इस जल्दबाजी से।

छोटे बाबा साहब की मृत्यु का दिन। सबको प्रतीक्षा है सुंदर के आने की। बाहर बरामदे की खिड़की से देख रहे थे बड़े बाबा। फिर वही ज़िद। जल्दी करो। शवयात्रा रवाना हुई। विजय ने मुखाग्नि दी और सुंदर पहुँच गए। दस मिनट भी प्रतीक्षा नहीं हो सकी। वे बहुत दुखी थे कि पिता के अंतिम दर्शन भी नहीं कर पाये।

आज वे सब चेहरे याद आ जाते हैं जिन्होंने किसी को भी कभी चैन से जीने नहीं दिया। खौफ बनकर मंडराते रहे। खौफ हर जगह था। मेरे नज़दीक और मेरे दायरे से बाहर भी। कुछ इस तरह, जिसे परिभाषित करना बहुत कठिन है। कितने ही लोग और कितने ही वजूद, कई-कई वजहें और कितने ही सपनों का आवागमन इस खौफ में अवरुद्ध होता रहा। एक तस्वीर हवा में उड़ती हुई दिखाई देती है जिसके आसपास एक मकड़जाल बुना हुआ है। इस मकड़जाल से फिर एक चेहरा उतरता है ज़मीन पर और पसर जाता है। कितने ही चेहरे, कितनी ही तस्वीरें और कितने ही वजूद आज भी थके-थके पसरे हुए हैं। एक वही तस्वीर है, हवा में उड़ती हुई सी। अय्याश जीवन का पैगंबर बनी हुई वह तस्वीर हर समय मंडराती रहती है।

ये तस्वीरें हैं जो क्रूर पैगंबरी अहसास को आज तक जीवित रखे हुए हैं। एक अदृश्य दहलीज है जिसे कोई पार नहीं कर रहा है। नंदन कानन और बंजर ज़मीन का द्वंदात्मक रिश्ता नहीं टूट रहा। परकोटे के भीतर पहाड़ी पर बसा हुआ पाखंड निरंतर निचली घाटी को धमकाता रहता है। जीवन इसी तरह चलता रहा है। हर गांव-गली, बस्ती और घरों में आवाज़ और उजाले का संघर्ष फिर भी चुनौती की तरह टिका हुआ है।

छोटे बाबा की शव यात्रा में शामिल हुए था मैं भी। टूटे पैर में ताकत नहीं थी, फिर भी। बड़ी देर बाद किसी को याद आया था कि मुझे तकलीफ हो रही है, तो शव वाहन में बिठा दिया था। श्मशान पर देर से आए सुंदर का रुदन सुनाई दे रहा था। बड़े बाबा कहीं दिखाई नहीं दे रहे थे। मैं सोच रहा था कितनों को ऐसी मनहूस विदाई देने के बाद वह फिर अदृश्य होते रहेंगे। मैंने फिर सोचा, बाबा साहब गए। क्या वंश-ग्रंथ अब कभी नहीं मिल पाएगा। वंश-ग्रंथ की खोज की व्याकुलता साथ छोड़ने को तैयार नहीं होती।

कुछ दिन बाद स्थानीय समाचार पत्र में डॉक्टर गोपाल का उल्लेख करते हुए प्रेमदास को श्रद्धांजलि दी गई थी। लिखा था, 'डॉक्टर गोपालप्रसाद मुखिया के तीन पुत्र थे। डॉक्टर प्रेमदास सबसे छोटे थे।' इसे पढ़कर रमेश बेचैन से टहल रहे थे हॉल में। कुछ लोग ही थे वहाँ। किसी ने पूछ लिया कि 'क्या बात है।'

'लिखने वाले ने ऐसा कैसे लिख दिया कि दादा साहब के तीन पुत्र थे।'

'क्यों, क्या गलत लिखा!'

'दादा साहब के दो पुत्र थे। उमाशंकर जी गोद लिए गए थे।'

बाबूजी भी बैठे थे वहाँ। गुस्से से उठकर चले आए थे। मैं भी हिकारत से सबको देखकर निकल आया था।

अब तो इस घर-परिवार से ही नहीं, शहर से भी विरक्ति होने लगी थी। बाबूजी ने इस विषय पर कभी कोई बात नहीं की।

एक दिन ऐसे ही बैठा हुआ था गुमसुम-सा। नीरज ने दस्तक दी थी। उसने बताया कि 'आप जिस लाल किताब का जिक्र किया करते थे, वह प्राप्त हो गई है।'

'कब, कैसे और कहाँ मिली यह किताब तुम्हें।'

'माधव भैया के पास देखी थी मैंने एक दिन और मैं ले आया था।'

'उन तक कैसे पहुँची ?'

'दरअसल जो भी कथा उस लाल किताब में लिखी थीं, उसे टाइप करवाकर रमेश मामा ने माधव भैया को भेंट की है।'

'और माधव ने आज तक नहीं बताया कि जिस वंश-ग्रंथ की खोज मुझे पचास वर्षों से थी, वह उन तक पहुँच गया है।'

'वह तो एक दिन उस पर मेरी निगाह पड़ गई। मैंने उनसे पूछ लिया तो उन्होंने पूरा किस्सा सुनाया। फिर पढ़ने के लिए उनसे मैं ले आया।'

'लाओ, देखें जरा।'

अब वह पुस्तक मेरे हाथ में थी। छोटे बाबा जिस डायरी में लिख रहे थे, वह एक लाल जिल्द वाली किताब-सी ही थी। जो हाथ में है वह भी लाल-गुलाबी प्लास्टिक कवर में है। मुखिया परिवार का वंश ग्रंथ। कहाँ-कहाँ नहीं खोजा था इसे। जब भी तीन खिड़की वाले मकान से गुज़रता था, यहाँ से एक सरसराहट-सी महसूस होती। बहती हवा में देखता रहता था कुछ। अब मिला है यह वंश-ग्रंथ। 'अपनों के बारे में, लेखक प्रेमदास मुखिया।' नीचे लिखा था - 'प्रिय माधव मुखिया को सादर भेंट - रमेश मुखिया'

'क्या मेरे सवालों के जवाब इसमें ही मिलना है मुझे। या इसे पढ़कर भी अनुत्तरित ही रह जाना है। कुछ पता नहीं।' मैंने निर्मला से कहा।

'पहले पढ़ो तो। हाथ में लेकर यूँ कब तक सोचते रहोगे।' निर्मला का जवाब था।

'डर लगता है।'

'तो फिर वैसा ही पड़ा रहने दो, जैसा भाई साहब के यहाँ पड़ा था यह ग्रंथ।'

'नहीं। पढ़ना ही है।' कहकर जैसे ही पहला पृष्ठ खोला, लिखा था - प्राक्कथन जिसमें आइने अकबरी से लेकर इंदिरा गाँधी के काल पात्र तक का ज़िक्र था। नीचे तारीख थी दिसम्बर 1976 ।'

मैं चौंका। क्योंकि नवंबर 1981 में छोटे बाबा प्रेमदास की मृत्यु हुई थी। प्राक्कथन, मृत्यु और आज की तारीख तक लगभग 30 से 35 वर्ष हो रहे हैं। संभव है, इस बीच रमेश ने संशोधन-संपादन भी किया हो। कुछ भी कहा नहीं जा सकता कि छोटे बाबा का लेखन

इस रुप में कब आया। माधव के जरिये हम सब तक पहुँचने में इसे इतना समय क्यों लगा। मैंने जब यही बात निर्मला से कही तो उसने फिर हँसकर कहा 'कब तक यूं ही सोचते रहोगे।'

'स्वाभाविक है सोचना। प्रस्तावना पढ़ी मैंने। अलबरूनी, मैगस्थनीज़, हेनसांग, फाहियान और इंदिरा गाँधी से शुरूआत की है। जैसे वंश-ग्रंथ नहीं, हिन्दुस्तान का इतिहास लिख रहे थे। लिखते हैं कि आने वाली पीढ़ियों के लिए गौरव गाथा है यह। पढ़कर हंसी आती है।'

निर्मला ने भी पन्ने पलटे और उबाऊ है कहकर रख दी। वर्षों पूर्व जब मैंने लाल डायरी के पन्ने पढ़े थे, तब शायद पचास-साठ लिखे हुए पृष्ठ रहे होंगे। अब यह बड़े आकार में 235 पृष्ठ का ग्रंथ है। मैंने भी पहले पन्ने पलटे, पर कोई क्रमबद्धता नज़र नहीं आई।

बरसों पहले जितने पृष्ठ पढ़ पाया था, उनमें मेरे दादाजी का कहीं नामोल्लेख नहीं था। लेकिन आज जो पढ़ रहा था उसमें दस-बारह पृष्ठ तक आते ही दादा जी का प्रसंग पढ़ा। चौंक गया था मैं पढ़कर। लगभग चीख पड़ा था। निर्मला घबराई कि क्या हुआ।

मुझे नहीं मालूम कि अब तक जिन-जिनने पढ़ा है इसे, उन्होंने कैसे प्रतिक्रिया दी होगी। पर बचपन का वह वाकया जिसके प्रत्यक्षदर्शी सिर्फ हम दो भाई थे। माधव और मैं। मैं कैसे खामोश रहूँ।

छोटे बाबा ने कुछ इस तरह लिखा कि हरसिद्धि मंदिर से घर लौटते समय एक खंडहर से किसी बच्चे के रोने की आवाज़ सुनाई दी। देखा तो एक फूटी हांडी में नवजात शिशु राख में लिपटा हुआ पड़ा था। देवी कृपा मानकर उसे डॉक्टर गोपालप्रसाद अपने घर ले आए। बड़ी माँ से कहा कि बाल ब्रह्मचारी बाबा ने कहा था कि आज ही एक नवजात शिशु प्राप्त होगा। सो मिल गया। बड़ी माँ ने उसे अपना लिया।

मैं पढ़कर स्तब्ध था। बाबूजी कहा करते थे कि दादा साहब और बड़ी माँ ने एक बालक गोद लिया था। लेकिन छोटे बाबा लिखते हैं कि खंडहर में पड़ा मिला। बाबूजी कहते थे कि उनके पिता को एक ब्राह्मण परिवार से गोद लिया गया था। पड़ा हुआ मिला तो किसी भी जाति-धर्म का हो, यह संभव है। फिर एक बाबा का यह कहना कि आज ही एक नवजात शिशु मिलेगा। बात कुछ विश्वसनीय नहीं लगती। जब छोटे बाबा ने यह सब लिखा, आने वाली पीढ़ियों के लिए तो तय है कि उन्हें उनके माता-पिता से ही यह

ज्ञान प्राप्त हुआ होगा। यही जानकारी बड़े बाबा तक भी इसी तरह पहुँची होगी, तभी गोपू और उसकी माँ ने हमारे बचपन को प्रताड़ित किया था। 'क्या पता, साले मुसलमान की औलाद हैं।' इस तानाकशी का रहस्य अब खुल रहा था।

जैसे-जैसे मैं इस ग्रंथ को पढ़ रहा था, हर पृष्ठ पर असंगत और तथ्यहीन बातें सामने आ रही थीं। आगे छोटे बाबा ने लिखा कि बड़ी माँ की सब गृहस्थी उमाशंकर को मिली। वहीं यह भी कि मैंने और मेरे अग्रज ने इंदौर का मकान अपने भतीजे भानु को दे दिया। जबकि वह मकान बड़ी माँ की गृहस्थी का हिस्सा था। वह यह भी लिखते हैं कि उन्होंने ही बड़े भाई उमाशंकर के बच्चों को पढ़ाया-लिखाया, नौकरी से लगाया, शादियाँ करवाई। जबकि हकीकत यह है कि बाबूजी ने इंदौर का मकान बेचकर दुकान खरीदी थी और अपना घर बसाया था।

छोटे बाबा लिखते हैं कि हमारे पिताजी ने जहाज गली में एक हवेली खरीदी थी। बाद में उसका एक हिस्सा नमक मंडी वाले सेठ को बेच दिया था। शेष भाग किसी और सेठ को बेच दिया था। दूसरे ही पैरेग्राफ ने इससे विपरीत बात लिखी है कि हमने पिताजी व बड़े भाई की मृत्यु के बाद स्वैच्छा से यह मकान अपने भतीजे को दे दिया था। उसे बेचकर उन्होंने दुकान खरीदी। बिके हुए मकान को देना और उसे बेचना, बात समझ से परे है।

इस गढ़े हुए किस्से का अंत इस वाक्य से होता है - 'आज दद्दा का परिवार सब प्रकार से सुखी व प्रसन्न है और वे हमारे ही अंग हैं।'

इस अविश्वसनीय वंश-ग्रंथ की तथ्यहीनता कुछ पृष्ठों बाद फिर उजागर होती है। लिखा है कि भानुप्रकाश के बड़े पुत्र माधव की एक पुत्री दो वर्ष की है तथा अभी एक पुत्री और पैदा हुई है। फिर यह वाक्य पेन से काटा है। पता नहीं किसने। माधव की दूसरी पुत्री 1980 में पैदा हुई थी। यह वंश-ग्रंथ 1976 में पूर्ण हो चुका था और 1981 में छोटे बाबा की मृत्यु हुई। यानी यह उल्लेख छोटे बाबा ने नहीं किया था। जिसने भी संशोधन-संपादन किया है, वह भी तथ्यों की परवाह नहीं कर रहा था शायद। किसी ने पढ़कर उस पर लाइन खींच दी।

फिर आगे चलकर अनेक परिवारों का परिचय लिखा गया है। स्वयं के परिवार का प्रशस्ति गान है। आज जब अपनों को ही अपनों से लगाव नहीं है, तब कौन-सी आने

वाली पीढ़ी होगी जो अपरिचितों की गौरव गाथा को सर-माथे लगाएगी। कहना मुश्किल है।

मैं सोच रहा था और नये-पुराने विचार टकरा रहे थे। बूढ़ी अम्मा की जानकारियों और बाबूजी द्वारा समय-समय पर कही गई बातें से अलग यह अविश्वसनीय तथ्यों से भरा वंश-ग्रंथ, जिसे छोटे बाबा छिपाते रहे थे। किस काम का है यह। पर एक बात समझ में आ रही है कि इसे हम तक तब पहुँचाया गया जब बाबूजी और माँ नहीं रहे हैं। स्वयं बाबा भी नहीं हैं। न छोटे न बड़े। बड़ी चतुराई से समय चुना गया। 1976 लेखन की पूर्णता का काल। और दिया गया लगभग 35 वर्ष बाद। कौन सवाल करेगा और किससे? पर देने वाला भूल गया कि अगर आमने-सामने बात हुई तो तिथियों और तथ्यों की विश्वसनीयता पर सवाल उठेंगे ही। सवाल हम ही उठाएँगे। छोटे बाबा की दुनिया के इर्द-गिर्द ही जब सब कुछ सिमट आया है और जब बाबूजी ही नहीं, कृष्णदास, रघुवरदास और गिरिधरदास भी नहीं रहे अब।

कितने बरस हुए। आज तक नीरज के अलावा किसी और ने कोई बात ही नहीं की इस विषय में। फिर एक दिन देवप्रकाश काका के परिवार के साथ बैठा हुआ था। बात इस वंश-ग्रंथ की चल पड़ी। कमल बोले कि 'वह तो पहले ही सुन चुके हैं इस विषय में।'

'कहाँ, किससे?' मैंने पूछा।

'झाँसी में कुछ रिश्तेदारों तक पहुंचा है यह ग्रंथ। वहाँ अक्सर बातें सुनी हैं।'

'यह तुमने आज तक नहीं बताया। हमारे दादाजी के बारे में कितना गलत लिखा है, यह तुम्हें मालूम नहीं था।'

'ज्यादा नहीं।'

'कमाल है भाई। अजब-गजब बातें हैं सबकी।'

'भाई साहब, आप भी लिखो एक किताब हमारे परिवार के बारे में और इन सबकी असलियत बताओ।' नीरज ने कहा।

फिर वही वंश-ग्रंथ एक दिन नंदकिशोर ले गए मुझसे यह कहकर कि कमल भाई साहब पढ़ना चाहते हैं।

फिर एक दिन सुना कि तपन इंदौर में किसी परिचित के घर गए थे। वहाँ जाकर पता चला कि वह डॉ. गणपत सिंह का ही घर है। अब उनकी भी तीसरी पीढ़ी वहाँ रहती है। वहाँ बैठक में डॉक्टर गोपालप्रसाद की फोटो टँगी हुई थी। 'यह फोटो यहाँ कैसे?' तपन ने पूछा।

'यह हमारे दादाजी हैं।' घर के मालिक ने जवाब दिया।

तपन चौंक गए। फिर कुछ नहीं पूछा। बाद में जब और भी जानकारी मिली तब उसने श्याम से पूछा। पहले तो श्याम खामोश रहे फिर स्वीकार कर लिया।

यह वही परिवार था जहाँ कभी दूल्हे की अदल-बदल हुई थी।

यह सब जानने के बाद मुझे बूढ़ी अम्मा की याद आ गई। उनकी नाराज़ी के किस्से याद आए जो कभी उन्होंने और कभी बाबूजी ने सुनाए थे। छोटे बाबा का वंश-ग्रंथ यहाँ भी तथ्य की अवहेलना करता है।

बूढ़ी अम्मा ने नाराज़ होकर अन्न और नमक का त्याग कर दिया था। यह उन्होंने स्वयं बताया था। लेकिन ग्रंथ के अनुसार यह दादा साहब के दिवंगत होने के बाद की घटना है। आत्म प्रशंसा के साथ पंडित रामदास और इन दोनों भाइयों की संतानों का प्रशस्ति गान है यह ग्रंथ। डॉक्टर गोपाल और जानकी पंडित के अंग्रेज़ों, रजवाड़ों और सेठ-साहूकारों से रिश्तों का बखान है। पंडित उमाशंकर के परिवार के संबंध में, जहाँ अवसर मिला वहाँ यही लिखा है कि हम दोनों भाइयों की कृपा दृष्टि और दानशीलता से ही पले-बढ़े ये सब। दंभोक्ति और पाखंड के सिवा कुछ भी नहीं है इन बातों का सार। मेरी घृणा और नापसंदगी मुझे आज और भी जायज़ लग रही है।

मुखिया परिवार की एक अकेली निशानी शेष है। वह हवेली जो अब जर्जर और खंडहर हो चुकी है। इसमें एक अकेली लड़की रहती है। वह डॉक्टर रघुवरदास की बेटी है जिसे कभी देखा नहीं किसी ने। बस माधव से मिली वह। स्वार्थवश। कृष्णदास, रघुवरदास, गिरिधरदास और बिहारी दास, अनुराधा और गीता को दिवंगत हुए वर्षों हुए। कमलेश, गोपू, कृष्णा और चंद्रकला ही हैं हवेली परिवार की निशानियाँ। नयना जीजी और योगेशजी भी नहीं रहे। वह मकान जो हमारे परिवार की पहचान था वह भी बिक चुका है। विरासतों का कोई मूल्य होता होगा कभी। अब तो सोच में बची हैं विरासतें। सोच! यदि कहीं किसी में हो। वसीयतों का कुछ पता नहीं। मेरे पास सिर्फ यादें हैं।

'आपने अपना रास्ता खुद चुना था। अपना जीवन आपने स्वयं बनाया है। सेल्फ मेड। किसी सिफारिश की बैसाखी के सहारे आप नहीं चले। मुझ पर भी अपनी इच्छाएँ नहीं थोपीं। सबसे बड़ी खुशी यही है।' मेरे बेटे ने कहा था एक बार।

'मेरे दादाजी, पंडित उमाशंकर भी किसी बैसाखी के सहारे पर नहीं रहे कभी। यही सुना है उनके बारे में।' मैं भी कहता रहा हूँ सबसे हमेशा।

'यह वंश-ग्रंथ भी नीरज भैया को लौटा दो। हमारे किस काम का। हम नहीं चाहते कि हमारा बेटा इसे पढ़े।' निर्मला ने कहा था एक दिन।

'मैं भी यही सोच रहा हूँ। जब नंदकिशोर वापस करेंगे तब नीरज को लौटा देंगे। किसी को यदि कुछ नहीं कहना है तो न सही। उनका मौन ही मेरे लिए रचनात्मक शक्ति है। यह क्या कम है। अब किसी संवाद से भी कुछ नहीं मिलना। किसी की सोच को बदल पाना बहुत मुश्किल है अब।'

क्या मिलना है। क्या पाना है और क्या होना है अब। यह सोचना भी बेमानी है। पूछना और भी बेमतलब।

मौन और मुखरता के बीच जो संबंध बनता है, वही तो माँ और बाबूजी का यथार्थ था। अंतिम दिनों में दोनों के बीच मौन सिकुड़ता जा रहा था। दादाजी और दादी के बीच वह कौन-सा धरातल था, पता नहीं। पर सब कुछ जानने के बाद भी किसी की खामोशी नहीं टूट रही तो मैं क्या करूँ? इस वंश-ग्रंथ के झूठ को ही कोई सच मान ले या गलत मानकर भी अपनी खिड़की नहीं खोले तो क्या करूँ मैं? उस नीम और पीपल के पास घटित त्रासदी और व्यथा को भोगकर कोई अलगाव की झनझनाहट को न सुनना चाहे तो क्या करूँ मैं? नहीं पूछूँगा अब कोई सवाल। जब आखिरी बार सोचा था, तब ही माधव की चुप्पी टूटी थी पहली और आखिरी बार।

हुआ यूँ कि बेटे की शादी से एक बरस पहले मैं बाबूजी से बात कर रहा था। अभिनय नगर के मकान पर बात चली।

'सब अपनी-अपनी जगह खुश हैं। इस मकान के विषय में कोई निर्णय ले लें। स्वयं आपको ही सोचना है यह।' मैंने कहा। पर वह कुछ नहीं बोले थे। 'इसकी पहली मंजिल

पर माधव का पैसा लगा है तो उन्हें ही दे दें। कोई आपत्ति नहीं करेगा।' मैंने फिर कहा। लेकिन नीरज इससे सहमत नहीं था। उसने शुभ्रा के सामने बाबूजी से बात की थी।

'मकान के रिनोवेशन में पैसा लगाने भर से वह उनका नहीं हो जाता। ज़मीन तो आपने खरीदी थी। उस पर मकान भी आप ही ने बनाया था तो हम छह भाई-बहिन ही उस मकान के वैध उत्तराधिकारी हुए।'

'मकान हमारे ही नाम है अब तक।' तब मुझसे बाबूजी ने कहा था। लेकिन जो सत्य था, वह उन्होंने नहीं बताया था। बाद में नीरज से पता चली असलियत। मुझ पर आरोप लगाए गए कि मैंने पिता की मृत्यु-कामना की थी। जो सच नहीं था और सच यह था कि वह मकान पाँच बरस पहले ही बंधक हो गया था।

'बाबूजी अपनी छाती पर इसी बोझ को रखकर चल बसे।' तब पहली और आखिरी बार माधव बोले थे। सच, सब जान गए तब भी कुछ नहीं हुआ।

यह मकान बिक गया। एक पारिवारिक पहचान बदल गई। नष्ट हो गई। तीन खिड़कियों वाले कमरे के उस बंगले को मलबा बना देखकर जो पीड़ा हुई थी, उससे कुछ ज्यादा ही पीड़ा अपने इस मकान के बिकने पर हुई। अब भी सब मौन हैं। माधव भी फिर से मौन हैं। अलगनी के एक छोर को मैं ही कब तक थामें रहूँ कसकर। जबकि दूसरी तरफ से ढील मिलती रहे।

मेरे पूर्वज, क्या तुमने भी उस बँगले और हवेली में रहते हुए यही अनुभव किया था। यहाँ से जाकर भी इस कथा की व्यथा को तुमने भी सहा था। मैं खंडहर को देखकर दुखी हुआ था। कितने ही खंडहर हैं भीतर से बाहर तक। कुछ मत कहो। आत्म-निर्वासन की पीड़ा को जियो। जीते रहो। फिर चल दो किसी और जगह एक यात्रा पर। अगर कहीं कुछ टूटता है तो कई बार अपना ठिकाना भी अजनबी लगता है। मैं भी चला आया था इसी तरह। और मेरा छोटा बेटा चला गया वहाँ, जहाँ से लौटकर कोई नहीं आता कभी।

'अब जो हुआ, सो हुआ। जब हम कुछ बदल नहीं सकते तो क्यों सोचें।' निर्मला हमेशा यही कहती है।

'ऐसा कह सकती हो तुम। क्योंकि तब तुम नहीं थीं वहाँ। घर में या आस-पास। जहाँ भी था, वह मैं ही था। माधव थे। पहली बार, अपने पैरों पर खड़ा होने के बाद के क्षणों में,

हम दोनों ही थे। माँ और पिता थे। पूछा था माँ से, वह खामोश रहीं। पिता से पूछने पर वह नाराज़ हो जाते थे। बताते हुए भी छिपा गए बहुत कुछ। भाई भी साथ रहकर कुछ कहने से बचते रहे।'

'इसीलिए सब भले-भले रहे।'

'हाँ, शायद।'

'शायद क्यों?'

'क्योंकि जब तक जीवन है तब तक यह विश्वास करना चाहता हूँ कि शायद कुछ नया हो जाए। निराशावादी नहीं हूँ मैं।'

'एक बार भाई से बात क्यों नहीं करते?'

'नहीं, अब नहीं पूछना किसी से। फिर यह भी सच है कि इन सब बातों के अलावा भाई ने भी बहुत कुछ खोया है। छल उनके साथ भी हुआ है। हमने बेटा खोया तो उन्होंने भी बेटी का दुख पाया। हम एक ही कश्ती के मुसाफिर हैं। बाकी सब नहीं जानते कुछ भी, हम दोनों भाईयों ने जिया है उन दिनों को, जहाँ से अलगाव और परायेपन के जख्म मिले थे।'

'हाँ, सिर्फ यही नहीं। दत्तक-कथा के साथ ही संयुक्त परिवार में रहकर भी अकेले चलना पड़ा है और यह तो हमने भी महसूस किया है।' निर्मला की अपनी व्यथा है।

'निर्मला 'दत्तक' होना अभिशाप नहीं है। लेकिन पुराकथाएँ हमेशा ही सच साबित नहीं होतीं। आज कुनबे की परिभाषा ही बदल गई है।'

कितना कुछ बदल गया है। दादाजी और दादी की तस्वीर देखता हूँ। दादी को देखा भी था। बहुत-सी यादों में जब वह दिखाई देती हैं, लगता है उनकी तस्वीर भी बोल रही है। इन्हीं यादों में बेटे का चेहरा झाँकता है। माँ और बाबूजी भी सपनों में आते हैं। नये पुराने दिनों की यादों के साथ मिलते हैं। अब शिकायतें नहीं होती सपनों में। यहाँ से जाने के बाद कोई नहीं लौटा। बेटा भी नहीं। पर उसने लगाव की डोर नहीं छोड़ी थी अन्त तक।

कुछ लोग बोलते रहे जीवनभर अपनी अधिनायकता के दंभ में। मलबे से आती हुई आवाज़ों के बीच कुछ आकृतियाँ अपने भोले चेहरे के साथ उभरती हैं मेरे अपनों की।

बहुत कुछ कहा है। बहुत कुछ बाकी रह गया। अब तो कुछ कहने की इच्छा भी बाकी नहीं रही। पर यह कोई वादा नहीं है कि किसी मौन तीर्थ का बाशिंदा बन कर शेष जीवन बिताऊँगा। फिर बोलूँगा अगर मन हुआ।

ऐसे ही बीतता है समय

गुज़र जाते हैं दिन बरसों-बरस

एक सफर जारी रहता है।

बोलते रहे लोग कई इस सफर में

तुम नहीं बोले

अधिनायक कहते रहे आतताई तुम्हें

कहते रहे बहुत कुछ

कष्ट यह कम नहीं था

और दुःख सिर्फ इस बात का नहीं रहा

बोले तुम क्यों नहीं

सहते रहे क्यों।

दरारें हो गई हों भले ही हजार मेरी आत्मा में

चिन्ता इस बात की ज्यादह

न बोलकर भी कितना कुछ बोल रहे तुम

कितनी तकलीफ अपने भीतर घोल रहे तुम।

देख तुम्हें, लोग हँसे

तुम हँसे खुद से ही ताज़ा दम

रोये तुम तो कुढ़े लोग

सोए तुम, गदगद सब

खुश हुए इससे सब

चुप रहे वर्षों तुम
कितने अभ्यस्त अब।
मैंने तो सिर्फ यही चाहा था
कुछ अपनी भी कहो तुम
बोलो, मेरी इच्छाओं और सपनों को
बार-बार तौलो।
लेकिन तुम चले गए
न जाने किन पंखों से उड़कर अनन्त में
सपनों के अन्त में
ढूंढ रहा तुमको मैं।
चाह अब भी बाकी है
तुम मिल जाओ
कुछ अपनी कह जाओ
हँसी की बुलन्दी में कुछ ऐसा कर जाओ
मेरे पुत्र, मेरे भाई, मेरे पिता
और मेरे पिता के पिता
तंग गलियारे हिल जाएँ
आँख मिलते ही तुमसे
उनकी आँख का पानी गिर जाए।

***